# इंसान पैदा हुआ ?

रांगेय राघव

किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५१



प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद।
मुद्रक—ए० डब्ल्यू० आर० प्रेस, इलाहाबाद।

# विषय-सूची


पृष्ठ संख्या

१. इंसान — १
२. भय — १६
३. आवाज़ घुटने लगी — ४०
४. कठपुतले — ५३
५. स्वप्न और जीवन — ६३
६. बाप का दोस्त — ७७
७. अच्छा और बुरा — ९०
८. अन्धेरी नगरी चौपट राजा — १०२
९. यह ग्वालियर है — १२७
१०. लक्ष्मी का वाहन — १४४
११. धूल की आँधी — १५६
१२. चंगेज़ की तलवार — १६४
१३. उपचेतना का तांडव — १७३
१४. घास-फूँस — १८६
१५. ईमान की फ़सल — १९८
१६. जीवन की घृणा — २०६
१७. तबेले का धुँधलका — २१२
१८. रेडियो की दूकान — २२८
१९. कार्तिकेत — [illegible]
२०. इंसान पैदा हुआ — [illegible]
२१. चकाबू का किला — २६७

# इंसान

...आख़िर हम इंसान हैं।

अगर अधजला दिल किसी के अरमान की वह भीषण चट्टान है जिसे चिता की भयानक लपटें भी नहीं जला सकतीं तो मनुष्य का जीवन भी ऐसी ही एक अगम पहाड़ी है, जिसे कोई भी बिजली कितने भी वेग से गिर कर चकनाचूर नहीं कर सकती। वास्तव में इस सत्य के पीछे एक कार्य्यकारणों की शक्ति से प्रेरित निर्ममता है। कितना भी उदास हो यह यौवन, किन्तु क्या उसके एक क्षण के भूलेपन में योगों का असन्तोष स्वयं तृप्ति बनकर नहीं छा जाता?

बात यह है कि जिस दिन दिलीप, सतीश के घर से चला उसका दिमाग तरह-तरह के विचारों में डूबा हुआ था। दिलीप भी अजीब है। उसके विचारों का भले ही सबसे सामंजस्य हो जाय, भले ही वह हँस-खेल ले, उसे मालूम होगा कि वह पानी पर तैरता एक बुलबुला मात्र है, किंतु उसका मन न जाने क्यों स्नेह के बंधनों से बहुत दूर रहना चाहता है। विदाई के समय किसी की आँखों में अपने लिये कोई विशेष नमी नहीं देखी। शायद मनुष्य को इससे बढ़कर कोई सुख नहीं। कितना अच्छा होता है वह सुपना, जो आँखों में आकर लय हो जाता है; और वह याद जो कसका करती है, दुख दिया करती है......

तो रक्खा उसने अपना अमरीकन बैग कंधे पर और चल दिया स्टेशन की तरफ़। राह में देखने को क्या कुछ भी नहीं था, लेकिन

मजाल है, जो उसने कुछ देखा हो, उसे कुछ याद हो। उसकी धारा ही इतनी गहरी थी कि सांस लेने के लिये जब सिर उठाता था तो मन भीतर ही भीतर छटपटाने लगता था।

स्टेशन सुनसान था।

दिलीप ने इधर-उधर देखा। गाड़ी आने का कोई लक्षण नहीं। एक ओर मुसाफिरों की भीड़ बाहर प्लेटफार्म पर बैठी ऊँघ रही थी। एक बाबू को आते देखकर दिलीप ने अङ्ग्रेजी में पूछा: 'मेल आने में कितनी देर है?'

बाबू रुका नहीं। चलते-चलते कहा, 'चार घन्टे लेट है।'

दिलीप ने मन ही मन कुछ अपमान का अनुभव किया। यह क्या बदतमीज़ी! हम पूछ रहे हैं और कमबख्त ढँग से जवाब तक नहीं देता! फिर देखा। एक अङ्ग्रेज औरत ने आवाज़ दी—

'बाबू!'

बाबू ठिठक गया।

मेम की जीभ कुछ भीतर ही भीतर लड़खड़ाई और शब्द निकले: 'मेल का किट्ना बजे arrival है?'

बाबू ने नम्रता से, प्रश्न हिन्दी में होते हुये भी अँगरेजी में उत्तर दिया, जैसे आप क्यों हिन्दी बोलने की तकलीफ करती हैं, मैं खुद अँगरेजी बोलने की कोशिश करता हूँ। मेडम! गाड़ी ढाई बजे आती है, लेकिन क्योंकि आज चार घन्टे लेट है, लिहाज़ा साढ़े छः बजे आयेगी।'

मेम ने बाबू को ऐसे घूर कर देखा जैसे यह सब बाबू की ग़लती थी। और बाबू सशंक नयनों से देखकर एक दफ्तर में घुस गया।

दिलीप को हँसी सी आई। बेचारा! जिसे रेल के एक पुर्जे से अधिक समझना शायद भूल होगी, क्योंकि वह और कुछ नहीं।

कुछ देर खड़े रहकर ऊब जाने पर दिलीप प्लेटफॉर्म पर टहलने

लगा। अनेक अनेक प्रान्तों, रियासतों अथवा छोटे-छोटे देशों की मानवता के ये प्रतीक...इनके चेहरे पर उत्साह क्यों नहीं? क्यों है यह निराकार अचेतना जो घुन बन, सब कुछ काट रही है? सब व्यस्त हैं। सब अपने-अपने काम में मग्न, प्रत्येक एक दूसरे को अपना शत्रु समझ रहा है।

इतने में एक ठहाके की आवाज़! वह फौजी हैं, वर्दी पहने। लोग उनसे बचकर निकलते हैं, औरतें घृणा से आँखें छिपाकर देखती हैं, डरती हुई सी, जैसे भेड़ियों को देखकर बकरी सहम जाती हो। वे लोग भद्दी गालियाँ बकते हैं...। दिलीप को लग रहा है, काश यह भी इंसान होते! किन्तु इन सब को अपनी इंसानियत से मोह है, मोह ही उनकी जय का एकमात्र प्रतीक है, और यह जय पूँजीवादी समाज की देन होने के कारण केवल व्यक्तिगत सुख है, जिसमें हर रोटी का टुकड़ा खून से भीगा हुआ है।

एक बुढ़िया, उसके साथ एक औरत जिसकी उम्र जवानी की है, जिसका तन अधेड़ सा है, जिसकी आँखों में एक नीलापन है, जिसके सर्द गाल धीरे-धीरे खाकी होते जा रहे हैं। दोनों एक बक्स पर बैठी हैं। बुढ़िया बटुये में से दो उँगलियाँ डालकर तंबाकू निकाल कर पान भरे मुँह में डाल रही है। उनके साथ दो बच्चे हैं—एक लड़का, एक लड़की। वह कम उम्र औरत उनकी मां है। कभी कभी देखने में नौकरानी-सी लगती है।

और दिलीप टहलता रहा।

एक व्यक्ति ने कहा: 'बाबू पहली गाड़ी कौन छूटेगी?'

'कहाँ को?'

'आगरा?'

'पैसिंजर लेट है। आने वाला है। पकड़ लेना बक्स!—' एक कुली ने दूसरे कुली का सामान उतारते हुए जवाब दिया।

दिलीप तेज़ी से टिकट-घर की तरफ़ चला। आगे जाकर पैर ठिठक गये। उस घमासान को देखकर, शायद राणासाँगा भी उसमें निहत्था घुसने से इंकार कर देता। भयानक शोर हो रहा था। यह भी इंसान की जिंदगी की दौड़ थी, जो गरीबी से बेतहाशा दौड़े हुए कुत्ते की तरह जीभ निकालकर हाँफ रही थी। बाहर सीटी बज रही थी। दिलीप ने एकदम हाथ बढ़ाकर कहा: 'आगरा कैण्ट, सेकेंड क्लास'। अंदर के बाबू ने कहने वाले की ओर देखा और मुस्करा कर पीछे वाले बाबू से कहा: 'अमा, तुम रेलवे की क्लर्की कर रहे हो। लड़ाई की नौकरी की होती।' दोनों जोर से हँस पड़े। मन खट्टा हो गया दिलीप का। गोया वह कोशिश करके भी रईस नहीं कहला सकता।

दरवाज़े में से निकलते ही देखा, एक भयानक रेला रेल पर टूटा पड़ रहा था जैसे एक जैकारे के साथ अब भारत माता की बेड़ियाँ टूटने ही वाली हों। दिलीप ने आव देखा न ताव, लपक कर डंडा पकड़ा और सेकेंड क्लास में घुस गया। सामने खड़े गोरे सिपाही ने घूरकर देखा और दिलीप की आँखों में एक तेज़ी आ गई। दोनों ऐसे खड़े रहे जैसे जनम जनम के बैरी कुत्ते बिल्ली में मुठभेड़ हुई।

जब दिलीप की नज़र ने चैन लिया, डिब्बा भर चुका था। दोनों बच्चे खेल रहे थे। एक कोनों में सामान, सामान पर सामान''सिर्फ़ सामान, औरतें खुद सामान, जिन्हें मर्द रख रहे थे, मर्द स्वयं सामान जिन्हें अभी-अभी कुली ने चढ़ाया था''''''

दोनों गोरे उतरकर चाय पीने चले गये थे। दिलीप को विस्मय हुआ। एक बर्थ पर चार औरतें, दूसरी बिल्कुल खाली, तीसरी पर सात आदमी, जैसे एक ही डाल पर बंदरों के अनेक बच्चे।

दिलीप ने कहा : 'इधर क्यों जगह छोड़ दी आप लोगों ने !' बड़ी मूँछों के एक ठाकुर साहब ने समझदारी दिखाते हुए कहा, 'दो गोरे बैठे हैं न साहब ! क्यों ततैया को छेड़ा जाय, और क्यों वह डंक मारे ?'

बगल में बैठे लालाजी ने हँस कर व्यंग से कहा : 'आप ही न बैठ जाइये ?'

दिलीप के हृदय में भीतर ही भीतर जैसे किसी ने सुई चुभो दी।

लालाजी का सूट-बूट में लैस साथी हँसा। दिलीप को लगा जैसे ज़हर का काढ़ा पानी में उबल रहा हो। सारा हिन्दुस्तान सिमटकर एक कोने मे बैठा है, क्योंकि हुक्मरान के बैठने का मतलब है उनका पैर फैलाकर आराम करना। दिलीप ने देखा बंगाली बाबू ऊँघ रहा था।

जिस समय दोनों गोरे डिब्बे में घुसे, उनकी नीली आँखों पर डिब्बे का सन्नाटा छा गया। दिलीप गोरे की आधी सीट पर चैन से बैठा था।

गाड़ी चल दी। गोरों ने कुछ नहीं कहा। दोनों चुपचाप बैठ गये।

बच्चे ऊधम करने लगे थे। बुढ़िया दादी कभी-कभी हँसकर उन्हें डाँट देती थी। लड़के ने कहा : 'दादी ! तुम तो कभी साइकिल पर चढ़ती ही नहीं !' डिब्बे में सब लोग हँस दिये। ऊँघते हुए बंगाली बाबू ने भी एक बार मुड़ कर देखा किंतु दोनों गोरे पत्थरों की तरह बैठे थे। बच्चों की ओर उनका कोई ध्यान नहीं था।

वे प्यारे प्यारे बच्चे। दूध से धुले हुए। लड़की ने लड़के से एक घूँघट काढ़े बैठी लड़की की तरफ़ दिखा कर कहा : 'देख बन्नू ! पर्दा !'

लड़के ने देखा। कहा : 'हट ! घूँघट।'

लड़की खिलखिला कर हँसी। एकदम माँ से कहा : 'अम्मा ! मुँह क्यों ढक लिया है ऐसे ?'

सब नील। माँ ने धीरे से फटकार कर कहा"'"चुप रह।'

किंतु लड़की ने फिर कहा : 'दादी ! कैसा मुँह ढक लिया है !'

दादी ने मुस्कराकर कहा, 'तेरा जब ब्याह होगा तब तेरे भी ऐसे ही घूँघट डालेंगे हम !'

'धत्', लड़की ने शर्माकर कहा और सब धीरे से मुस्कुरा दिये।

लड़के ने कहा : 'मा ! सीटी बज रही है।'

'सीटी कहते हैं ?' मा ने रोककर कहा।

'तो ?'

'विसिल।'

'तो सीटी नहीं कहते ?'

'नहीं ?'

लड़का कुछ सोचने लगा। डिब्बे में किसी के हल्के-हल्के गुनगुनाने की आवाज़ गूँज गई। पैसेंजर की उस मौत की सी धीमी चाल में वह गूँज ऐसे छा गई जैसे मरे हुए आदमी की लाश पर धीरे-धीरे बहुत दूर से गिद्ध उतरने लगता है। गोरे ने अपने साथी से कुछ कहा। एक कर्कश आवाज़। दिलीप समझा, शायद और कोई नहीं।

बंगाली बाबू ने झुककर कहा : 'कहाँ जा रहे हैं आप ?' उनका स्वर बहुत धीमा था। अपनी सीमा में वह बादशाह थे। ज़ोर से बोलना शायद उनके लिए असम्भव था। गोरे ने सुना फिर संक्षिप्त उत्तर दिया—'देहली' (दिल्ली) जैसे अब कुछ मत पूछना; इस बार उत्तर दे दिया है, इसे ही अपने ऊपर अहसान समझ लो।

मन उचट गया। दिलीप ने बाहर देखा। गोरे खामोश बैठे थे।

विलायत लेबर सरकार है। और यह हमारे जैसे अब भी शासक हैं। दिलीप के मन पर जैसे छिपकली रेंग रही थी। गोरे बैठे रहे। फिर उन्होंने सिगरेट जला ली और खामोशी से पीने लगे।

बाहर खेत भाग रहे हैं। उनके पीछे गाँव है। वे कभी नहीं भागते,

उनके निवासी भी स्थिर हैं, जमीन और आसमान भी। सब लोग ऊँघने लगे। दिलीप उठा। अपने बैग में से एक किताब निकालकर पढ़ने लगा। गोरे ने बैठे ही बैठे पढ़ा Pushkin ( पुश्किन )!

और उसने घूर कर दिलीप की ओर देखा। दिलीप ने कोई ध्यान नहीं दिया। उस हिन्दुस्तानी के हाथ में यह किताब। रूस के महान् क्रान्तकारी कवि का अंगार स्वर! जार के साम्राज्य ने इस पर अपना पूरा वार किया था और एक दिन मजदूरों ने उस साम्राज्य की जड़ों को खोद करके फेंक दिया............

गिद्ध बैठे हैं लेकिन पंजा नहीं गड़ा सकते क्योंकि अब तो लाश भी जिंदा है। क्योंकि उसमें पानी की जगह खून है, उसका गुस्सा भी ठंडा होकर तेजाब की तरह दीवाना हो चुका है।

आजादी का एक गीत। दिलीप पढ़ रहा है। गोरे देख रहे हैं। देख रहे हैं अपने वैभव के सामने सिर उठाते गुलाम की स्पर्धा। जिसके लिये उन्होंने कोड़ों की मालाओं का इनाम दिया था। आज वह अपने जख्मों को गिना-गिना कर वार करना चाहता है, बदला लेना चाहता है......

एक खँखारने की आवाज। बड़े मियाँ उठकर पाखाने की तरफ चले। गोरों ने उनके लिये पैर भी नहीं हटाये। बड़े मियाँ ने कहा, 'साहब! जरा पैर हटाने की इनायत फरमायें।

गोरा भुनभुना रहा है। बौबी हँस रहा है, जैसे और बैठोगे इन लोगों में। मलका विक्टोरिया की-सी हँसी।'

ठाकुर साहब ने एकाएक टोककर कहा—'ए मियाँ। इसमें खाने का सामान है।'

मौलाना का बड़ा हाथ रुक गया। पलटकर बोले: 'तो आपने अपनी रेल समझी है? कहाँ से जाएँ? उठाइये इसे।' लड़की ने घूँघट उठाकर देखा।

दिलीप को हँसी आ गई। गोरा आराम से आधी बर्थ पर लेटा है। दिलीप टाँग फैलाये है। और सामने की सीट पर बैठे खचाखच लोग इस रेल को अपनी और अपने बाप की जायदाद कहकर लड़ रहे हैं।

मन में आया ठाकुर और मियाँ को उठकर, कसकर, दो-दो चांटे मारे। किन्तु यह नहीं हो सकता। इस फूट को रोकने को जो होगा वह कानून के खिलाफ होगा जैसा मजदूर को पेट भर खाने के लिये हड़ताल करना, हिन्दुस्तानियों को आजादी का मलोल करना......

ठाकुर साहब ने उठकर चादर में बँधी बड़ी थाली को उठा लिया। मियाँ साहब पाखाने में घुस गये। जब वह लौट आये ठाकुर साहब ने थाली को वहाँ रख दिया और अपनी जगह पर आकर बैठ गये।

पढ़ते-पढ़ते थक कर दिलीप ने किताब बन्द कर दी। एक गोरा ऊँघ रहा है। दूसरे की मुद्रा से लग रहा है कि वह दिलीप से कुछ पूछना चाहता है किन्तु दिलीप का मुँह कठोर है जैसे स्वयं उसका, जिसपर गर्व है, घृणा है, तिरस्कार है, जैसे वह एक बड़ी हड्डी को काटकर काँच की आँखें गढ़ कर बनाया गया हो।

गोरा उठा। उसका बक्स सबसे नीचे दबा पड़ा था। गोरे ने बाँये हाथ से खाने के थाल को उठा कर फ़र्शपर रख दिया। दाँये हाथ से बक्स सरका कर अपना बक्स मुक्त कर दिया। कुछ सामान निकाल कर यूरोपियन पाखाने में हाथ मुँह धोने चला गया।

दिलीप ने मुस्कराकर कहा : 'ठाकुर साहब! यह क्या विलायत का कोई ठाकुर है?'

मौलाना ठठाकर हँसे। कोई उत्तर नहीं। दूसरे गोरे को नींद टूट गई। और ठाकुर साहब ऐसे बैठे थे जैसे अब कुछ और कहते ही दाँत किचकिचा कर टूट पड़ेंगे।

साँझ की धुँध आकाश में उतर कर खिड़कियों की राह रेल में हवा

के फर्राते पर इधर से आकर उधर निकल जाती थी। बाहर आकाश के कंधों पर खूनी रंग का कपड़ा झलक रहा था जैसे बहुत दूर एक लाल झंडा है, जो दुनिया की छोर पर खड़ा होकर आकाश और पृथ्वी दोनों को चुनौती दे रहा है। दिलीप मुस्कुराया। उस सन्नाटे में जिंदगी पनाह माँग रही है, जैसे आसमान नहीं, हमें सिर पर एक साया चाहिये, चाहे आसमान में खुद खुदा ही क्यों न हो। गाड़ी रुक गई। दिलीप स्टेशन पर उतर कर घूमने लगा। तीसरे दर्जे में भयानक भीड़ थी ही, एक दूसरी भीड़ ठेलमठेल कर रही थी। दिलीप देखता रहा।

काश, दिलीप की जगह मौत के घाट उतारी गई मेरी एन्तोनेत होती तो सोचती जैसे बेस्टील के दरवाजों पर प्रजा लहरों की तरह टकरा रही है, मगर सम्राट की कृपा है कि उन्हें रहम की सज़ा दी गई है कि भटको। लेकिन दिलीप को लगा जैसे कुत्ते पकड़ने की गाड़ी देखकर कुत्ते गिरफ्तार होने स्वयं टूट रहे हों और अंदर वाले दमतोड़ कर उन पर भूंक रहे हों कि मरने का अधिकार हमीं को है, हमीं को है। पतले दुबले एक बूढ़े मुसलमान ने तड़फ कर कहा: आया हिन्दू मुसलमान का बच्चा! और वह बगल के डिब्बों में दो-दो एक-एक बैठे हैं तेरे बाप हैं। उनपर जाकर कानून चलाये तो देखें! फिर जोर से कहा: 'आने दे बे उन्हें! बेचारे।

दरवाजा नहीं खुला। उसका खुलना असम्भव था, क्योंकि उसके पीछे सामान जो इंसान की बतौरी का एक साँप सा है, जिसपर कोई हाथ रखे तो इंसान भी साँप की तरह जहर उगलता है। लोग खिड़कियों में से भीतर कूदने लगे, जैसे दोजख़ में घुसने की कोई राह चाहिये।

दिलीप अपने डिब्बे में लौट आया। तीसरे दर्जे के डंडे पकड़े कुछ लोग लटक गये थे। मौलाना कह रहे थे—'अबे दूसरा दर्जा है...रुक जायेगी। अठगुने दाम देने की हैसियत है तेरी...यह गद्दे...

अब गाड़ी आगरा छावनी पर रुक गई। बंगाली बाबू ने उसी धीमे लहजे से पूछा : 'गाड़ी कितनी देर ठहरेगी ?'

'एक घन्टा ?' पीछे खड़े होते हुये ठाकुर साहब ने पूछा।

एक मरियल जवान ने पतली आवाज़ में कहा : 'जी हाँ।'

शायद प्लेटफार्म पर चलते-चलते किसी ने मुड़कर देखा कि जिसकी आवाज इतनी सुरीली है वह न जाने कैसा होगा, और शायद यह सोचते हुये बढ़ गया कि रेडियो कितनी नायाब चीज़ है।

ठाकुर साहब ने ताना मारते हुये कहा : 'बलासे आप की।'

वे उतरने का इंतजाम कर रहे थे। घूँघट लपेट कर अपनी उंगलियों की 'वी' में से देखती, कभी इससे टकराती कभी उससे, लड़की भी खड़ी हो गई। दिलीप को लगा वह एक हाथी का बच्चा था जिसे पहली बार सिकन्दर से लड़ने भेज दिया गया था। लल्लू ने उठकर अंगड़ाई ली जैसे बिस्तर छोड़ रहा हो।

देखते-देखते सारा डिब्बा खाली होने लगा। गोरे उतर गये। एक तरफ सिर्फ दो औरतें बच रहीं। बुढ़िया ने दिलीप से कहा : 'बेटा ! तुम कहाँ जाओगे ?'

'जी, मैं बस अगले स्टेशन पर उतर जाऊँगा।'

'तब फिर ?' अधेड़ औरत ने न जाने किससे सवाल किया।

'कहाँ जायेंगी आप ?'

'दिल्ली जायेंगे बेटा ! अब तो इस गाड़ी में इन गोरों के सिवा कोई बचा ही नहीं। कहाँ गये हैं जाने ! अरे साँझ तो इनके सराब पीने की बेला है ?'

औरत के चेहरे पर एक सहमी हुई छाया थी—जैसे अब ?

दिलीप ने समझा। कुछ कहा नहीं। डिब्बे के दरवाजे पर खड़ा होकर बाहर देखने लगा। औरतें चुप हो गईं।

बाहर अपने-अपने डिब्बों से निकल कर गोरे सिपाही चाय पी रहे थे। उन्हें फौजी होने के कारण चाय मुफ्त मिल गई थी। और वह हँस रहे थे; क्योंकि कुछ छोटे-छोटे लड़के हाथ में बुरुश लिये उनके जूतों को मल-मलकर कह रहे थे—साब बख्शीश। साब बख्शीश।

कैसा अजब मज़ाक था। यह तो अङ्गरेजों ने तब भी न किया होगा जब वे रोमनों के ग़ुलाम थे, क्योंकि तब वह जंगली थे।

एक गोरे ने छोटे से लड़के को उठा लिया, और हवा में दो-चार बार घुमा दिया। गोरों को आदत पड़ गई है। हर शहर में उन्होंने यही देखा है। यहाँ हिन्दुस्तानी काम करके भी अपने को वेतन का, मज़दूरी का हक़दार नहीं समझता। जो माँगता है, वही—साब बख्शीश, साब बख्शीश...

और वे गिलबिले लड़के, जिन्हें देखकर यही लगता है कि इनके देश में सदा ही अकाल होगा। यह एक पेट है। इंसान सिर्फ़ पेट है। पेट की लाश पर अरस्तू है। अरस्तू की लाश पर लोग कहते हैं खुदा है, पर उसे आज तक किसी ने नहीं देखा। दिलीप का हृदय विक्षुब्ध हो गया।

स्वयं गोरों का हृदय मनुष्य के इस अपमान से क्षुब्ध है। यही है क्या उनकी सल्तनत की शान? क्या योरप के लोगों ने हिटलरी शहतीरों के नीचे दबकर यही नहीं किया? और ये लड़के से दिलीप की उम्र के गोरे। वह क्या देख रहे हैं? उनकी आँखों में आज राष्ट्र का नाम लेकर धर्म अपनी दुहाई क्यों नहीं देता? क्यों नहीं वे सफ़ेद रंग के अभिमानी आज नफ़रत से उन लड़कों में ठोकर मार देते जैसे उनके बाप दादों ने उसे ईश्वरदत्त अधिकार समझकर आज तक किया है? वे अपने पैरों को हँसकर हटा लेते हैं। आज रईस को यह सोच कर झेंप लग रही है कि ऐश का नाम देकर उसने अपने वैभव को दिखाने के लिए जिस औरत से खेल किया है वह सिर्फ़ एक वेश्या है।

एक लड़के ने कहाः 'बाबू कुछ दे दो। दो दिन का भूखा हूँ।'

दिलीप ने चौंक कर देखा। वही लड़का जो अभी गोरे के हाथों पर था, सामने दयनीय सूरत बनाकर खड़ा था और यह भी इंसान का बच्चा है जो परदेशी को हँसा रिझा कर उससे बख़्शीश मांगता था—पेट के लिये। और अपने देश वाले के सामने रोकर भीख मांगता है—अपने देश के नाम पर, पैसे वाले को उसके पैसों की अभिशप्त गुलामी की याद दिलाकर—पेट के लिये।

कहाँ है ईमान ? कहाँ है कोई भी आदर्श ? मन में आता है, उससे पूछे—परदेसियों से भीख माँग कर क्यों देश के नाम पर थुकवाता है। मन में आया दिलीप पाँच रुपये का अपना नोट उठाकर फेंक दे—जा मत मांग। ऐसे गोरे देखें, और समझें कि भारत में कितना विक्षोभ है... मगर गरीबी नहीं मिटेगी उससे, लड़का भिखारी ही रहेगा, और यह विक्षोभ भी केवल उनका रहेगा, जिनके पास पाँच रुपये होंगे। एकन्नी दे दी, और दिलीप ने देखा—लड़का फिर उन्हीं गोरों के पास खड़ा था।

चींटी वहीं जायगी जहाँ गुड़ है। पानी वहीं गिरेगा जहाँ गड्ढा है। आँखें वहीं अटकेंगी जहाँ एक सुन्दर मुख होगा। भीख के हजार मुँह हैं। उनमें हजारों जहर के टुकड़े हैं जो मनुष्य की सत्ता का एकमात्र सबल—उसका सम्मान डसकर मूर्च्छित कर देते हैं।

दिलीप की खुली आँखों को देखकर वह मुँह फेर कर खड़ा हो गया। जैसे उसे कोई मतलब नहीं। वह क्या कोई भीख मांग रहा है ?

दो दिन का भूखा बच्चा है! झूठ ही सही, मगर जिसकी जिन्दगी की हवस ही भूखी है वह क्या भीख मांग कर पाप करता है ? रुपयेवाले पाप करके भगवान् से प्रार्थना करते हैं। दया की भीख मांगते हैं। मगर वह इन्सान से भीख मांगता है, पेट के लिये। पेट भरना तो कोई पाप

नहीं ? फिर यह कैसा बहाना ? कौन सा आत्मसम्मान इस लड़के में बाकी है जो अब भी मुँह फेरने का साहस इसमें शेष है ? इतना बड़ा झूठ बोलकर भी आज इस तनिक से झूठ पर इतनी हिचकिचाहट ? क्योंकि दिलीप देख रहा है। व्याकुल होकर दिलीप ने आँखें फेर लीं। मैं जब तुझे रोटी नहीं दे सकता तो क्या तुझे किसी भी तरह खाते हुए भी नहीं देख सकता ? काश तेरा बाप एक पढ़ा लिखा धनी होता और फिर देखता कि तू दर-दर लोगों के जूते साफ़ करके अपने पेट की आग नहीं बुझा रहा है दीवाने, क्योंकि उसे भी सिखाया जाता कि 'मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों में मिलता है। यह भी तेरे पिछले जन्मों का पुण्य ही होगा और तू भी पशु की तरह फिर एक गुलाम होकर मर जाता।'

इसी समय उसका ध्यान टूटा। एक अधेड़ उम्र की लंबी मेम ने आकर खिड़की पर बैठी बुढ़िया से कहाः 'आप दिल्ली जायेगा ?'

बुढ़िया ने धीरे से कहाः 'हाँ।'

'ज़गह है ?' मेम ने नम्रता से पूछा।

'आइये, आइये' और फिर अपने साथ की जवान औरत की तरफ़ देखा। जैसे चलो अंग्रेज है तो क्या, है तो औरत ? उस सांत्वनाके आनंद में मेमकी बच्ची उछलकर भीतर घुस आई। मेम ने भी भीतर प्रवेश किया। बैरा ने सामान रख दिया और बगल के नौकरों के डिब्बे में चला गया। मेम ने अपनी सिगरेट जला ली।

बुढ़िया उसी की ओर दाँत खिलाये बैठी रही। अधेड़ औरत बाहर देखने लगी। कुछ देर डिब्बे में सन्नाटा रहा। तीनों बच्चे इस समय आपस में एक दूसरे को देख रहे थे। दोनों हिन्दू बच्चे अंगरेजी नहीं जानते, मेम की बच्ची हिन्दी नहीं जानती। अभी उन्हें माँ की बोली के अतिरिक्त और कोई बोली जानने की जरूरत भी क्या है ? कहाँ हैं उनके लिए देश ? इस समय तो वे सारे संसार में एक हैं। कैसी भी संस्कृति हो, वे एक दूसरे के खेलों से घृणा नहीं कर सकते।

बच्चों ने शोर मचाया: 'दादी ! दालमोठ' पूरी ।'

दादी ने कहा : 'अरे रात हो चली । खा लो । फिर सो जाना ।'

बच्चे पूरी और मिठाई खाने लगे । उन्होंने मेम की बच्ची से पूछा भी नहीं ।

मेम की बच्ची थोड़ी देर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से देखती रही, फिर जैसे रहा नहीं गया । कहा : 'ममी' ।

मेम ने मुड़कर देखा । पूछा: 'क्या है ?'

अंग्रेजी ही में बच्ची ने उत्तर दिया: 'भूख लगी है'

मेम ने स्नेह से देखा । फिर मुस्करा दी ।

और दिलीप ने देखा, मेम की वह खूबसूरत बच्ची अखबार के टुकड़े में से निकाल कर डबल रोटी के मक्खन लगे टुकड़े खाने लगी ।

दिलीप का मन हर्ष से काँप रहा है···

यहाँ भूख का मतलब रोटी है । भीख नहीं । यहाँ घृणा साम्राज्य में वह मेम एक विजयिनी के रूप में बैठी है, जिसने अपने अहंकार के दानव को गला घोंटकर मार डाला है, यहाँ बच्चे न गुलाम हैं, न शासक···

मेम की यह बच्ची शाहज़ादी एलिज़ाबेथ न सही, किन्तु क्या इंसानियत की पहली मंजिल तय नहीं कर गई । कब आयेगा वह दिन जब आदमी गुलामी के कौर निगलकर उगलने का कठोर परिहास छोड़ देगा ।

दोनों गोरे लौट आये । बच्ची ने एक की ओर मुस्करा कर देखा । गोरे के मुँह पर हँसी नाच गई । वह प्रयत्न कर के नम्र होना चाहता है ।

किन्तु मेम ने उसे एक नीरस शुष्क उत्तर दिया । वह उसकी ओर कोई दिलचस्पी नहीं लेना चाहती । और गोरा फिर भी नम्र है । स्त्री की यह अहम्मन्यता अब उसे स्वीकार है । क्षण भर पहले उसे यह

असंभव था क्योंकि शायद तब यहाँ सिर्फ गाय, भैंस और बकरियों का जमघट था। उन दो बच्चों की सरलता पर जो व्यक्ति स्याही की दावात बना बन्द सा बैठा था, इस बच्ची की एक मुस्कान पर वह जाना चाहता है—कठोर, जो घर से दूर है, जिसका जीवन फौज की एक बन्दूक मात्र है······और वह इंसानियत और हैवानियत के गचके खा रहा है, जिसके दंभों की बैलगाड़ी बहुत धीरे चल रही है···सरक रही है······

दिलीप का हृदय ऊब रहा है।

बच्चे आपस में खेल रहे हैं, ऊधम कर रहे हैं, किलकारियाँ भर रहे हैं, साहब की बच्ची के साथ, जैसे वे दोनों बराबर हैं, उनमें कोई फर्क नहीं, क्योंकि आज दोनों के कोई स्वार्थ नहीं······

सुना, प्लेटफार्म पर सेठ अपने साथी से कह रहा है: 'देखिये तो, क्या जमाना है। आज मजदूरों में मिठाई बँटवाई कि चलो, इनका भला हो, मगर वे समझे, वह कोई हमारी बिल्कुल नई चाल है!'

एक झटका लगा। गाड़ी फिर चल पड़ी और ऐसे ही यह रुकती गिरती चलती ही चली जायगी। लेकिन दिलीप के दिल में ख्याल आता है कि वह मिठाई, मिठाई नहीं है, वह इंसान के रोटी माँगने पर उसे आस्मान की ओर दिखाकर उसके ईमान के सांप जिन्दा करना है, उसकी इंसानियत की नीवें खोद खोदकर उनमें लुटी हुई अस्मत की हड्डियाँ बिखेरना है कि फिर जो मीनार खड़ी हो वह कभी न गिरे······नहीं ही गिरे······

किन्तु बच्चे खेल रहे हैं और वे हँस हँस कर ही उसे गिरा देना चाहते हैं······उसका नामोनिशान मिटा देना चाहते हैं।

# भय

सांझ हो गयी है, सूरज डूब गया है और आकाश से एक सूना सा अन्धकार उतरता चला आ रहा है। गांव के रास्ते अब सुनसान होने लगे हैं। मोरों की केका कभी कभी सुनाई दे जाती है और उसके बाद सन्नाटा घनी उसास लेकर एक लम्बी अँगड़ाई लेता है और उसके अनन्तर तह पर तह जमता सूनापन धीरे धीरे बरसता सा लगता है और...

मुरली खाती ने अपनी आरी और अन्य औजारों को उठाकर रख दिया और एक बार ऊपर के अड्डे की ओर देखा। उस समय घरों से धुंआ उठ रहा था। एक उम्रदार औरत सिर पर घड़ा भरकर कुएँ से धीरे धीरे लौट रही थी। उसने एक लम्बा कश खींच कर हुक्के को तनिक आगे सरका दिया और फिर आकाश की ओर देखा...

दूर कोई ललकार उठा। फुलवारी में से फटफटाकर कुछ पन्छी उड़े। मुरली ने सुना कोई उत्तर में चिल्लाया। कान खड़े हो गये। इसके बाद कुछ लोग जोर जोर से चिल्लाकर बातें करने लगे जिनका कुछ भी अर्थ स्पष्ट नहीं था। हां, शब्द से इतना अवश्य मालूम होता था कि यह लड़कों का हुड़दंग नहीं है। फिर चटाचट आवाज आयी। लाठियाँ बज रही थीं। मुरली उठ कर खड़ा हो गया। एक बार मन किया दौड़कर बीचबचाव करने जाये फिर विचार आया, कोलिकों का मुहल्ला उधर ही तो है। जरूर आपस में कहा सुनी हुई है। जब वे ही लोग इकट्ठे नहीं हुए तो वह क्यों जाये ? वह क्या कोई उनकी बिरादरी

का है ! न उनसे खान, न पान । फिर भी मनुष्य का हृदय था । उत्सुकता उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति थी।

कोई भयानक स्वर से चिल्लाया । किसी के ठठाकर हँसने का भीषण स्वर गूंज उठा ।

भागने मत दीजो पहलवान—हांफते हुए किसी ने ललकारा ।

अरे ले गई हरामजादी ।

पकड़ ले साली को । आज इसे भी दो कर दें । इसी की लगायी आग है ।

फिर लाठियां बजीं । एक हृदय हिला देनेवाला स्त्री का करुण चीत्कार अन्धकार में खिंचियाकर बन्द हो गया ।

उसके बाद लोजो दीजो हुई और बहुत से स्वर उठने लगे । शायद भीड़ इकट्ठी हो गयी थी । औरत मर्द और बीच बीच में बच्चों का आवेश भरा स्वर । कुछ नहीं । मुरली ने आवाज दी—कौन है रे ?

पड़ोस से बूढ़े सुखराम ने खाँस कर कहा—क्या बात है ?

लगता है फौजदारी हो गयी है ।

देख तो क्या बात है ।—सुखराम ने कहा और फिर वह स्वर ऐसा निस्तब्ध हो गया जैसे बोलनेवाला भी अन्धकार में एकदम डूब गया हो ।

जिस समय मुरली ने देखा रमल दयनीय मुख लिये सुबक रहा था और धूरी चिल्ला चिल्ला कर, रो रो कर दुहाई दे रही थी । केवल तुरसी था जो गम्भीर बैठा था । लालटेन की धुंधली रोशनी में मुरली ने देखा बूढ़ा, पतला दुबला, सूखा साखा, खून से भींगा हुआ था । उसके सिर में काफी चोट आयी थी । तीन घाव लगे थे जिनसे समय बीत जाने के कारण अब गाढ़ा होकर धीरे धीरे लीक पर इकट्ठा होता जा रहा था । बूढ़ा बिल्कुल निर्भय बैठा था ।

चन्दन दर्जी ने आगे झुक कर अपनी राय में बिल्कुल डाक्टर की भांति मुआयना किया और वह उठा—उठ रे तुरसी ! थाना चल ले ।

किन्तु धूप के हाहाकार में वह स्वर लय हो गया। स्त्रियों की रायें पत्थरों की भांति बरस रही थीं जिनका कोई अर्थ नहीं था। मुरली के हृदय में एक पसीज उठी और उसने तुरसी का कन्धा पकड़ कर कहा—तुरसी, सुनता नहीं है? रमल की अम्मा क्या कर रही है!

एक अधेड़ स्त्री ने आगे बढ़कर कहा—देखो, बिचारी के लट्ठ ही लट्ठ मारे हैं। डोकरी का सिर सूज गया है।

मुरली ने देखा धूपो की बाईं भौंह के ऊपर एक गुम्मड़ उछल आया था। बात का जैसे कहीं अन्त नहीं था। अँधेरा बढ़ता जा रहा है। निरबाध कोलाहल की कर्कशता से मोरों का आर्त्त स्वर अब फुलवारी से निकल कर गांव के कुत्तों को चुनौती दे चुका था। अनेक मर्द इकट्ठे हो गये थे जो तुरसी से बारी बारी से तथा एक साथ सवाल पूछ रहे थे और वह चुपचाप सुन रहा था। उसकी आंखें ऐसी जल रही थीं जैसे लून से भीग हुआ सूखे चमड़े वाला मटमैला गिद्ध घूर रहा हो एक बार उसने रमल की ओर देखा और क्रुद्ध स्वर में कहा क्यों रोता है रे। कोई मर थोड़े ही गया है। है किसी में मजाल जो तेरा कोई कुछ कर सके!

छोटा है, दहशत खा गया है—धूपो की चोट दिखानेवाली स्त्री ने कहा। तुरसी चुप हो गया।

धूपो का क्रन्दन बढ़ता जा रहा था। किसी ने डांटकर कहा—क्यों हाय हाय करती है! सुनने क्यों नहीं देती आखिर बात क्या हुई!

तुरसी ने मुड़ कर एक बार बुढ़िया की ओर देखा और उसके मुँह से जैसे बात फिसल गयी—औरत है।

स्वर में स्नेह था। अटूट शक्ति थी। बुढ़िया चिल्लाना बन्द कर के आंखों के पानी को फरिया से पोंछने लगी जैसे अभी भी उसका जीवन सार्थक है, अभी भी उसका मरद मरद है, डरा नहीं है। आगे बढ़ कर

आँचल पसार कर कहा—ऐ कोई देखन सुननहार हो तो देखे ! डोकरा का सिर फोड़ दिया है—लहू की धार बह रही है...

फिर कण्ठ रुँध गया। बल लगाकर फिर बोल उठी—कोई नहीं है हमारा गांव में—मैं इस गांव की बेटी लगती हूँ, आज तुम्हारे जीजा के सिर से लहू की धार बह रही है...

बूढ़ा तुलसी उठ खड़ा हुआ। एक बार उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा—उसने देखा है, इनने देखा है। किसने नहीं देखा। जो पीछे हटेगा वो अपने बाप का पूत नहीं, इस अन्याव (अन्याय) का बदला लिये बिना नहीं छोड़ूँगा...

सुबकने की आवाज बन्द हो गयी। पतला दुबला रमल मा बाप के पास आ खड़ा हुआ था। लोग सुन रहे थे। निर्भय स्वर से बूढ़ा सारे गांव को चुनौती दे रहा था। उसके स्वर में प्रतिशोध की आग धधक रही थी।

❀ ❀ ❀ ❀

बात बढ़ने को थी, उसका घटना हर प्रकार से असम्भव था। धूगो ने घर में झांक कर देखा। धुंधला दीपक जल रहा था और डरी हुई रमल की बहू रतनी बैठी थी। उसके मुड़े हुए घुटनों पर उसका सिर रखा था और शायद वह चुपचाप रो रही थी। धूगो उसके पास चली गयी और थोड़ा देर उसे घूरती रही जैसे उसके पास वे कठोर शब्द हैं ही नहीं जिनके रतनी अपने आप को योग्य साबित कर चुकी है। फिर उसने धीरे धीरे द्वार की ओर अच्छी तरह देख कर और यह तय कर कि कोई निकट नहीं है कहा—कुलच्छनी! तेरे पीहर में यही होता था? मैं तो पहले ही कहती थी पर रमल के बाप ने मेरी एक नहीं सुनी। मैं तो जानती थी कि तेरे गांव में यही एक काम होता है।

रतनी ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप शायद रोती ही रही। फिर भी नहीं

उठाया। वह जिसकी आशा में थी अब वही तो हो रहा था। बच्चा बीमार हो जाये तो सुश्रूषा स्नेह के साथ क्या उसे डांटा नहीं जाता कि इतना क्यों खा रहा है?

किन्तु धूपो इतने पर ही नहीं रुकी। उसने उसके कन्धे को झकझोर कर विषाक्त स्वर से झल्लाकर कहा—तू जरूर उसे चमक दिखाती होगी झमको। मैं तो उसी दिन खेत में उसे गाते हुए देखकर समझ गयी थी। पर मैंने कुछ कहा नहीं। घर की बहू है तू, कल तेरे पूते बंस चलेगा और तू मेरी जगह लेगी सो तनिक न सोचा गया तुझसे?

एक बार रतनी ने सिर उठाकर बुढ़िया की ओर दयनीय नेत्रों से देखकर कहा—पर मैं क्या करती? वे तीन थे। दो ने मुझे जबदस्ती पकड़ कर मेरे मुँह में कपड़ा ठूंस दिया। मैं चिल्ला भी नहीं सकी। और तुमने देखा तो हल्ला क्यों किया? जब बचाने की ताकत न थी तो बेआबरू कर के ही तुम्हें क्या मिल गया?

और रतनी की आंखों के आंसू टप-टप करके टपक पड़े। वह जैसे अवरुद्ध हो उठी थी।

बुढ़िया इस अप्रत्याशित उत्तर से एकदम चौंक उठी। उसने फुफ-कार कर कहा—तो तुझे यारों के साथ गुलछर्रे उड़ाने को छोड़ देती, तेरे गांव में होता होगा ऐसा। नहीं होता हमारे। समझी? हमारे ऐसा नहीं होता। क्या समझी? हाय परमात्मा सुन रहा है। क्या कह रही है? और तेरे मुँह में आग लगे...

मन में आया कि रतनी को दौंचकर धर दे किन्तु बात खुल जाने के भय से विवश हो क्रोध से अपना सिर पीट लिया। यदि वह उसपर हाथ छोड़ती है तो अभी यह सारा गांव चिल्ला चिल्ला कर इकट्ठा कर लेगी और जो देखेगा सो जानेगा और थू थू करेगा। यह बात तो कैसे भी छिपानी ही होगी। किन्तु उसके शरीर को चोटें दुख रहीं थीं। क्या करे

वह ! दीप कांप रहा था। अँधेरे पर जैसे उँगली हिलाकर कुछ मना कर रहा हो, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु धूपों यह नहीं सोच सकी। उसके दिमाग में एक भयानक उथल-पुथल थी। उसने निराशा से ऊपर देखा जैसे भगवान् से प्रार्थना कर रही हो, किन्तु भगवान् इन कचहरियों से कभी का निकाला जा चुका है। बुढ़िया का कर्कश किन्तु धीमा स्वर फिर सिसकने लगा: अब न हम इधर के रहे न उधर के। इस वक्त भी तो कुन्दन आया था ?

आया था। मैंने द्वार नहीं खोला।

पर हमें तो खुला ही मिला था हरामजादी !

रतनी रतरता उठी। मनमें आया, प्रतिवाद कर उठे। किन्तु फिर सिर झुकाकर कहा शोरगुल सुनकर खोल दिया था।

खोल दिया था कि आ जा। अब क्या धरा है जो इज्जत थी सो तो लुटा ही दी। बेटी, दूध कैसा ही दूध हो, गरम गरम तन पर पड़ेगा तो जलायेगा ही।

रतनी ने तड़प कर कहा—तो इन्तजाम कर दिया होता पहले ही। मैं नहीं जाती थी खेतपर। तुम ही कहती थीं कि हाथ पर हाथ धरे खा रही है...

और तेरा सत्यानाश हो जाय...कुछ बेहूदी और अश्लील गालियाँ फूट निकलीं और क्रोध से बुढ़िया दाँत किचकिचा कर उठी। एक बार रतनी ने आग्नेय नेत्रों से देखा। क्या है तो ? डरती है वह किसी से ? जिसमें उसका बस नहीं उसमें उसका क्या दोष ? आँसू पोंछ लिये। फिर सिर उठा दिया। किन्तु अपराध की छाया अभी भी भीतर का संकोच बिल्कुल ही मिटा नहीं पाई थी।

रतनी खड़ी हो गई। उसका यौवन उसके अंग-अंग की श्यामलता में झलक रहा था। उसने सिसकते हुये कहा—तुम्हारे एक बेटी होती और उसके साथ ऐसा ही होता तो तुम उसे माफ

न कर देतीं ? हमारे गांव के मरद ऐसे नहीं होते। तुम्हारे भैया ही ऐसे थे तो पहले ही कह देतीं।

धूपो का हृदय आर्द्र वेदना से पसीज उठा। कुन्दन एक भयानक पिचाश के रूप में कल्पना में आ गया। आखिर रतनी करती भी तो क्या ? कुन्दन तो रमल का दूर का मामा लगता था। उससे क्या ऐसी आशा थी। स्त्री के साथ बलात्कार की इस विभीषिका की कल्पना ने उसके स्त्रीत्व की करुणा को जगा दिया किन्तु संस्कारों ने कहा—ऐसी स्त्री भी त्याज्य है, वह छिनाल है। और घृणा ने बढ़कर उसके पूर्व विश्वासों को बल दिया। उसके बेटे की ऐसी बहू ! मर जाये तो...जगत धरेजा करती पर उसके पूत के गले में चक्की का ऐसा पाट डला रहेगा तो वह कितने दिन पानी से बाहर रहेगा। और फिर उसी के खानदान पर ऐसी कठोर बात कहने का दुस्साहस कर रही है यह लड़की ! उसने कहा—तो ऐसी ही रानी थी तो चली जाती किसी बामन ठाकुर के सौत ! यहाँ नहीं निभेगी ऐसी। कुलटा ! हरामजादी, तेरी माँ करती होगी ऐसा...

रतन लहर कर खड़ी हो गई। और उसने तीखे स्वर से कहा—अब मत कहना ऐसी बात।

किन्तु धूपो क्रोध से पागल हो रही थी। उसने होंट काटकर कहा—निकल जा यहाँ से रांड़...

किन्तु वाक्य पूरा नहीं हो सका। कहते कहते बीच में ही रुक गई और आबद्ध सी होकर कहने के साथ ही जीभ काट ली।

अपने पुत्र की मृत्यु की इच्छा कर रही है वह ? वैसे तो न जाने कितनी बार यह शब्द कहा होगा किन्तु इस बार तो उसे जैसे वह शब्द एक भयानक सर्प बनकर मुँह से निकला था जो उसी के सुख-स्वर्ग को डस लेना चाहता था।

रतनी निर्भय खड़ी रही। उसने सिर उठाकर कहा—वो घर रखो अपनी अपनी गिरस्ती। मुझे नहीं रहना है। भगवान जानता है, मैं निरदोष थी और अब भी निरदोष हूँ। मै नहीं डरती किसी से। ऐसे घर में नहीं रह सकती मैं। सब तरह की गुलामी कर सकती हूँ पर रहूँगी व्याहता बन के। रखना था रखा, नहीं पटती, जाती हूँ बाप के घर। मुँह दिया है तो खाने को न देगा...

इसी समय द्वार पर रमल दिखाई दिया। रतनी हांफ रही थी। उसकी आँखों में अपमान, विवशता, प्रतिशोध और दया की भीख सबको एक चुनौती ने दाब दिया था जैसे वह किसी से नहीं डरती।

क्या हुआ?—रमल ने सन्दिग्ध स्वर से पूछा?

जा रही है बाप के घर।—बुढ़िया फुंकार उठी।

जा रही है बाप के घर—रमल ने बात को धीरे-धीरे तोड़ कर दुहराया, फिर बढ़कर कहा—मैं नहीं रोकता। पर एक बात पूछता हूँ। जवाब देगी?

रतनी ने कुछ नहीं कहा। सिर झुक गया।

पूछता हूँ—रमल ने आगे बढ़कर कहा—इस घर में तू क्यों आई थी? किस नाते आई थी? फिर आज छोड़कर क्यों जा रही है? यही है तेरा ईमान?

स्वर एक बार काँप उठा। औरत औरत को क्षमा नहीं करती, नहीं सुहाती। मैंने तो कुछ नहीं कहा। और यह मेरी माँ है। दो बात तू नहीं सुन सकती?

उस दिन ढोल ताशे बजे थे। धरम ने उस दिन उसे पति दिया था। वही तो उसका कमरा था, मालिक था। रतनी ने सुना; वह कह रहा है जो पूरी बिरादरी में हाथ पकड़ कर लाया था। सारे गांव ने गीत गाये थे उस दिन। लुगाई का और क्या सुख है, क्या धरम है, क्या पुण्य है। दो ठोकर भी दे तो क्या,

वह पांव अपना ही नहीं है ! क्या कहेगी दुनियां, जो चली जायगी वह ! फिर क्या सुख है उसे संसार में !

अभिमान अब भी आगे ठेलना चाहता था, वह जो सरलता से कभी सिर नहीं झुकाता। किन्तु दोनों ही पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। रमल सामने खड़ा है। उसका भी तो कोई कसूर नहीं। बदनामी हो रही है तभी तो उसे गुस्सा आया। फिर भी उसने कहा ही क्या है ! आदमी कहाँ है वह ! देवता है। और कोई होता तो दो लात देकर निकाल देता। पर क्षमा कर दिया है उसने।

मन कचोट उठा। आँखों की राह अभिमान का विष बह गया, वही जो शक्ति बनकर ताप की भाँति था। कटे पेड़ की भाँति वहीं गिर गई और फूट-फूट कर रो उठी। कहाँ से लाती इतना साहस कि उसे भी ठोकर मार जाती !

रमल ने देखा और चुपचाप बाहर चला गया। धूपो ने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

* * * *

बाहर अभी भीड़ थी। अब सब अपनी अपनी रायें दे रहे थे। कुन्दन और उसके साथियों को सभी भला-बुरा कह रहे थे। अंधेरे में ऐसा कायर हमला किया और सो भी तब जब बेटा निहत्थे थे। रमल तो भाग गया किन्तु धूपो लाठी की चोट खा गई। नामरद ! औरत पर भी हाथ छोड़ते नहीं हिचकिचाये !

रमल—तुरसी ने अचानक ही कहा।

पुत्र ने पिता की ओर देखा।

तुरसी ने कहा—आज तैंने वंश की नाक कटा दी। मर क्यों न गया पैदा होते ही कमीन—और दाँतों से जीभ काट ली। जैसे कुछ

कहना चाह कर भी कहने में असमर्थ था। चारों ओर देखा जैसे कोई जान तो नहीं गया। रजल ने सिर झुका लिया।

बूढ़ा क्रोध से काँप रहा था। उसने फिर कहा—इसका बदला लेना होगा, समझा। साला होगा अपने घर। मैं नहीं किसी का जीजा। समझा। चक्की पिसाऊँगा, बेटा से चक्की।

धूरो ने स्नेह से रक्त को ओर हाथ में कपड़ा लेकर इंगित किया—अब ये पनारें चल रहे हैं इन्हें तो रोको। राम राम, सारी देही निचुड़ गई। यह भी नहीं देखा कि बूढ़ा है।

हैं, हैं, क्या करती है। पुलिस में रपट करूँगा। वहाँ क्या दरोगा बिना खून देखे विश्वास कर लेगा !

कितना कठोर सत्य था। बिना रक्त देखे वह कैसे विश्वास करेगा।

किन्तु तबतक ऐसे ही रक्त बहता रहेगा !

उठा हुआ हाथ झुक गया। तुरसा ने फिर कहा—डागदरी (डाक्टरी) मुआयना कराके तब पोछूँगा इसे। घबराती क्यों है ! मुफत में खून गिरा है तो मुफत ही नहीं छोड़ दूँगा बेटा को।

वृद्ध की प्रतिहिंसा स्थिर पाषाण सी हो गई थी। वह अब न गाली दे रहा है, न उत्तेजित है। गुस्सा ठंडा होकर रगों में व्याप गया है जिसमें रक्त से भी अधिक शक्ति है।

सारा गाँव गवाही देगा—तुरसो ने विश्वास से कहा—साँच को आँच क्या ? पापी की खैर करे तो भगवान का नाम काहे का। मैं नहीं छोड़ूंगा।

वह उठ खड़ा हुआ। किसी में भी विरोध करने का साहस न था।

जिस समय वे दरोगा जी के पास पहुँचे सिपाही ने बाहर ही रोक कर सब हाल पूछा। तुरसो ने भारी स्वर से सब बयान कर दिया। सिपाही ने कहा—कुन्दन आया था। दो सौ दे गया है !

दो सौ ! तुरसी ने लड़खड़ाती जबान से कहा।

सिपाही ने सिर हिला बता दिया।

तो तीन सौ मैं दूँगा—तुरसी ने सिर उठा कर कहा। भले ही लड़ाई की नफाई भी उठ जाये, वह क्रोध के कारण अन्धा हो उठा था।

मैं कहे देता हूँ। सिपाही भीतर चला गया।

धूपो ने एक बार शंकित नयनों से देखा।

भीतर बुला कर दरोगा ने गम्भीर स्वर में कहा—सो तो ठीक है, जा डाक्टरी मुआयना करा ले। कुछ लड़की बड़की का किस्सा तो नहीं है?

नहीं हुजूर।

किन्तु दरोगा घिसा हुआ था। उसने मुस्कराकर कहा—तो फिर फौजदारी क्यों हुई?

हुजूर—तुरसी ने कहा—लड़ाई में कमा लि येहैं साले ने। गेहूँ पचाने को लोहे का पेट चाहिये।

दरोगाजी बोले—मामला बना दूँगा। और वे उठ कर भीतर चले गये। तुरसी बैठा रहा। धूपो को इंगित किया। उसने धीरे से रमल से कहा—बेटा घर जाके रुपया ला। तुझे मालूम है कहाँ धरे हैं?

किन्तु रमल में इतनी शक्ति कहाँ थी कि अकेला अंधेरे में घर तक आए। कौन जाने राह में ही कुन्दन के यार दोस्त खड़े हों और अभी अभीं तो वे यहीं थे ही। यहीं कहीं छिपकर खड़े होंगे। धूपो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई।

रमल ने सुना और वैसा ही बैठा रहा जैसे उसमें जीवन ही शेष नहीं रहा।

धूपो ने करम ठोंक लिया। एक ओर पति दूसरी ओर पुत्र। दोनों की ही जान का खतरा था। किन्तु पुत्र के भय में पिता की उपेक्षा करने

का कितना भारी साहस था पुत्र वह खिलौना ! और पति का स्नेह रुक गया । वह तो मरद है !

और पिता को क्रोध और स्नेह ने अभिभूत कर दिया । स्नेह इसका कि पिता की छाया है तभी तो अपने को बालक समझता है । जानता है जब तक बाप है तब तक उसके ऊपर लोहे का हाथ है और क्रोध इसका कि कम्बख्त ऐसा डरपोक है । लीजो ह'थ में लाठी, फिर जुट जावे सारा गाँव एक तरफ, पर वह जवानी के दिन चले गये । लाचार उसने सिपाही की ओर देखा ।

वह उठा । सिपाही को साथ लेकर पहले घर गया । पीछे-पीछे लालटेन लिए धूगो थी । बीच में रमल । घर जाकर उसने पाँच-पाँच के गिनकर साठ नोट सिपाही के हाथ में दिये और पैर पकड़ लिये । सिपाही के मुँह से कुन्दन के लिए गाली निकली !

अब कुन्दन ज्यादा दे आये तो ? धूगो ने प्रश्न किया ।

जमादार हमारे हैं ।—तुरली ने केवल इतना ही कहा ।

डाक्टर उस समय सो रहा था । जाकर जगाया गया ।

उसने घाव देखा । एक घाव पूरे डेढ़ इञ्च का था । रक्त पोंछते ही दरार साफ दिखाई देने लगी ।

डाक्टर ने सुनाकर कहा—कुन्दन ! इतनी हिम्मत ! सरकार का राज उठ गया क्या ?

वह हंसा । और पट्टी बाँधने लगा । वृद्ध यन्त्र की भाँति खड़ा रहा । अविचलित जैसे उसे कुछ हुआ ही नहीं ।

इसी समय नौकर ने इशारा किया ।

डाक्टर भीतर चला गया । नौकर ने धीरे से कहा—डाक्टर साहब, अभी वह आया था । मैंने कह दिया, सो रहे हैं । मुझे क्या खबर थी, यह बात होगी । कहता था तुझे खुश कर दूंगा । हुजूर''''''।

कौन था ? कहता क्यों नहीं ?—डाक्टर ने झुंझलाकर कहा ।

कुन्दन था—नौकर ने काँपते स्वर से कहा।

कुन्दन—डाक्टर ने कहा—क्या कहता था ?

जो माँगेंगे सो दूँगा।

अरे—डाक्टर के मुँह से हठात् शब्द फूट निकला। कैसा सुनहला मौका हाथ से आकर निकल गया। खरे दो सौ दे जाता। सारा मुकदमा उसी के हाथ में है। अगर वह रिपोर्ट में जरासी गड़बड़ी कर दे तो एड़ी चोटी का जोर लगाकर भी तुरसी कुछ नहीं कर सकता। दवा हुआ है कुन्दन इस वक्त। इशारे की बात है। तो वह उसे टाल दे और कुन्दन को बुलवा कर एक बार उससे बातचीत तो करले। ईमान का सौदा है। उसने क्या सजा लायक काम नहीं किया ?

किन्तु अन्तरात्मा एक बार क्रन्दन कर उठी।

तुरसी का जर्जर शरीर आँखों के सामने घूम गया। वह अकेला है, दरिद्र है। क्या वह इतने भयानक घाव को भी घाव नहीं लिखेगा ? क्या उसकी प्रतिज्ञाएँ सब व्यर्थ हो जायँगी ? पाप का नतीजा कौन नहीं भोगता।

डाक्टर ने स्थिर स्वर से नौकर से झुक कर कहा—जाकर कह दे फीस दे दस रुपये—ज्यादा लूँगा अच्छी मनचाही रिपोर्ट लिख दूँगा। गरीब आदमी है। उसका क्या किसी को भी साथ नहीं देना चाहिये ? नौकर चला गया। डाक्टर अपने मन में प्रसन्न थे। नौकर तब तक सिपाही को समझा चुका था।

डाक्टर लौट आया। उसने घूरो की सूजन पर अपने हाथ से टिंचर आयडिन लगाई और आश्वासन दिया कि गरीबों का संसार में ऐसा नहीं कि कोई हो ही नहीं। इतना बड़ा घाव तो उन्होंने बरसों से नहीं देखा था और सारा गाँव देखता रहा किसी ने भी कुछ नहीं कहा। उधर सिपाही अपनी बात कह चुका था। तुरसी ने सुना और समझा। उसने चुपचाप स्वीकार कर लिया। जैसे सेर वैसे सवा

सेर। लुट जाये, खाक हो जाये, मगर कुन्दन की मस्ती झँझोड़ कर निकाल दूगा।

सिपाही ने हँसकर कहा—घबरा मत। सब वापिस मिल जायगा।

तुरसी ने निर्विकार हृदय से अनुभव किया।

रात को सिपाही तुरसी के घर ही सो रहा। घर का एक मात्र मैचा (बड़ी खटिया) उसके लिए बिछा दिया गया था।

रात का तीसरा पहर ढल चुका था। आसमान में तारे अब फीके पड़ चले थे। हवा बाहर सनसना रही थी।

बूढ़ा बड़ी देर तक बैठा रहा। पट्टी सिर पर बँधी थी। धूगो ने खटोला डालकर तुरसी को अपने सिर की कसम देकर लिटा दिया। अब सिर में दर्द होने लगा था। वृद्ध कराह उठा। रात के अन्धकार में उस एकान्त में जैसे पत्थर, वह जो अब तक कठोर पत्थर था, अब चटक उठा था।

रमल करवट बदल कर लेट रहा। सिपाही खर्राटे भर कर सो रहा था। और तुरसी सोच रहा था, रिस रिस कर जमा किये थे सो एकदम ही उठ गये जैसे वे उस खेत पर पहरा दे रहे थे जिसे आधा जंगली सुअर खा चुके थे। भयानक बेचैनी थी। कौन जाने फिर कब हमला कर दें।

उस रात कोई नहीं सोया।

❀ ❀ ❀ ❀

भोर हो चुकी थी। तीन दिन से तुरसी खाट से नहीं उठा था। सारी देह टूट रही थी। धूगो रात दिन वहीं बैठी रहती। सारे गाँव में सम्वाद बिजली की भाँति फैल गया था किन्तु आपस में बहस करके भी सब अपना अज्ञान ही प्रकट करना चाहते थे कि वे दूसरों के विषय में कुछ भी नहीं जानते। उनकी राय में दूध का धुला कोई नहीं है और रमल की बहू के पीछे झगड़ा हुआ है, सब का यही अन्दाज था।

गाँव के पंडित जी और मास्टर साहब दोनों ही ने कुन्दन को सामने देख कर एक दूसरे की ओर भेद भरी आँखों से इंगित किया। वे सब जानते थे। फिर भी पूछा—कैसे आया कुन्दन?

कुन्दन पैर छूकर बैठ गया। पगड़ी उतार कर पाँवों पर रख दी और कह गया कि पहले दंगा शुरू कर के जब तुरसी पिट गया तो पुलिस में जा रहा है। दरोगाजी उस पर मेहरबान हो गये हैं। महाराज, मैं तो कहीं का नहीं रहा।

देख भाई कुन्दन, दरोगा का मामला है। इसमें—पंडित जी ने स्वर लम्बा करके कहा—हम बोलने वाले कौन?

तो महाराज, अब मेरा कौन है? मैं कहाँ जाऊँ? कहो तो गाँव छोड़ जाऊँ?

पंडित जी पिघले। एक ओर भय था, दूसरी ओर ब्राह्मणत्व का अभिमान जिसमें से थोड़ा-सा, अपनी विद्या के बल पर छोटी सी ही सही, अर्जित सम्मान प्राप्त कर, गाँव के मास्टर साहब ने बाँट लिया था।

उन्होंने मास्टर साहब की ओर देखा। दोनों ने फिर इंगित किये और पंडित जी ने ऋषि विश्वामित्र की भाँति अभय देकर कहा—तो संझा को आज तय कर देंगे।

जैसे जीवित ही त्रिशंकु को स्वर्ग पहुँचा देंगे।

शाम को जब गाँव के दस मुअज्जिज़ आदमी इकट्ठे हुए तब दोनों पक्ष आ गये। तुरसी की बातें उठी उठी थीं। कभी कहता था, सारे गाँव के आगे पाँव पर पाग धर दे, माफ कर दूंगा।

जिसका जवाब लोग देते थे—साले की बहनोई के सामने क्या इज्जत जब घर की बेटी ही ब्याह दी, जिसकी माँ ने पाँव पूज दिये उस घर का बेटा क्या पाँव छूने में हिचकिचायेगा?

तुरसी के आत्मसम्मान को भीतर ही भीतर सन्तोष होता। धूरो

छुपा करती रहती। लोगों के सामने रोती कि कैसे बूढ़ा तुरसी तीन दिन तक निराहार खटोले पर पड़ा पड़ा कराहता रहा और इस प्रकार उनकी करुणा की भीख पाने की अभिलाषा रखती। परन्तु गाँव वाले इस कान से सुनते उससे निकाल देते।

तुरसी—परिडतजी ने कहा।

हाँ महराज—तुरसी ने हाथ जोड़ कर हाजिरी दी।

हमने सुना है तुझसे कुन्दन का झगड़ा हो गया।

पूछ लो महाराज, वह क्या कोई दूर है?—तुरसी ने ताना मारते हुए कहा।

कुन्दन—परिडतजी ने मुड़कर कहा—सुन रहा है?

कुन्दन का सिर झुक गया।

क्या कह रहा है तुरसी, सुना?

कुन्दन ने सिर हिला दिया।

हाँ, कहकर परिडतजी ने बढ़ावा देते हुए कहा—बोलता क्यों नहीं है? और कुन्दन की धीमी सी 'हाँ' सुनकर परिडत जी ने फिर मुड़कर कहा—हाँ भाई तुरसी, तो झगड़ा हुआ क्यों?

तुरसी ने कुन्दन की ओर देखा। कुन्दन ने तुरसी की ओर। कुन्दन का हृदय उछल रहा था। क्या कहेगा तुरसी? चाकू खरबूजे पर गिरे, या खरबूजा चाकू पर। मौत खरबूजे ही की है। इतनी बड़ी बदनामी की बात कह सकेगा तुरसी? और यदि नहीं कहेगा तो कहेगा क्या?

और तुरसी उसे ऐसे देख रहा था जैसे कच्चा ही चबा जायगा।

कौन जाने साहब—तुरसी ने अभिमान से कहा—जाने कब की दुश्मनी निकली है। हमने तो कुछ कहा नहीं।

यह बात न जमने वाली थी, न जमी। आखिर कोई तो वजह रही होगी। कुन्दन कैसा भी हो, पागल तो नहीं है।

मास्टर साहब ने मूछों पर नीचे की ओर हाथ फेरते हुए कहा—भाई यह भी कोई बात रही, आखिर तू कोई उसका गैर है, अरे वेष तो वह साला है······

तुरसी ने तड़पकर कहा—मेरा नहीं है कोई साला, न बहनोई। हम तो इस गाँव में अकेले हैं। मैं तो जेल भिजवाकर रहूँगा। मुरव्वत तो उससे जो अपना हो, और जिसने घर की घर में न रखी तो उससे कैसी रसम?

उसके स्वर का संघर्ष व्यक्त था। एक लरज थी, एक झुम्भिरा। पर हो तो क्या? बात खतम होते होते सुनने वाले ने एकदम कहा—ऐसी क्या बात कही भाई तुरसी। एक गाँव में रहना है, एक जगह घर है। फिर भाई समझौता तो दोनों ओर से झुके का नाम है।

पंडितजी ने हाथ फैलाकर कहा—कह दो मन की बात। यों बजती है यों, दोनों हाथ से······

और उन्होंने ताली बजाकर दिखायी।

कुन्दन सिर झुकाकर मुसकराया।

समझौता करोगे? और उन्होंने कुन्दन की ओर देखकर कहा—चोट तो तुरसी के लगी है। हरजाना तो तुझे देना ही होगा।······ चल धर दे इधर।

कुन्दन ने पैंतालिस रुपये पण्डितजी के पैरों पर रख दिये।

कितने हैं?

महाराज पाँच कम पचास। पण्डितजी के नयन फैल गये। तुरसी अडिग रहा।

मास्टर साहब अंग्रेजी भी थोड़ी-सी पढ़ गये थे। जानते थे कानून तब कानून बनता है जब उसके पीछे डण्डे की मार होती है वरना भइया कहने से कभी कोई अपने आप स्वीकार नहीं करता। समझ-

दारी ही से ही काम लेना चाहिए। उन्होंने मूँछें थरथराकर कहा—पर मुकद्मे को क्या तू आसान समझता है ! बरसों की पिट जायेगी बरसों की।

पण्डित जी ने सिर हिलाकर कहा—तू नहीं जानता मुकद्मे-बाजी खेल नहीं होती। लड़ाई में कमाई की है तो उसे कल के काम के लिए बचाकर रख भाई। यह तो ऊँची जातों के काम हैं। बनिया हुए, बामन ठाकुर हुए।—और मुड़कर कहा—कभी कोलियों के भी मुकद्में सुने हैं भाई ?

उपस्थित समाज हँस उठा।

मुरली ने सिर हिलाकर कहा—और क्या भइया। एक रात में कितने ही उठ गये होंगे। तेरे गवाह हैं ?

तुरसी ने आँखें तरेर कर कहा—भगवान की सौगन्ध, सारे गाँव ने देखा। परमात्मा की गवाही सबसे बड़ी गवाही है। जो गाँव धरम ही छोड़ दे तो मैं भी सब छोड़ बैठूंगा।

किन्तु इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ?

हम तो भाई चाहते हैं, आपस का झगड़ा आपस ही में तय हो जाय। अब उसकी श्रद्धा ही इतनी है तो यही सही और मास्टर साहब ने रुपये उठाकर धूरो की ओर फेंक कर कहा—समझौता तो होकर रहेगा। मानने की बात है भाई। सारा गाँव कह रहा है दस भले आदमी इकट्ठे हुए हैं। क्या नाम ! ऐसी कोई डकैती तो है नहीं। रही रुपये की बात, तो यह रहे पचास रुपये। अब देख तुरसी, तेरा भी तो साला है·····

किन्तु तुरसी सोच रहा था। क्या यही उसके अपमान का बदला है। कर कुछ सकता नहीं। सारे गाँव से दुश्मनी मोल लेने का सवाल है। वह चुप हो रहा।

मास्टर साहब ने धूरो की ओर देखकर कहा—तो बस उठा ले···

धूरो ने तुरसी को देखा। उसने तो मना नहीं किया। रुपये उठा लिये। मास्टर साहब जानते थे कि किले का कौनसा हिस्सा सबसे कमज़ोर है जिसे सबसे पहले तोड़ा जा सकता है।

किन्तु तुरसी गम्भीर बैठा था। सारी सभा अतृप्त थी। यह भी कोई फैसला हुआ ! किन्तु कुन्दन ऐसे बैठा था जैसे सागर से मोती बीन लाया हो।

❀ ❀ ❀ ❀

सन्तोष दोनों में से किसी को भी नहीं हुआ। अभी भी कुन्दन का भय दूर नहीं हुआ था। अभी भी तो तुरसी पुलिस का पासंग लेकर भारी हो रहा था।

सांझ हो चली थी। जाकर पंचों के पांवों पर पाग धर दी और पंचायत इकट्ठा करने का न्योता दे दिया किन्तु न खुशामद का न एक रुपया ही दिया। तुरसी की निर्बलता वह देख चुका था। बातें आवश्यकता से भी अधिक मीठी करके जिस समय वह लौटा यारों ने दुधिया छानी।

धीरे-धीरे गाँव भर में, बिरादरी में खबर फैल गयी। रात भर औरतें दिमाग लड़ाती रहीं और रतनी का नाम ही उनकी जीभ पर नाच रहा था। बात ठीक थी पर सबूत न था और गन्दी बात सोच लेना क्या उनका अधिकार न था !

तुरसी करवट बदल रहा था। तरह तरह के विचार आ रहे थे। रात में एक अजीब बेचैनी थी। यह कुन्दन ने एक नया खेल रचा था। जब गाँव की सभा ने एक बात कह दी तो फिर पंचायत कैसी ! कुछ भी हो। बिरादरी का मामला है। पुलिस तो फिर भी अपनी ही है। केस तो फिर भी चलेगा ही यहाँ न सही, बेटा को वहाँ देख-लूंगा ; जायगा कहाँ !

और तुरसी को तीन सौ रुपये ऐसे दिखते जैसे हनुमान अपना शरीर बढ़ाकर लंका जलाने को पूंछ हिला रहे हों।

दिन दुपहरिया पंचायत बैठी। कुन्दन अपने दोस्तों और घरवालों के साथ एक ओर बैठा। दूसरी ओर धूपो, तुरसी और रमल तथा उसकी बहू। धीरे-धीरे सन्नाटा छा गया। काम शुरू हो गया।

पंचों ने किस्सा सुना। लोगों को सुना दिया गया। सरपंच ने, जब हुक्का घूम चुका तो गम्भीर स्वर से कहा—पंच सुनें। अब हम कुन्दन से पूछते हैं कि तूने हमें क्यों तकलीफ दी?

कुन्दन ने खड़े होकर झुक कर कहा—पंच भगवान का औतार है। झूठ नहीं कहूँगा। आपसी मारपीट की बात थी। गाँव के बड़े आदमियों ने मामला तय करा दिया है पर जीजा का दिल अभी मेरी ओर से सा नहीं हुआ है। इसी से बिरादरी की पंचायत इकट्ठी की है। हमारा एक घर है। जिसे हमने बहिन ब्याह दी है वह क्या अपना कोई गैर है? पर आपसी झगड़े कहां नहीं होते?

सब जगह होते हैं—बूढ़ों ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

कुन्दन ने फिर कहा—हमारी बेटी पराये घर में पराई हो जाये पर हम तो उसे अपनी समझते हैं। भांजा तो नहीं हुआ हमने क्यों?—धूपो की ओर देखकर कहा—बोल?

धूपो ने सिर हिलाकार स्वीकार किया। स्त्री की इस मूर्खता पर तुरसी विक्षुब्ध हो उठा। उसने कहा—पंचों की दुहाई है। औरत कम-अक्ल होती है। उसे बहका फुसला लेना बड़ी बात नहीं होती। भांजा, मैं पूछता हूँ, छोड़ दिया या कि भाग निकला।

कुन्दन ने पैंतरा बदला। बोला—जीजा का गुस्सा अभी बूढ़ा नहीं हुआ है।

पंचों ने रायें मिलायीं। कुन्दन ठीक कहता है। उसकी आवाज में तनक भी जोश नहीं है। तुरसी की तो धधक रही है अभी दिल में।

फिर पंच ने पूछा—बहिन को क्यों मारा ?

बीच में आ गयी थी। तभी ध्यान आ गया कि रांड होगी तो बहिन ही। हाथ रोक दिया।

ठीक है, ठीक है—सबने हां में हां मिलायी—ऐसा हो सकता है।

तुरसी ने ओंठ क्रोध से काट लिया किन्तु क्या वह उस कठोर सत्य को खोले बिना अपनी बात पर लोगों को विश्वास दिला सकता है ? कनखी से देखा। रतनी घूँघट खींचे सिर झुकाये बैठी थी। उसे फिर क्रोध और स्नेह दोनों हो आये। तुरसी बोलने उठा—पंच परमेश्वर है। जो कहेंगे सो सिर झुकाकर मानूंगा।

बात अभी वह समाप्त भी नहीं कर पाया था कि किसी ने बीच में काटकर कहा—मगर झगड़ा तो मर्दों में होता है। धूरो पर लाठी कैसे पड़ी ? घर का द्वार बहू ने कैसे बन्द कर रखा था।

बन्द तो होता ही—तुरसी ने चमक-कर कहा—घर में अकेली न थी ? फिर सास से कहासुनी हो गयी होगी। सास बहू के झगड़े कहां नहीं होते ?

जगत की रीत है—सबने कहा—होते रहे हैं और होते रहेंगे।

तो—तुरसी ने कहा—कुन्दन से किसने कही थी कि भांजे की बहू का जिकर करता और सो भी पंचायत में। कैसे खबर पड़ी कि द्वार तब बन्द था कि खुला ?

कुन्दन के मुँह का रंग फीका हो गया था। उसने पूरब की ओर हाथ उठाकर कहा—गंगा मैया की सौगन्ध है। मैंने किसी से कुछ नहीं कहा। पर मुहल्ला जागता था। एक कान से सुनी बात दस जीभों पर डालती है। पंच कहें मैं कैसे जिम्मेदार हूँ।

पंच खामोश रहे।

तुरसी ने पंचों की ओर दोनों हाथ उठा ही कर कहा—पंच कहें।

कुन्दन ने पैंतालिस रुपये दिये हैं सो क्या हरजाना ठीक है ? पुलिस को मैंने रुपए दिये। कुन्दन ने भी दिये। पर दंगा शुरू किसने किया ?

सरपंच ने आँख चढ़ाकर सिर हिलाते हुए पूछाः—पर दंगा क्यों हुआ ? तुझे कुन्दन ने क्यों मारा। कोई पागल तो वह था ही नहीं, न ?

मैं क्या जानूं ? तुरसी ने सरल उत्तर दिया।

तो वे रुपये कहां गये ?—पंच ने फिर पूछा—हाजिर करो।

धूपो ने चालीस रुपये पंच के पांव के पास रख दिये।

गिनकर पंच ने कहा—यह तो चालीस हैं। पंच से दगा नहीं होगी। बाकी के रुपये कहां हैं ? क्योंरी बोलती क्यों नहीं ?

और धूपो के मुख पर स्याही छा गयी।

तुरसी ने तड़पकर कहा—बोलती क्यों नहीं ? बिरादरी पूछ रही है।

धूपो ने सिर झुकाकर कहा, खरच हो गये।

खरच हो गये !—तुरसी गरज उठा, डायन ! तूने मेरी नाक कटा दी। दस दिन न रखे गये अलग ? और न ये रुपये ?

उसका आज जीवन में सबसे भयानक अपमान हुआ था। क्या करे ? औरत की जात ही ऐसी है।

धूपो ने सिर झुका लिया था। तभी किसी ओर से किसी ने आवाज दी। रमल उठकर चला गया।

पंच ने कहा—इसका तो दण्ड भोगना पड़ेगा तुरसी। बहू को समझादे।

तुरसी का हृदय हाहाकार कर उठा।

कुन्दन के साथियों ने ताना मारा—कभी तो पड़ही जाती है। दरोगाजी को दे दिये होंगे। आखिर सालेपर बिना वजह मुकदमा भी तो चलाना ही था।

क्या कहे अब ? कोई उत्तर ? मनमें आया वहीं मरजाये। किन्तु धूपो भी खड़ी रही और तुरसी भी सिर झुकाये खड़ा रहा।

तुरसी—पंच ने कहा—कहता क्यों नहीं ?

तुरसी ने बायें हाथ से माथे की पट्टी सरका दी। लम्बा घाव देखकर सब में सहानुभूति फैल गयी। कुन्दन अपराधी है। तुरसी ने एक बार चारों ओर देखा—

तुम जो कहो सो मुझे मंजूर है। मैं तो गुलाम हूँ।—उसने उन्मुक्त कण्ठ से कहा है।

पंच प्रसन्न हुए। कुन्दन को अब पूरा विश्वास हो गया था। बाजी जीत ली थी। तुरसी के मुँह पर ताला पड़ा था।

और कुन्दन उत्साह से अब मन ही मन प्रसन्न अपने मित्रों की ओर देखकर मुस्करा रहा था।

पंचने कहा—झगड़ा हुआ। तुरसी कहता है उसे कुन्दन ने बे वजह मारा। कुन्दन कहता है छोटी सी बात थी, बातों में बढ़ गयी, मारपीट हुई। सुनने को तो यही ठीक लगता है। पर कुन्दन का भी तो कुछ कसूर रहा ही होगा। सजा उसे भी मिलनी चाहिये।

सबने सुना, पंचोंने फिर मशविरा किया और चौधरी ने फिर कहा—तुरसी मामले को पुलिस तक ले गया जिसमें दोनों के खूब खर्चे हुए। कुन्दन मामले को पंचों में लाया तुरसी पर भी दण्ड धरना चाहिए।

धूपो ने धीरे से कहा—पर हमने कब मना की है? पंचों का न्याय सिर आँखों पर।

बड़े बूढ़ों ने प्रार्थना की—फैसला सुना दिया जाय।

क्या होगा?—धूपो ने कातर स्वर से कहा। किन्तु तुरसी ने जैसे सुना ही नहीं।

वह ऐसे खड़ा था जैसे काठ की मूरत खड़ी कर दी हो। वह जो अब तक निर्भय था इस समय विवर्ण हो चुका था। सिर का लाल घाव ऐसा था जैसे माथे में तीसरी आंख हो—खुली, जलती हुई। कुछ देर तक फिर परस्पर परामर्श होता रहा और तब सरपंच चौधरी ने कहा—धूपो

ने पांच खरच किये, दस का दण्ड देगी; कुन्दन ने बूढ़े और औरत को मारा सो पचास रुपये दण्ड देगा और तुरसी मामले को पुलिस तक ले गया जिसमें दोनों का खरचा हुआ सो तीस रुपये दण्ड भरेगा और पंचों का फैसला है कि मामला यहीं खतम हुआ। आगे अपनी अपनी भुगतान होगी जो हुक्म अदूली करेगा उसका हुक्का पानी बन्द।

अनोखा न्याय था!

धूपो के मुख का रंग उड़ गया। यह क्या। हुआ? इसी समय रमल ने आकर कहा—अम्मा री, यहाँ पंचायत से क्या होगा? यह तो पुलिस केस है। अभी दारोगा को मुँहमांगी रिसवत देनी पड़ेगी नहीं तो वह क्या छोड़ देगा। पंचायत का जोर हम पर चलेगा कि उस पर भी चलेगा?

दुधारा चला। धूपो कातर स्वर से रो उठी।—हाय हम तो लुट गये।

वह भी होगा—तुरसी ने सिर उठाकर कहा—वह भी मैं ही दूँगा। परमेसुर की ही जब यह मर्जी है तो ये ही सही। बिरादरी की तो रखनी ही होगी।

रमल पुकार उठा—यह तो अन्याय है···किन्तु तुरसी को कोई आपत्ति न थी।

# आवाज़ घुटने लगी

अन्धेरे में आवाज सुनाई दी। गुरदियाल बिस्तर पर लेटा लेटा सुन रहा था। बड़ी कशिश होती है दर्द की आवाज में, अगर वह किसी प्रिय के मुँह से सुनाई दे रही हो। वही मुख जिसके भीतर से खिलखिलाते हुए फूल झरते थे, आज उनसे यह घरघराती पीड़ा के टुकड़े घिस घिस कर निकल रहे हैं, जैसे इस छोटे से कोमल शरीर से कोई पत्थर तोड़ रहा है दिल पर रखकर असह्य बिल्कुल असह्य......

गुरदियाल ने देखा दीवार पर सड़क के उस पार लगे बिजली के खम्भे से छूट कर आती रोशनी धीरे धीरे आँखें टुमटुमा रही है।

वह थकान से चूर होकर पड़ा है। बड़ी मुश्किल से यह एक कमरा पैंतीस रुपये महीने पर मिला है। इसकी जरूरत की सब चीजें गुसल खाना इत्यादि, सब पूरे घर के लिए एक ही है, आम है। उसे एक व्यक्ति को अपने सारे नये प्रगतिशील विचारों को ताक पर धर कर तीन सौ रुपये पगड़ी देने पड़े थे।

और अन्धेरा एक एक मिनट करके जमता जा रहा था, भागता जा रहा था, जैसे उसकी गति इस समय सब तरफ हो गई थी। बाहर अभी कुछ शोर बाकी था। पत्नी की इस समय आँख लग गई है। वह सो रही है। वरना जगी होती तो इस वक्त बक बक करके कान खा गई होती। किन्तु यह सन्नाटा भी वह अपने हृदय से स्वीकार नहीं करना चाहता।

पानी बरसने लगा था। अच्छा उसने सोचा जरा उमस तो कुछ

कम हो जायगी। इंतहा गर्मी थी। मगर उसे भीतर सोने को मजबूर होना पड़ा। पत्नी को कैसे न देखेगा। मुन्नी अभी नीचे वाले बच्चों में जाकर खेल रही है। उसे क्या समझ कि मां कितनी ज्यादह बीमार है। उससे तो कहा गया है कि मां को कुत्ता काट गया है। अब वह बीमार हो गई है। पर मुन्नी ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह हट कह कर खेलने चली गई।

कभी कभी बिजली कौंधिया जाती और उसका उजाला कमरे के भीतर घुस आता। क्षण भर सब जगमगाता, पर आँखें बन्द हो जातीं। गुरदियाल उठा। मुन्नी को आवाज दी और आते ही कहा, 'सोती क्यों नहीं' पानी बन्द हो चुका था। कुछ हल्की ठंडक सी छा गई थी। कभी कभी हवा चलती। मुन्नी जाकर बिस्तर पर लेट गई। गुरदियाल ने विस्मय से देखा तीन मिनट में ही मुन्नी सो रही थी। उसे उस पर ईर्ष्या हुई। कितना सुख है इसे। न खाने की चिन्ता, न कमाने की चिन्ता। जैसे बच्ची को पूरा विश्वास है कि बाबूजी और अम्मा के रहते वह इतनी पूर्णता से सुरक्षित है कि उसे किसी भी चीज की कभी भी कमी नहीं हो सकती। अबोध बालिका। उसने उसके गालों को स्नेह से थपथपाया। तभी उसका हाथ पीछे हट गया। उसने ध्यान से सुना उसी के जीने पर है। किसी ने धीरे से द्वार थपथपाया।

कौन होगा? अच्छा!

और उसका हृदय भीतर ही भीतर भारी होने लगा। द्वार पर फिर थपथपाहट सुनाई दी। अब के वह अधिक संधी हुई थी। नीचे उतरा। द्वार खुलते ही एक व्यक्ति भीतर घुस आया। द्वार बन्द करके गुरदियाल ने देखा, कुछ कुछ दाढ़ी बढ़ी हुई, मैले कपड़े, लालटेन की मध्यम रोशनी में गुरदियाल ने पहिचाना। रामरतन था।

उसने सुना रामरतन ने संक्षेप में कहा, आज रात को यहीं सोना चाहता हूँ। उसी दिन की तरह सुबह अंधेरे ही चला जाऊँगा।

गुरदियाल जानता है। अधिक विवाद व्यर्थ है। यह व्यक्ति बड़ी मुश्किल से यहाँ आकर पहुँचा है। मजदूरों का नेता है। सरकार उसके पीछे लगी है, क्योंकि यह नये निजाम को बनाने में लगा है।

गुरदियाल ने कहा, कमरे में तो जगह नहीं है, अच्छा चलो, एक चटाई लेकर छत पर पहुँचा। रामरतन थका हुआ था लेट गया।

जब वह छत के कोने में सिमट कर सो रहा था। गुरदियाल चुपचाप खड़ा खड़ा कुछ सोच रहा था। पत्नी सो रही थी।

हवा अच्छी चल रही है। जहाँ कहीं बादल फट गये हैं उनके बीच से धुला हुआ आसमान कितना भला लग रहा है, चुपचाप, जैसे आसमान भी खामोश हो गया है...

गुरदियाल नीचे आ गया। बेचैनी से फिर इधर उधर टहलता रहा। पत्नी के माथे पर हाथ रखकर देखा। ज्वर था और शायद काफी था। लगा कि हाथ झुलस गया। वह कुछ कुछ बेहोश सी पड़ी थी। साढ़े तीन हाथ की काया है। इसी के लिए दुनिया में हाय तोबा मच रही है। कितना विकृत हो गया है यह जीवन। मजबूरियों और गरीबियों के बीच में घिर कर आज बुद्धि, ईमान, सुख, सन्तोष सब भींच दिये गये हैं। पहले अंग्रेज इसे 'सेंडविच' पुकार कर खाता था। अब देसी सेठ इसे भाग्य का जोर कह कर कचर कचर चबाया करते हैं।

सामने के घर में पंडित जी ऊपर के कमरे में बैठे थे। उनकी युवती पुत्री और उसकी माँ सुन रही थीं। भागवत् का पाठ हो रहा था। जीवन के इस अखंड हाहाकार में भी कितनी अन्ध श्रद्धा थी कि व्यक्ति ने अपने सुख के लिए एक केन्द्र ढूंढ लिया था। कृष्ण गोपियों के वस्त्र लेकर छिप गये हैं। गुरदियाल को लगा वह अजर वासना का गीत—आध्यात्मिक होकर भी अतृप्त जीवन को बहलाने का कैसा साधन है। जो उपचे..र में भी लकीर करता है। पर खरोंच भी नहीं आने देता। मन की बेचैनी उमस के फन्दों में फिर कसने लगी......

गुरदियाल छत पर गया। बगल की निचली छत पर कुछ आवाज सी सुनाई दी। एक लड़का और लड़की छिप कर बातें कर रहे हैं। बड़ी मुश्किल से आज यह बात करने का मौका मिला है। कैसा बन्दी जीवन है!

वह चौंक कर ज्यों का त्यों रह गया। जो पण्डित जी पढ़ रहे थे वही प्रायः जीवन में हो रहा था। उसे डर था कि कहीं कोने में उधर सो रहे राजनैतिक व्यक्ति को यह सब ज्ञात न हो जाय। वह घृणा से मुंह फेर कर इसका भी सैद्धान्तिक निरूपण कर देगा।

उसकी भूख की वह चरमाशक्ति देख कर अपने जीवन के प्रति मोह हुआ इन्सान जब मजबूर होता है, तब पशु की तरह जीवित रह लेता है। मान और अपमान खोकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करना चाहता है।

गुरदियाल को उन लोगों पर दया आई जिन पर समाज इस समय ईंटें फेंकता वह इस सबको न्याय नहीं कह सकता यह ठीक नहीं है। पर भूख! यह भी एक भूख थी। जब तक समाज में नया शासन न हो, तब तक भिखारी भूखे प्यासे रह कर परीक्षा में झूठ बोलेंगे, भीख मांगें, इतना आत्मसम्मान सचमुच बहुत कम लोगों में होता है जो मर जाते हैं, झुकते नहीं........

तभी उसने देखा। कुछ भयभीत स्वर सुनाई दिये, धीमे, बहुत धीमे, फुसफुसाते हुए। गुरदियाल को अब कहानी की सी दिलचस्पी हो गई थी। देख तो लूं। ये लोग हैं कौन!

लड़का चला गया था। लड़की उठी। गुरदियाल लड़के को चाल से पहचान गया। विद्यार्थी है, कालेज का। इसका बाप तारघर का नौकर है। क्लर्क है शायद। लेकिन यह लड़की कौन है?

तभी उसने धक्कम धुक्की की हल्की सी आवाज सुनी। अब आगे बढ़कर गुरदियाल आसमान की नीली धुंधली ज्योति के सामने भूत बनकर खड़ा था।

यह कोई और लड़का था। देखते ही पीछे हट गया। लड़की गुरदियाल के पास आ गई।

गुरदियाल ने पूछा, कौन हो तुम? क्यों लड़ते हो?

लड़के ने कुछ कहना चाहा। पर घबराया हुआ था। केवल इतना ही कहा—यह लड़की बदमाश है।

लड़की ने फूत्कार किया बदमाश होगा तू, तेरा बाप।

बात बढ़ रही थी। गुरदियाल ने देखा लड़की दंग थी। उसने देखा। सिर झुकाये लड़का खिसियाकर चला गया। गुरदियालने धीरे से पूछा, 'क्यों लड़ी है? तू कौन है?'

लड़की ने कहा—'मैं अभी ऊपर गर्मी से घबराकर आई थी यह मुझे छेड़ रहा था।'

गुरदियाल हँसा। उसने कहा—'अच्छा'।

लड़की उसके पाँव पकड़ कर रोने लगी। उस भयानक 'अच्छा' में एक तीखा व्यंग था। जैसे क्या जाने वह बक बक करती रही, मैं उसे चाहती हूँ, वह मुझसे व्याह कर लेगा। और भी इसी प्रकार की बातें जिनको सोचने के लिये रात का अंधा कर देने वाला अन्धेरा जरूरी है जो दिन के उजाले में अपने आपको हास्यास्पद लगने लगता है।

गुरदियाल को जैसे कुछ नहीं मालूम हुआ। उसे इस सब में अब कोई दिलचस्पी नहीं रही थी। अब विचार यह था कि कोई उसे अन्धेरे में उस लड़की के साथ न देख ले। अभी छब्बे जी का दूबे जी ही रह जायगा। उधर उस छत के कोने पर रामरतन सो रहा है। नीचे पत्नी बीमार पड़ी है। अभी लोग अपने अपने घरों में जाग रहे हैं...

हठात् द्वार पर आवाज हुई। गुरदियाल का हृदय कांप उठा। अपने आप जैसे वह मशीन चालित सा, सीधा बगल की छत पर गया। देखा वह सो रहा था। लड़की पीछे पीछे चल रही थी। द्वार पर

थपथपाहट उसी सधे हाथ से सुनाई दे रही थी। गुरदियाल ने स्वर खींचकर कहा—कौन ? कौन ? जैसे वह सोते में से जग गया हो। मजबूर होकर नीचे उतरना पड़ा।

देखा, पुलिस थी। गुरदियाल को अफसोस हुआ। लगता है अब घर पर कोई भेदिया लगा दिया गया है। और उसे तो रामरतन को जगाकरऊपर चैतन्य कर देना चाहिए था। पुलिस भीतर घुस गई। जैसे वह उसका घर नहीं था, जैसे वहां किसी से इजाजत लेने की जरूरत न थी। हठात् उसे ध्यान आया। वह चिल्लाने लगा दरोगा जो। मेरे यहाँ कोई चीज सरकार के खिलाफ नहीं है। आप किसको ढूंढ रहे हैं। मेरी बीबी ऊपर बीमार पड़ी है। यह आप क्या कर रहे हैं।

घर की तलाशी होने लगी थी। स्वर अब रुक गया था। लालटेन फिर जलाई गई। सिपाही चीजों को बेतरतीब फेंकने लगे। गुरदियाल लपक कर पत्नी की शय्या के पास हो रहा। और उसने सिपाही से कहा इधर नहीं। सब दवायें फैला दोगे। एक आदमी आओ बस। पर उसकी बात पर ध्यान देने से पहले खाट के नीचे से झांक कर उठने वाले सिपाही का शरीर मेज से टकरा गया। सब दवायें गिर गईं। मुन्नी भी जागकर रोने लगी। जब पुलिस छत पर पहुँची गुरदियाल का शरीर पत्नी की खाट पर टिक गया। उसका शरीर पसीने से तर हो गया था। लगता था अब उसे चक्कर आ जायगा। रामरतन व्यर्थ ही पकड़ा जायगा और फिर शायद गुरदियाल भी अभी के अभी धर लिए जायें। क्या ठीक है, सेठों के राज में एक सुख है। भूख या मौत। बेईमानी या ईमान का कत्ल। गुरदियाल की आँखों में खून उतर आया, पुलिस लगी जैसे बहुत से हृदय हीन टुकड़ों पर पलने वाले शिकारी कुत्ते। सिद्धान्तहीन, अनैतिक, किन्तु पुलिस वाले शीघ्र ही छत से नीचे उतर आये। कहीं भी कोई नहीं था। स्पष्ट ही वे लोग लज्जित दिखाई देते थे। उन्हें मालूम देता था कि वे कब जिनकी तलाशियाँ

लेते थे वे आज मालिक बन बैठे। पर जिनकी आज तलाशियाँ ली जा रही हैं वे शायद कल ताकत में आ जायें। पुलिस के सिपाही जाने लगे। दरोगा ने कहा माफ कीजिए। आपको तकलीफ दी।

'रुको मत' गुरदियाल ने गरज कर कहा—सारी दवायें फैल गईं। अब कहाँ मिलेंगी इस वक्त। लाओ पैसे रख कर जाओ।

दरोगा होंठ काटता हुआ चला गया, गुरदियाल ने क्रोध से थूक निकाल लिया। सन्नाटा फिर छा गया। मुन्नी चकित सी बैठी थी। कैसे बिस्तर पर वह छोटे छोटे हाथ पांव का छोटा सा प्राणी, जिसके गाल ठोढ़ी सब गोल गोल हैं। छोटी छोटी उंगलियों पर मुँह है। जो बिल्ली के बच्चों की तरह प्यारी प्यारी निगाह से देखती है...गुरदियाल की ममता उमड़ पड़ी। कितने बड़े बिस्तर पर कितनी छोटी सी बैठी हुई है डरी हुई।

गुरदियाल ने देखा। पत्नी के मुख पर भय की विकराल छाया के नाखून गड़ चुके थे। एक नीलापन छा रहा था। उसने धीरे से पूछा गये ? क्यों आये थे।

कुछ नहीं सन्देह हो गया था। वे समझे थे यहाँ कोई छिप रहा था, उसने निर्भय स्वर से कहा जैसे कोई भय उसे नहीं सताता। वह वही पूर्ण पुरुष है जिसकी रक्षा में पत्नी निश्चिन्त रह सकती है। पत्नी की आँखें फिर साफ हो गईं।

उमस छा रही थी। गर्मी बढ़ने लगी थी।

'बड़ी गर्मी है' गुरदियाल ने कहा।

'ऊपर चले जाओ' पत्नी ने कहा।

'तुम सो जाओ !' क्यों नींद नहीं आती ?

दोनों चुप हो रहे पत्नी ने आँखें मींच लीं। गुरदियाल बैठा रहा। कुछ देर बाद कमजोरी के कारण लगा कि वह सो गई थी। गुरदियाल उठा। कुछ देर खड़ा रहा। फिर छत पर चला गया। जाकर देखा।

रामरतन नहीं था। चटाई भी साथ में ही गायब थी। विस्मय हुआ। आकर एक डौरी पर बैठकर गुरदियाल उठा। कुछ देर खड़ा रहा। फिर छत पर चला गया। जाकर देखा। रामरतन सोच में पड़ गया। कहाँ उड़ गया एकदम ! तभी उसका ध्यान टूटा। देखा, वही लड़की फिर आ गई थी। और चटाई उसकी बगल में दबी थी। उसने चटाई बिछाकर कहा बैठ जाइये।

गुरदियाल ने देखा वह कुछ मुखर थी।

'मैंने' उसने धीरे से कहा—उस आदमी को पुलिस का नाम सुन कर दूसरी छत पर कुदा कर भगा दिया। वह कोई फरार था।

हाँ।

चोरी की थी आपका दोस्त था ?

नहीं, वह राजनैतिक आदमी था।

गुरदियाल ने एक ठंडी साँस ली। लड़की ने झुक कर उसके पांव छुए। अब उसमें एक श्रद्धा थी। उसने फिर कहा, आप मेरे बड़े भाई हैं।

गुरदियाल सुनने लगा। लड़की का स्वर फिर उठा। आप पवित्र आदमी हैं। हम जैसे नहीं। फिर बहुत घिघियाते स्वर में बोली आज जो देखा है, किसीसे कहियेगा तो नहीं ?

गुरदियाल को संकोच हुआ। उसने कहा तुमने क्या मेरे ऊपर कम अहसान किया। इस वक्त मैं जेल में होता। स्वर भारी था।

मेरी जिन्दगी का सवाल है। लड़की ने कहा—मेरी इज़्ज़त का सवाल। मैं कहीं की नहीं रहूँगी। यह लड़का मुझे बड़ा तंग करता है। मुझसे कहता है—बुरी-बुरी बात कहता है। मन करता है मुँह नोच डालूं।

उसका अवरुद्ध क्रोध गुरदियाल के मन में केंकड़े की तरह जा बैठा और उसके विश्वास रूपी बगले के गले को पकड़ने लगा।

गुरदियाल ने कहा घबराओ नहीं।

'आपकी पत्नी बीमार है ? लड़की ने फिर पूछा।

'हाँ कई दिन से बीमार है।'

'बेचारी' लड़की ने होले से कहा—हमारी मामी के बच्चा हुआ था। वह तो मर गई थी। मैं कल से दिन में आपकी पत्नी को देख जाया करूँगी।

गुरदियाल ने कहा, वे तो वैसे ही बीमार हैं।

'जूड़ी है' लड़की ने पूछा। डांस इधर बहुत हो गये हैं।

गुरदियाल ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप सुनता रहा। लड़की कहती रही इस घर में सात कुटुम्ब रहते हैं। एक दूसरे से कोई सीधे मुँह बात भी नहीं करता। मैं आपकी पत्नी की दवा ला दिया करूँगी।

वह मन ही मन हँसा। चलो एक बला से तो पीछा छूटा। लड़की कहती रही—माँ तो लड़ती है पर बाबूजी बड़े अच्छे हैं। मैं उनसे पूछ कर छोटे भाई के साथ आया करूँगी। अच्छा है एक दूसरे की मदद से दुनिया के काम सरल हो जाते हैं। यहाँ तो सभी कुत्ते हैं। लड़ाई दिन भर लड़ाई। कभी प्यार से एक दूसरे से कोई बात तक नहीं करता। आप लोग दफ्तर चले जाते हैं। फिर औरतें खूब लड़ती हैं। आपका घर आदर्श है। कभी हल्ला नहीं, शोर नहीं। कम से कम आप भले जग भला। यहाँ तरकीबें चलती हैं, अपना कूड़ा दूसरे के द्वार जा फेंका। ऊपर से धड़ाधड़ पानी डाल दिया। नीचे वाले भीग गये। नीचे वालों ने बाल्टी अड़ा कर नल खोल दिया। अब ऊपर पानी के लिए हायतोबा हो रही है।

उसके बाद कहीं लाठी चलने की आवाज आई। गुरदियाल चौंक उठा। इधर मजदूरों की बस्ती शुरू हो जाती है। शायद पुलिस से झगड़ा हो रहा है। लड़की की आवाज काँप कर थक गई। आज की रात में भयानक निर्जनता थी। कुछ देर तक कोलाहल होता रहा।

फिर वह धीरे-धीरे डूब गया । बिजली चौंधिया रही थी । शायद फिर बरसेगा ।

लड़की ने कहा कल आऊँगी ।

गुरदियाल ने कुछ नहीं कहा । वह चली गई । मन भारी था, उद्विग्न था । सब नीचे सो रहे होंगे, जाग न जायें इसी से चली गई । पहली नींद गहरी होती है जब थकान से चूर आदमी अपने जोड़ों को ढीला करता है ।

ठंडी हवा चलने लगी । गुरदियाल नीचे चला । बूंदें बहुत तेज गिरने लगीं । बादल मूसलाधार बरसने लगे । चारों तरफ पानी गिरने की बंधी हुई रोर उस नीरवता में भन्नाती हुई समा गई । वह सोच रहा था । कितना छोटा सा घर है । कितने आदमी हैं । उनकी कितनी विषमतायें हैं । कितने सुख दुख व्यथा हैं । सब अविश्वास से जी रहे हैं । तब उसे लगा कि इस परेशानी में जो मनुष्य में अपराजित सामंजस्य की प्रतिभा है, आगे बढ़ी । एक लड़का एक लड़की फिर वही लड़की और एक और लड़का, जबर्दस्ती......

खिड़की बन्द कर दी । हवा ठंडी थी । नुकसान करेगी । मुन्नी भी सो गई है । बैठी-बैठी ऊंघ गई थी । सो गुरदियाल ने उसे धीरे से अभी ठीक से लिटा दिया था । उधर पत्नी शायद सो रही है । शरीर भभक रहा है । हड्डी का ढांचा तन रहा है । शायद लम्बी लम्बी गरम सांसों का तांता बंधा हुआ है ।

गुरदियाल गोख में ही बैठा रहा । वहाँ से वह सड़क तक देख सकता था । कुत्ते मस्त होकर घूम रहे थे । खिड़की बन्द कर देने से फिर भीतर गर्मी हो गई है ।

और दिन गुजरने लगे, एक तस्वीर बच रही थी । वक्त हो चला था । मगर वह क्या करे शीशी तो न्याय और शान्ति के रक्षक तोड़ गये हैं दवा दें तो कहाँ से ?

उसे अत्यन्त क्रोध हो आया।

और लगा सारा देश, संसार इसी समय शैय्या पर पड़ा है। उस जैसे अनेक आशावादी नये संसार के लिये, नये दिन के लिये उसे दवा दे रहे हैं ......

खदानों पर खामोशी छा रही है। पुलिस की गोली चलती है। वे जो जिन्दगी पर मजबूर हो रहे हैं, उन्हें शान्ति के नाम पर कत्ल किया जा रहा है। मनुष्य का रोटी मांगने का अधिकार नामंजूर कर दिया गया। सोना और चाँदी खोदने वालों पर लोहा बरसाया जाता है।

गुरदियाल फुत्कार उठा। यह वह क्या सोच रहा है। फिर विचार आया।

खेतों पर उदासी है। कुछ दिन की महँगाई में अपद किसान भूला हुआ है। समाज उसे कमीना बना रहा है। उसे सेठ का धर्म सिखा रहा है। कल फिर उसके सिर पर तलवार झूल रही है। और गुरदियाल का मन कहता है सिर्फ रोटी नहीं। इन्सान को इन्सान बनाना है। उसे उसकी बुद्धि वापिस लौटा देनी है, वह जो उससे कुछ आदमियों ने छीन ली है......

पानी बन्द हो चुका था।

पंडित जी गा रहे थे। उस कमरे में अब माँ ऊँघ रही थी। बेटी वहीं सो गई थी। पंडित जी मग्न होकर अपने पढ़ने में तल्लीन थे, बीच-बीच में विभोर होकर वे गाने लगते। गुरदियाल ने अपनी अथाह वेदना में सुना। वह स्वर, भक्ति का वह गीत अच्छा लग रहा था। कितनी आशा थी उसमें युगों का वह संगीत अब अपने तारतम्य को विस्मृत कर चुका है, अपरिणामशील। वह एक स्वप्न है। ऐसी मीठी कल्पना जिसे झूठ कह देने में कोई हानि नहीं, केवल उसमें विश्वास करने में उसमें बहते रहने में। पर गुरदियाल कब तक यों ही बैठा रहेगा। रात के दो बजने वाले हैं। कल तड़के ही फिर उठना है।

रात अब उबलना बन्द हो चुकी थी। अँधेरे में पत्नी की जोर-जोर से चलती साँस। मुन्नी की निस्तब्ध नींद। गुरदियाल का उन्माद ग्रसित हृदय। उसे लगा पूँजी एक राक्षसी है। उसका पति एक भयानक व्यापारी है। ये दोनों हृदयहीन हैं। ये इन्सान के बच्चों का लहू पीते हैं, उनका मांस खाते हैं। उन्होंने संसार की सब अच्छी चीजों को छू कर अपने जादू से बेजान बनाकर, कैद कर दिया है। और बाकी लोगों को अँधेरे में गुलामों की तरह बैलों की तरह जोत देते हैं......चक्र घूमता है......

गुरदियाल उठा। उसने बत्ती बुझा दी जिसकी धुँधली रोशनी खाट के नीचे संकुचित हो रही थी। ऐसा लगता था कोई सफेद काली बिल्ली चमकती आँखों से घूरती हुई छिपने की घात में खड़ी थी। अब अँधेरा छा गया था। एक नीरव शान्ति छा गई।

पलकें भारी होने लगी। उसे लगा वह पहले सुखी था। जब कुछ भी नहीं समझता था। बाहर पुलिस की सीटी बज रही थी। वह सोचने लगा कि समझदार की मौत है। वे मनुष्य अच्छे हैं जो पशु हो चुके हैं। वे पशु भी अच्छे नहीं, जिनके भीतर इन्सान का दिमाग काम करता है। जो दबना नहीं चाहते।

फिर कहीं गोली चलने का सा शब्द आया। वह बिस्तर पर उछल पड़ा। क्या कहीं रामरतन ही शिकार हो गया। रात के इस अंधकार में जीवन की चेतना पर अदम्य विश्वास रखने वाले मनुष्यों को यह शोषण करने वाले भूखे भेड़ियों के दलाल चुन-चुन कर नष्ट करना चाहते हैं।

एकाएक कमरा गूँज उठा। अत्यन्त दर्दनाक आवाज से पत्नी कराह उठी पानी...पा...नी......

वह हड़बड़ा कर उठा। तुरन्त बत्ती जलाई, उठाकर मेज पर लालटेन रखी, उसके उजाले में देखा पत्नी विह्वल हो रही है, उसने जाकर खिड़की खोल दी।

तभी पत्नी ने जोर से कै की। घर्रा कर कै की। लगा वह अब आँखें उलट देगी। उसने चादर दूर फेंक दी। मटके का खपड़ा नीचे कर दिया। ऐसा लग रहा था जैसे भीतर भयानक हलचल थी। सहारे बैठ कर पीठ पर हाथ फेरना शुरू किया। पत्नी ने दोनों हाथों से सीना दाबा, जैसे वह भीतर का अंजर पंजर बाहर आने से रोक रही थी। उसकी आँखें निकल आई थीं, जिनमें से पानी झलक रहा था वह 'अ......अ.......' करती और फिर उसकी जबान बाहर लटक पड़ती, जबान जिसमें सुर्खी नहीं......पीलापन था, सफेद खुरदरापन था।

वह घबराया सा देखता रहा। कुल्ला कराया। फिर उसे लिटाकर कपड़ों की सफाई में लग गया। पत्नी की सूनी आँखें छत की ओर देख रही थीं। लगता था अब वह शरीर बिल्कुल ठंडा हो जायेगा। होठों पर एक नीलापन सा आ गया था। कमजोरी के कारण वह अपनी हाथ की उँगलियों को अंगूठे से मिलाने लगती। जैसे सुमरनी फिरा रही हो। गुरदियाल को वह सन्नाटा अब जिन्दगी की सबसे बड़ी भयानकता थी, जिसका कहीं भी कोई पार न था। तभी मुन्नी जैसे स्वप्न में से रोकर उठ बैठी और फिर उसने देखा पत्नी की आवाज घुटने लगी थी...... उखड़ने लगी थी।

# कठपुतले

शहर के राजा कलक्टर के बंगले पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि उस विशाल मैदान और हरियाली के बीचों बीच जो अट्टालिका खड़ी है उसी में समस्त नगर की सूइयों का केन्द्र है। ये जो टिक टिक टिक करके घड़ी चल रही है, यहीं से उसको गति मिलती है। इस घड़ी को ऊपर से आकर कोई चाभी देता है। बहुत दिन चल कर जब यह घड़ी रुकने लगी तब इसमें तेल डाल दिया गया है और यह फिर उसी भाँति चल पड़ी है।

उन दिनों जेल में कुछ लोग हड़ताल कर रहे थे। मामला यह था कि एक मजदूर और एक किसान को राजनैतिक बन्दी नहीं समझा गया था। मजदूर के ऊपर इल्जाम था कि उसने मालिक को लूटने की कोशिश की थी। किसान पर इल्जाम था कि उसने जमींदार के खिलाफ रैयत को भड़काया था। और न्याय में यह दोनों काम जुर्म थे। यह राजनैतिक कार्य्य नहीं थे, लिहाजा उन्हें साधारण कैदियों की भाँति रखा गया था।

जब ये चारों बंगले के द्वार पर पहुँचे, उन्होंने देखा, अनेक आदमी कुर्सियों पर बैठे इन्तजार कर रहे थे। वे भी जाकर बैठ गये। वे लेखक थे। उनके पास न ओहदा था, न कोई और तमगा। उन आदमियों में थे जिन्हें अभी देश में ज्यादा कीमती नहीं समझा जाता।

पहले नुकीली सफेद टोपी लगाने वाले लोग बुलाये गये। उनका काम उनके देखते ही जल्दी-जल्दी समाप्त हो गया। वे प्रायः दूकानदार

और व्यापारी लोग थे। उनके ऊपर से नीचे तक खद्दर के कपड़े झकाझक थे। वे लोग विजयी के गर्व से चलते थे, हँसते थे, और बोलते वक्त उनकी गर्दन कुछ और टेढ़ी हो जाती थी। आजाद सभी हो गये थे, पर पहले जैसे ही मजबूर और परेशान थे, लेकिन ये लोग अब बड़ी चमकीली मोटरों में सर्र से निकल जाते थे।

'श्र्', एक आवाज हुई।

चपरासी ने आकर एक सफेद टोपी वाले के सामने सर झुकाया! वह एक मोटा आदमी था, गोरा था और उसकी आँखें नीचे नहीं देखती थीं। सुभाष मात्र लेखक था। उसने देखा चपरासी और नम्र हो गया था। उस गोरे आदमी ने कहा—कलक्टर साहब हैं?

'जी हाँ', चपरासी ने कहा। जैसे वह नये मालिक को पहचानता था। उसने दुम हिलायी और टांगों में उसे दाब कर कूं कूं की।

'बोल दो जाकर, हम मिनिस्टर साहब का खत लेकर आये हैं।'

'जी हुजूर।'

चपरासी भीतर गया। तुरंत लौट कर आया और बोला—चलिये हुजूर। सरकार आपका इंतजार कर रहे हैं।'

गोरा और मोटा आदमी बिना इधर उधर देखे हुए भीतर चला गया। सुभाष उधर ही देख रहा था। तभी उसने चपरासी की आवाज सुनी—ठहरिये। आपका नम्बर आयेगा तब आप जायँगे या यों ही। यह कोई बाजार है?

सुनने वाला एक मामूली आदमी था उसने झेंप कर दाँत निकाल लिये। चेहरे पर कुछ क्रोध सा था, पर वह आँखों की लाचारी में चाक हो चुका था। उसने इधर-उधर देखा, जैसे वह जानना चाहता था कि किसी की आँखों ने तो उसकी बेइज्जती नहीं देखी, जैसे साइकल से गिरने वाला अपनी चोट बाद में देखता है, पहले उसकी निगाह तलाश करती है कि किसी ने देखा तो नहीं!

उसके पास बैठा आदमी उठ खड़ा हुआ। उसने चपरासी से कहा—सुनना ज़रा।

चपरासी उसकी बात सुनने को जैसे लालायित ही था। उठ कर उसके साथ चला गया। उसकी जगह अब दूसरा चपरासी बैठा ही था। कुछ ही देर में वह चपरासी उसी आदमी के साथ लौटा और कह रहा था—बस जरा हुजूर को एक मिनट की फुर्सत तो मिले······

मोटा और गोरा आदमी बाहर निकल आया। चपरासियों ने उसे सलाम किया। उसे शायद मालूम भी नहीं हुआ। अंदाज शायद हो गया कि वह जिधर से निकला है उधर कुछ लोग झुक गये हैं।

चारों लेखक उठ खड़े हुए। उनके चेहरों पर कुछ खतरनाक सी चीज थी। चपरासी उसे पहचानते थे क्योंकि पहले कांग्रेस वालों के चेहरों पर यही चीज होती थी जब वे साहब कलक्टर बहादुर से मिलने आया करते थे।

सुभाष ने कहा—काफी देर हो गयी।

इसी समय चपरासी ने कहा—आइये, आप लोग आइये······।

चारों जिस कमरे में घुसे वह एक साधारण दफ्तर था। उसमें एक गांधी जी का कैलन्डर टँगा था और सामने एक कुर्सी पर एक अधेड़ आयु का सांवला सा आदमी बैठा था, जिसके चेहरे पर कोई खास भाव नहीं था। वही इस शहर का कलक्टर था। तबादिलों का जो चक्र घूमता है, वह रुक रुक कर। यह व्यक्ति उसी लपेट में यहां आ गया था, कल यह कहीं और था, परसों कहीं और होगा। उसने दाँया हाथ उठा कर अङ्ग्रेजी में कहा—बैठिये।

चारों बैठ गये।

'तो आप लोग राजनैतिक बंदियों के बारे में मिलने आये हैं?' उसने झुक कर कहा।

'जी, हाँ,' कहानी लेखक खास्तगीर ने उत्तर दिया।

अब जो बातें हुईं उनमें नाम देने की आवश्यकता नहीं। चारों लेखक एक हैं। उनकी राय एक है। मांग एक है। अब दो बातें करने वाले हैं। लेखक और कलक्टर।

'तो', कलक्टर ने कहा—'मैं आपका मतलब समझा नहीं। राजनैतिक बन्दी? आप किसके बारे में कह रहे हैं?'

'एक किसान और एक मजदूर को आपने गिरफ्तार किया है। किसान पर बगावत और मजदूर पर लूट का जुर्म लगाया गया है। उन्हें राजनैतिक बन्दी नहीं माना गया। उनके साथ जेल में अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। उन्हें तकलीफ़ दी जा रही है। एक मुस्लिम सम्पादक जो हिंदू मुस्लिम एकता का पुराना प्रचारक है उसे आपने मुस्लिम लीगी कह कर गिरफ्तार कर लिया है। किसी पर भी मुकदमे नहीं चलाये हैं। उनके घरों की हालत बहुत खराब हो गई है। कोई कमाने वाला नहीं है। जुर्म साबित कीजिये या फिर छोड़ दीजिये! उनकी भूख हड़ताल टूटनी चाहिये!'

खास्तगीर एक सांस में कहता चला गया। लेकिन उसका स्वर संयत था, उसमें तनिक भी आवेश न था। वह जैसे एक पैना चाकू था जो फल पर से छिलका उतारता चला जा रहा था। उसका हाथ जैसे कहीं भी नहीं कांपा।

सुभाष कलक्टर के मुख को गौर से देख रहा था। उस मुख पर कोई विकार नहीं था, कोई परिवर्तन नहीं था। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—मैं उस कानून को मानता हूँ जो मेरे सामने है। उन्हें बदल दीजिये, मैं बदल जाऊँगा। पुलिस संदेह पर गिरफ्तार कर सकती है। मुकदमा चलाने की कोई अवधि नियत नहीं है। भूख हड़ताल की इजाजत न दी गई थी, न हमें उससे कुछ मतलब है।

एक तलवार उठी थी, दूसरी उसके सामने आकर अड़ गई थी!

खास्तगीर ने घूरा और कहा—इसी को आप आजादी कहते हैं?

चाहे जिसको जेल में बिना सबूत डाल कर आप जनता के नागरिक अधिकारों पर हाथ डाल रहे हैं। यह कांग्रेस का राज है······

कलक्टर हँसा, उसने कहा—'मेरे दोस्त ! अंग्रेज हो या कांग्रेस। शासन शासन है। और जब तक दुनिया में शासन रहेगा तब तक यही होता रहेगा। तुम सब कुछ कह सकते हो जैसे कल कांग्रेस कहती थी। मगर जिम्मेदारी बहुत बड़ी चीज़ है। कुर्सी पर बैठ कर जो उत्तरदायित्व अनुभव होता है वह तुम कैसे समझ सकते हो ?'

बात करना बेकार हो चुका था। सुभाष चिढ़ गया। उसने कहा—'और राजनीति किसे कहते हैं।

'उसको समझना मेरा काम नहीं है।' कलक्टर ने बात समाप्त कर दी।

लेखकों ने एक दूसरे की ओर देखा और सब कुर्सियां खिसका कर उठ खड़े हुए। उस नितांत हृदयहीन व्यवहार से वे विक्षुब्ध थे। अफ़सोस यह था कि उन्होंने ऐसी जगह हृदय की खोज की थी, जहाँ सिर्फ़ घड़ी के चक्रों के दांत थे, जो एक दूसरे को ठेल कर गति पैदा करते थे। वे लौट कर प्रस्ताव और परचा लिखने लगे।

धीरे-धीरे खबर फैलने लगी। दैनिक पत्रों में अधिकारियों की कहानी छपी। दूसरे दिन सम्पादक को डांट लगाई गई है कि तुम देश के विरुद्ध जा रहे हो। सम्पादक चतुर आदमी था। उसने दूसरे ही दिन गालियां छाप दीं और तीसरे दिन फिर तारीफ़ छाप दी। अधिकारी उससे क्रुद्ध हुए; पर तब तक शहर में काफ़ी लोगों पर राज खुल चुका था। विद्यार्थी शहर में प्रचार कर रहे थे ! लोगों की समझ में नहीं आ रहा था। कुछ ने राय दी कि एक सभा बुलाई जाय। मालूम हुआ नगर में दफ़ा १४४ लगी है, सभा नहीं हो सकती। पर्चे नहीं छप सकते। कल जो लड़के दीवारों पर इश्तिहार चिपका रहे थे, उनमें से एक गिरफ्तार कर लिया गया था। और जेल में बन्दियों को भूख हड़ताल करते हुए २२ दिन हो

चुके थे। संवाद आया था कि जबरदस्ती नाक में नालियाँ डालकर दूध पिलाया जाता था। न्याय की वेदी पर, ब्लेकमार्केट की वेदी पर, जेल में सत्य और न्याय के पहरुए, तिल तिल कर घुल रहे थे, रह रह कर मिट रहे थे, लेकिन उनके होठों की मुस्कराहट जेल से बाहर दिखाई दे रही थी जैसे पानी में पत्थर गिरने से लहरियाँ फैलती चली जाती हैं। उनकी आँखों का निश्चय जो मौत को चुनौती दे रहा था, जो आती हुई मौत की आवाज सुन रहा था, जो मौत के कसते हुए पंजों से लड़ रहा था, जो कभी ऐंठन, कभी खून के थूक, कभी आँखों के नीचे छाये अंधेरे में घुमड़ रहा था, बाहर सब तक आता था। और निश्चय एक विश्वास था, कि एक दिन यह घूर कर देखने वाले, यह होंठ काटने वाले, यह सफेद और खाकी कपड़े पहन कर चिल्ला चिल्ला कर डांटने वाले, काले दिनों के पाप को खद्दर में छिपाकर शरीफ बनने वाले, उस लहराती हुई लौह की मुस्कराहट से कट जायेंगे क्योंकि वह इन्सान की, दुख और दर्द झेले मनुष्य की मुस्कराहट ठोस है उसके किनारे सत्य ने पैने कर दिये हैं।

× × ×

सुभाष ने हँसकर कहा—'लो भाई मुस्लिम लीगी संपादक तो छूट गया।'

'छूट गया?' खास्तगीर ने चौंक कर पूछा। 'कैसे?' 'हबियस कार्पस (अर्थात व्यक्तिगत स्वतन्त्रता) की अर्जी दी थी सो हाई कोर्ट ने फैसला दिया है। लो देखो, जरा अखबार देखो!'

खास्तगीर अखबार पढ़ने लगा। पढ़ कर उसने संतोष से कहा—'वाह! कहा है; कलक्टर का काम गैरकानूनी था। वाह! वाह!'

खास्तगीर का स्वर उठ गया। उसने फिर झुककर आँखें चमकाकर कहा—'अब कलक्टर को सजा मिलनी चाहिये।'

सुभाष हँसा। इसी समय किसी ने, दरवाजे पर आवाज दी।

'कौन है? भीतर आ जाओ,' सुभाष पुकार उठा।

भीतर आने वाला एक सूखा साखा नौजवान था। उसकी पलकों पर धूल जमी थी। वह आकर धम से कुर्सी पर बैठ गया।

'तुम!' दोनों लेखक उसे देख चौंक उठे। 'तुम? जेल से बाहर? कब छूटे? कैसे?'

इस नये आने वाले व्यक्ति के चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। उसने कहा—'जादू जादू हो गया!'

'जादू!' खास्तगीर ने अचरज से पूछा—'मक्खी बनकर निकल आये?'

'अरे नहीं यार, मुकद्दमा हो गया। हम छूट गये।'

'यह कैसे?' सुभाष ने कहा। 'कुछ बताओ भी तो?'

'बताता हूँ, बताता हूँ, 'उसने रुक कर कहा। 'भाई जरा भूख हड़ताल करने से जो ज्यादा ताकत आ गई है न! तो जल्दी नहीं बोल पाता।'

सुभाष और खास्तगीर 'ने उसे सहानुभूति से देखा। उसके चेहरे पर थकान व्यक्त थी, जैसे कई दिन से वह सोया नहीं था। कुछ देर वे सब खमोश रहे। फिर उसने कहना शुरू किया: "मेरा मुकद्दमा जेल में ही किया गया। एक मैजिस्ट्रेट, तहसीलदार, दरोगा तथा अमले साथ आये। मुझ पर जुर्म सुनाये गये। कहा गया कि तुमने रैयत को भड़काया। 'मैंने कहा: 'मैंने क्या किया?'

'तुमने भाषण दिया और गर्म भाषण दिया।' दरोगा ने कहा।

"दिया?' मैजिस्ट्रेट ने पूछा।

'दिया और फिर दूंगा। लेकिन मैंने गर्म भाषण में क्या कहा? मैजिस्ट्रेट साहब के पास नकल है?'

मैजिस्ट्रेट ने तहसीलदार की ओर देखा। तहसीलदार ने कहा: 'चूंकि मैंने नहीं, बल्कि दरोगा जी ने गिरफ्तार किया था, आप ही से पूछिये।'

'जी हाँ, 'हुजूर, दरोगा जी ने कहा—'मुजरिम ने कहा था कि

मँहगाई बहुत ज्यादा है, सरकार सेठों का फायदा करती है, किसानों पर जमींदार अभी तक बैठे बैठे उनकी खाल उधेड़ रहे हैं, परती धरती और चरागाहों पर कब्जा कर रहे हैं, सरकार की पुलिस और उन्हीं की मदद करती हैं।'

'बस?' मैजिस्ट्रेट ने पूछा—'और कुछ?'

'और हुजूर' दरोगा ने कहा—'सरकारी अफसरों के बारे में यह गालियाँ देते थे, जिससे सरकार की बदनामी होती थी।'

'क्या मतलब?' मैजिस्ट्रेट ने कहा—और फिर मुझ से पूछा—'क्या यह ठीक है?'

मैंने कहा—जी हाँ बिल्कुल ठीक है। लेकिन मैं सुनना चाहता हूँ कि मैंने क्या कहा?

'हाँ दरोगा जी इन्होंने क्या कहा?' मैजिट्रेट ने फिर पूछा।

दरोगा कुछ परेशान सा दिखाई दिया। माथे को उंगली से दबा फिर रुककर कहा—'अब हुजूर मुझे इतना तो याद नहीं रहा।'

'लेकिन मुझको याद है, मैंने टोका—'मुझे सब याद है। मेरी इस दरोगा से पुरानी तनातनी है। मैं इनके बारे में पहले भी दो बार शिकायत कर चुका हूँ कि यह रिश्वत बहुत लेते हैं। बताइये, मैंने कहा था कि यह अंगरेजी जमाने के गुलाम तबियत सरकारी नौकर, पुलिस, जिनका दिल अब भी नहीं बदला है, कैसे काम ठीक चला सकते हैं? इन्हीं दरोगा जी का आज बीस हजार रुपया बैंक में जमा है, इनके पास कहाँ से आया? क्या मिलती है इनको तनख्वाह? कोई पैसे वाले घराने के आदमी भी नहीं। फकत। मैंने बस इतना ही कहा था? पूछ लीजिये।'

मैजिस्ट्रेट के होठों पर कुछ झेंप भरी मुस्कराहट थी। उसने मुँह फिरा कर जैसे रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछा। दरोगा मुझे घूर रहा था जैसे कच्चा चबा जायेगा। मोटे तहसीलदार साहब इस समय जैसे

खेली चिता में डूब गये थे और दीवान जी तथा सिपाही बुत बने खड़े थे। कठोर, हृदयहीन, नीरव।

मैंने फिर कहा—'मैं आप के न्याय पर विश्वास नहीं करता। आप अगर आदमी को बे बात जेल में डाल सकते हैं तो मैं आप पर यकीन कैसे कर सकता हूँ। आजादी मिली है, लेकिन वह सिर्फ चोर बाजार करने के लिये मिली है। हमको नहीं मिली, जो खेतों में काम करते हैं। दरोगा जी को मिली है जो अब तिरंगा ओढ़ कर रिश्वत लेते हैं।'

वह थक कर रुक गया था। खास्तगीर की आँखें गौर से सुनने के कारण मुंदी हो गई थीं। कमरे में एक भभक सी घुमड़ रही थी। सुभाष उठ कर खड़ा हो गया था। वह हाथ में पैंसिल उठा कर कुछ सोच रहा था। बाहर धूप छिप गई थी शायद वह बंजारा बादल का टुकड़ा अब उस धूप के नीचे भुन रहा था। इस बादल का बरसना जरूरी है। यह दुनिया की गर्मी मिटाने के लिये है। सूरज सोख कर जला देना चाहता है, हवा ठोकर मारकर इधर से उधर बहा देती है। लेकिन एक दिन जब ये बूंदे इकट्ठा हो जायेंगी तब यह बादल घड़घड़ा कर बरस जायेंगे और धरती फिर हरियाली से लहलहा उठेगी।

'फिर?' खास्तगीर ने पूछा।

'फिर? उन्होंने मुझे छोड़ दिया। वे मेरे जुर्म को साबित नहीं कर सके।'

'दारोगा का क्या हुआ?'

'कुछ नहीं। होता क्या' उसके स्वर में एक आक्रोश था। वह फिर कुर्सी से पीठ लगाकर बैठ गया। पांव उठाकर मेज पर रख लिये।

खास्तगीर हँसा। उसने कहा:—'एक राजा था जिसने एक आदमी को फाँसी की सजा दी थी। पर फंदा उस आदमी के गले के लिये ढीला था। तो उसने कहा था—यह फंदा जिसके ठीक आये उसी के डाल दो। तुम तो उससे निकल आये?'

मेरी गर्दन' उसने कहा—'दुबली है! जिनकी गर्दनें मोटी हो गई हैं वे ही उसमें आयेंगी।'

'यही हुआ था', खास्तगीर ने कहा—'राजा को ही आखिर चढ़ना पड़ा। फँदा उसीके ठीक था।'

वे लोग फिर खमोश होगये। वह फिर कहने लगा—'जो जेल में भूख हड़ताल कर रहे हैं वे भूखे नहीं हैं। माना कि अखबार उनकी खबरों को बड़े बड़े हरूफों में नहीं छापते जैसे वे छाप देते हैं कि फलाने सेठ ने आज कौन सी मोटर खरीदी, माना कि उनकी आवाज अभी बुलंद नहीं है, लेकिन वह फैल रही है······और वह दिन दूर नहीं है जब वह सब को सुनाई देगी, सबके भीतर बोलने लगेगी। धीरे-धीरे शरीर घुल रहा है। चौथे दिन के बाद से भूख की तेज बर्छी की सी मार नहीं रहती, हाथ पांव शरीर में दर्द होता है, आँखों के सामने सब कुछ घूमता हुआ लगता है, पर फिर मन जीत लेता है। यह सच है कि मन अकेला ही काफी नहीं है, शरीर गिजा चाहती है। हमें भावुक होने की जरूरत नहीं है······फिर भी वे मनुष्य है, वे जीते है और मरते हैं क्योंकि उनके विश्वास मनुष्य के सुख दुख पर आश्रित है वे बुद्धि से काम लेते हैं...'

उसकी आवाज कमरे गूंज कर हृदय में उतरती थी और फिर खिड़की से निकल निकल हवा पर भाग रही थी। सुभाष और खास्तगीर सुन रहे थे। उस दिन कलक्टर बोल रहा था। उसके मुख पर एक चंचल और कुटिल मुस्कराहट थी जो सब कुछ छीन कर अपने पास रख लेना चाहती थी; आज यह एक किसान कार्यकर्त्ता बोल रहा था। इसके मुख पर एक दृढ़ विश्वास था, या प्रकट और सीधी सीधी वेदना थी जो सब कुछ उनको बाँट देना चाहती थी जो दुखी थे, लुटे हुये थे, पिसे हुए थे···

सुभाष ने देखा। यह मनुष्य था। और वह जो उस दिन कुर्सी पर बैठा था वह एक कठपुतला था, उसके जैसे अनेक थे·······नाच रहे थे····ताक धिना धिन·····

# स्वप्न और जीवन

शांतिनिकेतन की नीरव सुन्दरता पहले जैसे उसकी आत्मा में एक दम उपचेतन सी समा गई, धीरे २ वह झिलमिल दूर होने लगी। ऋषियों की सी छोटी छोटी कुटियों से बंधा हुआ संगीत उठता और हरे पेड़ो के सघन पत्तों को छूता हुआ अंत आकाश में धीरे धीरे लोप हो जाता। सांझ की बेला में जब क्षितिजों पर रंगीन बादल झूला करते वह बैठा बैठा देखता, कि सुदूर जो नीली वनराजि थी उस पर एक अतीन्द्रिय निस्तब्धता उतरती चली आ रही है, जो इन लाल मिट्टी के पथों पर अवसादमलिन सी सो जायेगी।

जीवन का शाश्वत सौंदर्य भीतों पर बने चित्रों में मुखर हो उठता। प्रभात की मनोरम बेला में जब स्वच्छ मुक्त लड़के और लड़कियां महाकवि रवीन्द्र के अद्भुत गीत गाने लगते तब उनका स्वर प्राचीन शिल्प के उदाहरणों से टकराकर आम्र-कुंज में लहराता हुआ अतिथियों के कानों में पड़ता और फिर वह उन्हें विभोर करता हुआ सामने के मैदान पर नृत्य करने लगता।

चन्द्रशेखर सुदूर जमुना किनारे का रहने वाला यहां अध्ययन करने आया था। उसे वहाँ की हर बात में एक अजीब नयापन लगता।

मालिनी ने जब कहा कि गुरुदेव का स्वप्न शाँतिनिकेतन में आ कर जीवन बन गया है तब उसे सुन कर अच्छा लगा। जीवन और स्वप्न दो अलग अलग वस्तु से क्यों लगते हैं? क्या जागरण ही जीवन है चन्द्रशेखर सोचता, जागना, सोना, स्वप्न देखना, यह सब ही तो जीवन

है। फिर वह अलग अलग करके क्यों देखता है? मालिनी अपने नये जीवन से अत्यन्त सन्तुष्ट थी।

किन्तु चन्द्रशेखर के साथ परेशानी थी। वह जब शान्ति निकेतन से बोलपुर जाता उसे लगता कि शान्तिनिकेतन निस्संदेह जीवन नहीं है, स्वप्न है। क्योंकि बोलपुर के कच्चे धूल भरे रास्ते, वे चरमराती बैलगाड़ियाँ, वे गन्दे घर, कुचर कुचर हाट बाजार, और कुत्ते की तरह हाँफता हुआ मनुष्य। चन्द्रशेखर मन ही मन कहता जीवन यही है। यही है जो समस्त भारत का चित्र है। यही दुःख और वेदना सत्य है, बाकी परमात्मा के वियोग का दुख उपचेतना के मौन विकारों की अतृप्ति का समाज में व्यक्तित्व के असहायत्व का लक्षण है।

मधुसूदन तिवारी फिर भी प्रसन्न नहीं रहता। उसे अपने घर की याद आया करती। उसके एक माँ थी, पत्नी, बच्चे,...सब थे और अपनी कम तनख्वाह की कचोट में वह कभी भी अपने अभावों को त्याग कहने के लिए तैयार न था। उसका कहना था कि सारा समाज गल चुका है। इसका हृदय अभी तक किसी न किसी तरह धड़क रहा है और भीतर की बदबू में असह यातना है। प्राचीन संस्कृति के फूल चढ़ाने से भी गन्दा शरीर स्निग्ध और स्वच्छ नहीं हो सकता क्योंकि यह प्रायः लाश हो चुका है।

सांझ की बेला में चन्द्रशेखर जब घूम कर लौटा तब बिजली जलने लगी थी। धुँधलके में संगीत भवन से धीमा-धीमा वीणा का गुंजन निकल रहा था और लड़कियों की खिलखिलाहट से मिल कर वह स्वर जब बालकों के कलरव में आकर सिमट जाता तब उस वातावरण में गुरुदेव के अभय स्वर प्रबुद्ध चेतना से मन के स्तरों को जगाने लगते। चन्द्रशेखर रेस्ट्रां में काफी पीने लगा। वह थक गया था। एक धुँधला दीपक जल रहा था।

चन्द्रशेखर ने देखा। सामने एक मिट्टी की मूरत थी और रेखा वाला वृद्ध उसको देखकर प्रसन्न हो रहा था क्योंकि युवक ने उसी की सूरत को मिट्टी में ऐसी सफाई के साथ ढाल दिया था कि मन बरबस उस युवक की कला से प्रभावित होने को बाध्य हो रहा था। चन्द्रशेखर की आत्मा को अत्यन्त सुख हुआ। यहाँ के लोगों में जादू है। गाते हैं तो कानों में रस घोल देते हैं। तूली उठा कर जब रंग घोलते और चित्र बनाते हैं तो लगता है कि वही संगीत अब रेखाओं में बंध कर स्थिर हो गया है जो निस्तब्ध होकर गूंज रहा है, और जब मिट्टी को भिगोकर उसमें हाथ डालते हैं तब सजीव आकारों का निर्माण होने लगता है...

पास में ही युवक खड़ा था जिसके हाथों में अभी तक मिट्टी लगी थी। चन्द्रशेखर ने उसकी ओर प्रशंसा भरे नयनों से देखकर कहा: आप का हाथ बहुत अच्छा है।

युवक ने मुस्करा कर सिर हिलाया। उस स्वीकृति में एक नम्रता थी। बात चल पड़ी। उसने कहा: अभी मैं परीक्षा के लिये तैयारी कर रहा हूँ। इसके बाद मुझे सरलता से नौकरी मिल जायगी और मैं यहाँ से चला जाऊँगा। पर इस काम में भी बहुत धाँधली चलती है। जो इसमें प्रतिष्ठित हो चुके हैं वे दूसरों को सरलता से आगे नहीं बढ़ने देते और मौलिक चिंतन का क्षेत्र दिन पर दिन कम होता जा रहा है। बाजार के विज्ञापन की मांग दिन पर दिन बढ़ती जारही है।

चन्द्रशेखर ने सुना। उसका मन कचोट उठा।

जीवन का यह स्वर्ग बहुत छोटा है। इसके चारों ओर वही विषाक्त नरक है जहाँ कर्मलोक की जघन्य तृष्णायें और कामनायें हैं। क्या यह सचमुच स्वर्ग है। क्या यही उस लोक की चरम कल्पना नहीं है ! फिर क्या यह मनुष्य को भुलाए रखने के लिए उच्चवर्ग का एक प्रयास है कि जीवन की विभीषिका से संघर्ष न करो अपनी आत्मा का सुधार

करो ! क्या इस चेतना की प्रतिच्छाया संसार का पददलित जीवन मुक्त नहीं कर सकती ?

चन्द्रशेखर व्याकुल हो गया ।

कमरे पर लौटते ही सुना कि आज फिलैडेलफिया में एक प्रोफेसर आये हैं। उनका दर्शन-शास्त्र और विश्व-शान्ति पर भाषण होगा। अत्यन्त भव्य और सज्जित कमरे में देर तक वह विश्वशांति पर आत्मिक विकास का पाठ पढ़ता रहा और अपने भीतर के विश्वास और श्रद्धा की कमी पर अफसोस करता रहा। जब वह बाहर निकला उसने देखा कि उसकी सुन्दर चप्पल गायब थी। बहुत विस्मय हुआ। जिसने सुना आश्चर्य किया। छोटे-छोटे बच्चों ने उसे घेर लिया। चन्द्रशेखर चप्पल खो जाने के खेद को बच्चों की हँसी में भुला देना चाहता था। उसे विस्मय था कि ऐसी जगह भी चोर हो सकते हैं। तभी उसे याद आया बड़े-बड़े ऋषियों मुनियों का हृदय भी विचलित हो जाता था, फिर इस में विस्मय ही क्या है ?

और अचानक ही चन्द्रशेखर को ध्यान आया कि मनुष्य का हृदय जब बन्धन में होता है तब अवश्य ही मर्यादा का उलंघन करने का प्रयत्न करता है। मनुष्य का लाभ उसकी नीचता हो सकती है, पर वह उसकी विवशता का परिणाम भी हो सकता है।

जब वह कमरे को लौटा रोज की भाँति वह काली छाया कमरे में आई और चुपचाप कटोरदान उठाकर चलने का उपक्रम हुआ। मधुसूदन तिवारी की कृपा से यह प्रबन्ध हो गया था। शाम को चन्द्रशेखर वहीं खाने चला जाता जहाँ लगभग पाँच सौ विद्यार्थी-गुरू सब मिलकर खाया करते। दिन में यह आदमी वहाँ से कटोरदान में खाना ले आता। उस खाने को देखकर चन्द्रशेखर को अपने प्रान्त की याद आने लगती। एक बार तो वह स्वयं भी जाने से इन्कार करना चाहता जहाँ कहा जाता है कि नमक, खटाई और तेल बिल्कुल नहीं खाया जाता। और परि-

याम होता कि चन्द्रशेखर डटकर चाय-का ही पीता, सूखा चिउड़ा खाता और बराये नाम खाना भी। बिना जूठा किए जो अधिकांश बचा देता, वही आदमी नित्य उसे ले जाता, खा लेता, और चन्द्रशेखर पर इस आध्यात्मिक उपवास का वही असर हुआ जो गौतम बुद्ध पर हुआ था।

क्यों? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है? नीहार ने एक दिन पूछा।

चन्द्रशेखर हँसा। उसे याद आया कि जिस खाने को देखकर वह अपना आत्मिक बल भूला जाता है, उसे ही वह युवक माँग-माँग कर तारीफ कर करके खाता है। देश का भेद मनुष्य मनुष्य में क्या सचमुच भेद पैदा कर सकता है?

चन्द्रशेखर ने देखा। गुरुदेव की भव्य मूर्ति उसके नेत्रों के सामने से गुजर गई। उनके मुख से मृत्यु को चुनौती देने वाली भव्यगरिमा फूट रही थी, जैसे विशाल आम्र वृक्ष पर नवजीवन का इंगित बनकर कोमल कोंपलें फूट निकलती हैं। उसका मस्तक नत हो गया। यह मनुष्य की निबलता है कि वह अपने को स्थानीय परिवर्तनों के उपयुक्त नहीं बना लेता।

बिहारी होने के कारण मधुसूदन तिवारी भी असंतुष्ट थे। नीहार सरकार ने कहा—तुम्हारा यह खाना लाने वाला मुझे ठीक नहीं जंचता।

"क्यों?" चन्द्रशेखर ने पूछा।

नीहार ने बिना हिचके उत्तर दिया:—इस आदमी को मैंने अस्पताल में देखा है। यह सदैव उन बीमारों के पास रखा जाता है जिन्हें कोई छूत की बीमारी होती है, जैसे तपेदिक, चेचक, शीतला। और डाक्टर नर्सों की बात दूसरी है। वे लोग साफ रहते हैं। पर यह तो नहाता भी न होगा, न कपड़े बदलता होगा।

चन्द्रशेखर ने सुना। कपड़े तो इसके पास शायद होंगे ही नहीं। और सनातनता की भूल ने, या अपने पापों के प्रायश्चित ने मन ही मन कहा कि अगर यह व्यक्ति ऐसी-ऐसी जगह ऐसा काम करने को मजबूर है

और फिर भी नहीं मरता तो मैं ही क्यों मरूँगा। पर फिर वह अपने आप हँसा। यह तो भाग्यवाद हुआ। साफ बात तो यह है कि व्यक्ति से प्रेम हो सकता है, रोग से प्रेम नहीं किया जा सकता।

पर रहा निरन्तर यही क्रम। यही सिलसिला चलता रहा कि वह आदमी नित्य आता और खाना ले जाता, कटोरदान धोकर रख जाता और फिर दूसरे दिन चुपचाप कटोरदान उठा कर ले जाता।

चन्द्रशेखर फिर उन मोटी-मोटी किताबों में डूब गया। शताब्दियों का ज्ञान सामने बँधा हुआ पड़ा है। मूर्ख संसार में बहुत कम लोग इस रत्न राशि को मानते हैं।

और चन्द्रशेखर को याद आया ऐसे ही एक दिन जब पेड़ों की घनी छाया में उटजों से गम्भीर वेद ध्वनि गूँजा करती। तब तापस-वृन्द गम्भीर रहस्यों की उलझनों को खोजा करते। तपोवन में ब्रह्मचारी और युवक अध्ययन में लगे रहते। ब्रह्मचारिणियाँ अपने पवित्र जीवन की उज्ज्वल प्रभा से जीवन को आलोकित किया करतीं।

वह आर्य्य-गरिमा थी, जिससे संसार की विषमतायें दूर थीं। चन्द्रशेखर को हठात् याद आया--किन्तु उसका खर्च कैसे चलता था!

वह हँसा—उनका खर्च ही क्या था! ज्ञान के आर्थी थे। थोड़ा बहुत खा लिया बस। और वह फिर संस्कृत के श्लोकों में खो गया...

जब उसका ध्यान टूटा, देखा द्वार पर कोई खड़ा है।

एक गहरे साँवले रंग का युवक धोती और कुर्ता पहने। उस व्यक्ति ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।

चन्द्रशेखर ने उत्तर देकर कहा: आइए।

वह व्यक्ति जैसे इस सम्मानित सम्बोधन को हठात् ही स्वीकार नहीं कर सका। आकर हिचकिचाता हुआ बैठ गया। बात चल पड़ी।

'मेरा नाम शास्त्री है।' आगंतुक ने कहा, 'मैंने सुना था कि आप भी कुछ लिखते हैं। दर्शन करने चला आया।'

चन्द्रशेखर मन में कुछ शर्मा गया। उसने कहा—लिखता तो विशेष नहीं,पर पढ़ने का आदी हो गया हूँ। तभी कुछ न कुछ करता ही रहता हूँ।

चन्द्रशेखर ने हंस कर शास्त्री का हाथ स्नेह से दबा दिया। शास्त्री जैसे कुछ मुखर हो उठा।

'आप यहां क्या करते हैं?' चन्द्रशेखर ने पूछा।

'मैं यहाँ उस भवन में काम करता हूँ।''

'अच्छा' उसने पूछा—'कब से हैं?'

उसने धीरे से कहा—आया तो था मैं नृत्य सीखने। जब आ ही पहुँचा तो नई दिक्कतें सामने आईं। फिर यहीं मैंने भवन में नौकरी करली। सोचा था खाने को कुछ मिल ही जायेगा और उसी के सहारे काम भी चल जायेगा। लेकिन जो सोचा था, वह नहीं हो सका। अब तो मैं यहाँ व्यर्थ पड़ा हूँ।

चन्द्रशेखर समझ नहीं सका। उसे कोई विस्मय नहीं हुआ। अक्सर पढ़ने वाले लोग नौकरी करके पेट भरते हैं और अपनी पढ़ाई चलाते हैं।

'तो फिर', चन्द्रशेखर ने पूछा—'आपने अपनी पढ़ाई स्थगित क्यों कर दी?'

शास्त्री ने कुछ तीखेपन से कहा: 'मास्टरों और विद्यार्थियों को आज्ञा दी गई कि वे मुझे नृत्य जैसी कलात्मकता नहीं सिखायें।'

चन्द्रशेखर ने चौंक कर पूछा: 'क्यों?'

'क्योंकि मैं यहीं का नौकर हूँ न! इससे कायदा बिगड़ जाता। नौकर और मालिक का साथ साथ पढ़ना उन्हें पसन्द नहीं।'

चन्द्रशेखर को झटका सा लगा। उसने कहा—'लेकिन यहाँ तो किसी भी प्रकार के बंधन नहीं माने जाते?'

शास्त्री ने उदास की फीकी हंसी हंसकर कहा—कहने की बात और है

फिर भी चन्द्रशेखर ने कहा—'इतने बड़े बड़े साम्यवादी विद्वान यहाँ हैं, पर कोई बोलता भी नहीं ?'

इस बात का शास्त्री के पास कोई उत्तर नहीं था। थोड़ी देर रुक कर उसने फिर कहा—'एक विद्यार्थी ने मुझे छिप कर नृत्य सिखाना शुरू किया। लेकिन गुरुजनों को मालूम पड़ गया और वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने कहा कि इससे एक बुरा उदाहरण पेश हो जायगा!'

'बुरा उदाहरण!' शब्द चन्द्रशेखर के कानों में गूंज उठे।

'मैंने स्वयं उस विद्यार्थी के पास जाना छोड़ दिया।' शास्त्री चुप हो गया था। चन्द्रशेखर चुपचाप सुनता रहा और उसके दिमाग़ में बिजली सी कौंध उठी।

'आप शास्त्री क्यों कहलाते हैं ?' चन्द्रशेखर ने कहा—'क्या आपने संस्कृत की कोई परीक्षा पास की है ?'

'जी नहीं,' शास्त्री ने संकुचित स्वर से कहा—'मैं दक्षिणी हूं। तभी।'

और चन्द्रशेखर ने देखा श्यामल रंग, सूखा हुआ शरीर, लंबे बाल ऊपर कढ़े हुए, मैली चप्पल, पर सादा कुर्ता और सफ़ेद धोती।

शास्त्री चला गया था। चन्द्रशेखर का मन उचाट सा गया। क्या वह व्यक्ति इस योग्य नहीं कि उसे भी साथ ही नृत्य सीखने दिया जाये। इस समाज में ऐसा तो होता है कि बाहर का गरीब कभी कभी दूसरी जगह के अमीरों के साथ बैठने लगे। लेकिन यह असम्भव है कि अपना नौकर अपने साथ मेज़ पर बैठ कर साथ चाय पीये।

उसने दराज में से निकाल कर एक बार वह पत्र फिर पढ़ा जिसका जवाब उसने कल ही लिखा था। पत्र! एक बम्बई के मजदूर का पत्र। जिसमें उसने चन्द्रशेखर की एक पुस्तक को पढ़कर प्रशंसा लिखी है। जो गोर्की बनना चाहता है, पर पढ़ने को उसे किताबें नहीं मिलतीं। आज कल एक मारवाड़ी के यहां चौकीदार है। चन्द्रशेखर को चक्कर आ रहा

है। सचमुच। जीवन कितना बद्ध है। फर्क है कि चन्द्रशेखर को लिखने के साधन हैं। गुरुदेव को अपनी पुस्तक स्वयं छपवा लेने के भी साधन थे।

बाहर लड़के और लड़कियाँ ठठा कर हँस रहे थे। नया नाटक खेला जाने वाला था, अब की पूर्णिमा के दिन। उसी के लिये पात्रों का चुनाव हो रहा था।

चन्द्रशेखर घूमने चल दिया। पुस्तकालय में बैठा रहा। पढ़ता रहा।

रास्तों पर उसने देखा। विशाल वृक्षों की छाया में बसन्ती साड़ियाँ पहने लड़कियां खेल रहीं थीं। मोहक दृश्य था। कोई बन्धन नहीं; यहाँ कोई कलुषित नहीं है। जीवन की स्वाभाविकता खेल रही है।

जब वह लौटा तो मन भारी था। कमरे में आकर बैठ गया। एक चित्रकार अपना चित्र बनाने का सामान लेकर लौट रहा था। चन्द्रशेखर ने देखा उसके मुख पर एक आत्म-सन्तोष की भावना थी। मेहता अपने कमरे की खिड़की से दिखाई दे रहा था। चन्द्रशेखर देखता रहा। वह व्यक्ति नितांत किताब का कीड़ा हो गया है।

तभी उसका ध्यान टूटा। उसने मुड़ कर देखा, सामने का द्वार भिड़ा हुआ था। उधर घूँघट खींचे एक गन्दी स्त्री खड़ी थी। चारों ओर नीरवता है।

चन्द्रशेखर समझ गया। वह उसी काले व्यक्ति की स्त्री, युवती नहीं है। चन्द्रशेखर ने उधर से सिर हटा लिया। पर वह भीतर नहीं आई। वह भीतर आने में सकुचाती है।

चन्द्रशेखर को विस्मय हुआ। फिर हँसा। वह क्या पुरुष मात्र को बुरा समझती है? क्या वह हर एक को कुलषित समझती है?

परतंत्र! नहीं वह दासी है। वह डरती है। उसका समाज उससे यही आशा करता है।

चन्द्रशेखर बाहर आ गया।

बाहर हवा चल रही थी। शरीर को सुख हुआ।

नीहार सरकार प्रशंसा कर रहा था। हम भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ लेकर खड़े हैं। किन्तु हममें जड़ता नहीं है। यदि हम देखते हैं कि विदेशी संस्कृति से भी कुछ अच्छा है तो हम उसे अवश्य स्वीकार कर लेते हैं......

चन्द्रशेखर ने सुना। वह मन ही मन हंसा। बंगाली संस्कृति के ये भारतीय प्रतिनिधि। आज भी यह लोग अ-बंगाली से मिल जुल कर बहुत कम बैठते हैं। जैसे यह लोग अलग हैं।

तब चन्द्रशेखर ने मन ही मन कहा—उच्च-वर्गों का आडंबर और उससे प्रभावित मध्यवर्ग दोनों में ही यह अलग रहने का दंभ है, यह बंगाली में कुछ अधिक है, है सभी में। केवल जनता में परस्पर भेद नहीं है। वहाँ तो भेद का बीज, जब संस्कृति के पालने वालों के हाथ का स्वार्थ भरा पानी पाता है, तभी वहाँ विष उगता है।

क्या यह प्रशंसा सचमुच मनुष्य की गरिमा थी। तभी मालिनी ने गंभीरता से कहा था—संस्कृति बंधनों में बंध कर नहीं पलती। और चंद्रशेखर के मुख पर मुस्कराहट देख कर वह चुप हो गई थी।

अतिथि अत्यन्त प्रभावित थे। वे कह उठे :—जीवन यहाँ स्वर्ग है। जिन्दगी तो आप लोगों की है। जब मैं शालवीथिका से चला तब मेरा साहस नहीं हुआ कि वहां पाँव रख सकूं। एक दिन उन वृक्षों की छाया में गुरुदेव की भव्य प्रतिमा चला करती थी। मैं पराजित हो गया हूँ। कलकत्ते में रोज मेरे मजदूर हड़ताल करते हैं, किसी में भी संतोष नहीं है।

नीहार कह उठा—पश्चिम के भौतिकवाद का प्रभाव भयानक रूप से पड़ा है.............

चंद्रशेखर ने देखा। मालिनी का सिर झुक गया था। मकानों में

मदद लगी थी। ईंटों और पत्थरों और गारे के ढेर में वह काले-काले आदमी और औरतें! फिर भी आंखों को एक शीतलता देने की शक्ति है उस काले रूप में। वह सोचता—इतने काले होने पर भी इनके शरीर की बनावट कितनी सुन्दर है! किसी भी प्रकार की कृत्रिमता से दूर।

चंद्रशेखर विभोर हो उठा।

संथालों के उस झुन्ड को देख कर उसके मन में मांस और देह का विलास जाग्रत हो उठा। यह जीवित प्राण है। इसका संसार आध्यात्मिक उलझनों में पड़ कर धरती को भूल नहीं गया है।

और उसे वे गांव याद आये। संथालों के छोटे-छोटे घर। जिनमें मंजे हुये साफ-सुथरे बर्तन, उज्वल चमकते स्त्रियों के सिर पर वह लाल लाल फूल""कितना मादक""वह श्रम की गरिमा...परन्तु जीवन की सारी निर्बलता का केन्द्रीकरण......

फिर वह सोचने लगा—गुरुदेव की छाया में यह संसार पला है। गुरुदेव ने कहा था—मुझे यही तो अच्छा लगता है कि पत्तों-पत्तों पर आलोक नाच रहा है। पत्ते-पत्ते पर नाचने वाला आलोक महाकवि को अच्छा लगता था। कितना सुन्दर विचार है, कितना सीधा सादा है।

चंद्रशेखर सोच रहा था।

वे गांव...यह तपोवन, वह तपोवन जिसमें नीरसता नहीं, राजसी विलास की गरिमा, सादगी का वातावरण, सौम्यता, सरलता, क्या यही जीवन की कल्पना को सुन्दर बनाने वाला नहीं है चंद्रशेखर!

मालिनी!

मालिनी ने हठात् उस दिन यह प्रश्न पूछा था।

आत्मा की गहराइयों के यह प्रश्न! चंद्रशेखर तू मशीनों के हाहा-कार में डुबा देना चाहता है।

चंद्रशेखर हंसा। नास्तिक!

कहां है कल्याण मालिनी! उसने कहा था।

और मालिनी की आंखों में अविश्वास से तारा कांप उठा था, जैसे अतिथिशाला के पीछे पेड़ों से घिरे ताल में रात के गहरे अंधकार में जुगनू भागता था, ऐसे जैसे आत्मा के निर्जन में एक अबाध प्रकाश की क्षीण किरण; क्षण भर चमकती, क्षण भर छिपकती, फिर अंधेरा, वही निरावरण गहरा अंधेरा...उस किरण की एक झलक पाने के लिये लोग जीवन जंगल में बिता देते थे......

दोपहर को वही काली छाया कमरे में घुसी। चंद्रशेखर ने देख लिया। वही था। खाना लेने आया होगा। वह झुका हुआ आदमी भीतर आ गया। उसने आकर अपने आप कटोरदान उठा लिया और अपने बर्तन में सारा बचा हुआ चावल डाल दिया। इसके बाद वह बर्तन लेकर धोने चला गया।

चंद्रशेखर ने आज प्रायः बहुत कम खाया था। जब से उसने खाना खाया था उसके हाथों पर खुजली सी फैल गई थी और तब से उसे हर चीज में गुड़ मिले खाने को खाने की हिम्मत ही बहुत कम हो गई थी। उसे उन लोगों पर विस्मय होता जो खाने को इतना गौण कर देते कि जो मिलता वही खा लेते। और उन्हें कुछ भी नहीं होता।

चंद्रशेखर पढ़ता रहा। किताब के पन्नों पर जीवन का रहस्य बिखरा पड़ा था, एक अतीन्द्रिय आनन्द। वह विभोर हो चला था। व्यक्ति क्या है? समाज की एक बूंद है। बूंद के बनने बिगड़ने से क्या होता है? तभी चंद्रशेखर ने देखा। काला नौकर चुपचाप खड़ा था।

उसकी ओर देख रहा था। वह खड़ा रहा।

चंद्रशेखर ने चौंक कर देखा। पूछा—क्यों क्या बात है?

वह आदमी कुछ संकुचित सा मुस्कराया। जैसे उसे मन ही मन कुछ प्रसन्नता सी हो रही थी। इसके बाद उसने देखा। उस काले हाथ पर एक पपीता दिखाई दिया। चन्द्रशेखर समझा नहीं!

उसने पूछा—क्या है?

पपीता मेज पर रख कर वह व्यक्ति कुछ लज्जित सा पीछे हट गया।

और उस व्यक्ति ने अपनी टूटी फूटी बंगला मिली हिन्दी में जो कुछ कहा उसका कुछ कुछ तात्पर्य था तुम बहुत कम खाते हो। बंगाली खाना तुम्हें अच्छा नहीं लगता। चाय पीकर भूख मिटाते हो। जूंठा नहीं करते। अच्छे आदमी हो। यह फल खा लेना। कुछ पेट तो भरेगा।

काली आकृति चली गई थी। शब्द कानों में भालों की तरह चुभ रहे थे। असह थी यह दारुण यातना। मनुष्य की जीवित आत्मा का गौरव किन पर्दों और कितने स्तरों के नीचे से न जाने कब बोल उठता है, यह कोई नहीं जानता।

चन्द्रशेखर की चेतना लहूलुहान हो चुकी थी। उस आडम्बर में में भी एक मनुष्य जीवित था। कितना महान्! वे जो त्याग के बल पर दो घोड़ों पर सवार आत्मा और परमात्मा को हवा में चाबुक मारकर भगाये चले जा रहे हैं, क्या वे अपनी रूढ़ियों के कोल्हू में पिस-पिस कर अपनी मनुष्यता का तेल खो चुके हैं, किसी और के हाथों बेच चुके हैं?

काली छाया! जिंदगी के टूटे हाथ ने उठकर संभाल दिया। उफ! भूख! मेरी भूख! उसके बच्चों की भूख!!

दिगन्तों का मुंह खुला है। कृष्ण ने जो अर्जुन को विराट रूप दिखाया था उस समय उनके मुख से निकली आग आज संसार में समा गई है।

सूखा शिरीष खड़खड़ा रहा था। काल बैशाखी की भयानक हहर से धूप की तपन ऐसी छिटक रही थी, जैसे आग की लपट कांप रही हो, और जब पेड़ों के पत्ते खुली हुई हथेली की भांति उसे रोकने की चेष्टा करते तब काल बैशाखी उस हाथ को झकझोर देती...चन्द्रशेखर देखता रहा...

वह आकृति........झुकी हुई आकृति, पेड़ों और झाड़ियों के पीछे वह आकृति धीरे-धीरे खो गई। उसे अपने ऊपर कोई गर्व नहीं है। उसने जैसे अहसान का बदला चुकाया है। बाहर खिड़की की ओर कोई आवाज सुनाई दी।

और तभी सुना नीहार किसी यात्री को समझा रहा था...यहाँ किसी प्रकार का बन्धन नहीं, यहाँ वासना का कलुष नहीं है......सब स्वतन्त्र हैं...बराबर हैं......

चन्द्रशेखर ने सुना...और सुनता रहा......

---

# बाप का दोस्त

जब से छोटा बेटा मजदूर किसानों के हकों के लिये लड़ने लगा उसके चेहरे पर एक कठोरता ने स्थान ले लिया। गली का वह उन्नीसवीं सदी का सा ठहराव उसके चेहरे पर से हट गया जैसे पुरानी बैलगाड़ी नहीं रही, अब उसके जगह एक नये किस्म की मशीन आना चाहती है। तो वह शिवनाथ बी० ए० पास कर चुका है और मुहल्ले के भद्रलोगों की नजरों में अब इसका कोई सम्मान नहीं रहा है।

पर माँ देखती। उसे थोड़ा सा आत्म सन्तोष होता जब शिवनाथ का बड़ा भाई बड़ा बेटा हरनाथ अपने किसी न किसी रोज़गार में लगा ही रहता। अच्छा प्रतिष्ठित घर था। उसकी शान किसी समय में दूर दूर तक फैली हुई थी। हरनाथ पुरानी स्मृतियों का नवोन्मेष है, जैसे एक पुनर्जागरण है। वह वकालत पास करके भी उस ओर बिल्कुल रुचि नहीं रखता। सरल है, हँसमुख है, प्रिय लगता है। अपने छोटे भाई की तरह इसकी अक्ल में कोई दरार नहीं है, उसकी तरह रंगीन स्वप्नों में नहीं डूबा रहता और न दुनिया को बेवकूफ समझता है। एक बात है कि कभी अपने छोटे भाई के कामों में अड़ंगा नहीं डालता।

और जब दोनों से उसका मन न भरता तब माँ पड़ोस के घर जा बैठती और रज्जो की माँ से अपनी गृहस्थी की बातें करती। भारतीय मध्य वर्ग की पुरानी स्त्रियों में सब के ऊपर छा जाने वाला, अथवा एक मात्र ध्येय कुटुम्ब पालन होता है। इसके अतिरिक्त जो भी हो वे

स्वीकार भले ही कर लें पर वह उस एकादशी जैसा नहीं होता जिस पर व्रत रखना नितांत आवश्यक है।

इस तरह जिन्दगी पिता की मृत्यु के बाद चलने लगी।

—२—

पिता का नाम नगर में प्रसिद्ध था। वे नामी वकील थे। जब तक वे जीवित रहे, अनेक बार बीमार रहने पर भी कांग्रेस के आन्दोलन में जेल गए। बड़ी-बड़ी सभाओं में उन्होंने सभापति का काम पाकर नम्रता से अस्वीकार किया, किंतु यश से इतना दूर रहने के बावजूद उनकी कीर्ति फैली और लोगों के हृदय में उनके प्रति श्रद्धाभाव जाग उठा जो स्वाभाविक था। अब भी उनके द्वार पर उनके नाम का ही साइन बोर्ड लटका था, जैसे जो गौरव, जो ऊँचा पद इस घर ने तब पा लिया था उसके बाद उससे आगे बढ़ा हुआ कोई काम अभी तक नहीं हुआ।

और उनकी सहृदयता की यदि पहचान करनी हो तो उनके पड़ोसी का पक्का घर अभी तक खड़ा हुआ था। मित्र कैसा भी गरीब था, फिर भी वकील साहब के हृदय में लेशमात्र भेद भाव न था। उन्होंने गरीब दोस्त के लिए खुद यह मकान खरीदा; खुद दोस्त के नाम रजिस्ट्री करा दी और फिर यह विषय ऐसा लुप्त हो गया जैसा व्यापारी सेठ के हृदय से ईमानदारी, मुरौवत और भलामनसाहत। वकील साहब के हृदय में कभी भी संदेह नहीं हुआ। गरीब दोस्त भी उनके साथ ही जेल जाता रहा। जनता से कांग्रेस के चंदे इकट्ठे करता रहा।

हरनाथ अपनी कोशिशों में लगा रहता। उसे अटूट विश्वास था कि पिता के ये मित्र जो आज समाज में अत्यंत सम्मानित व्यक्ति थे; जिनकी कांग्रेस में होने के कारण बड़ी दूर-दूर तक पहुँच थी, अवश्य उसे आगे बढ़ने में सहायता देंगे। वह अक्सर बैठा बैठा सोचता रहता।

भविष्य इतना अंधेरा क्यों है, शिवनाथ क्या गलत करता है कि व्यक्ति इस व्यवस्था में अत्यंत निराधार और आश्रयहीन है......

और एक दिन बहिन निर्मला ने आकर किताबें मेज पर जोरसे पटक दीं और चारपाई पर धम्म से बैठकर वह लेट गई और नीचे लटके पाँवों को हिलाकर चिल्ला उठी : मैं नहीं जाऊँगी कल से।

उसके लम्बे खिंचे मुख पर जो एक असुन्दरता थी वह इस समय बिल्कुल विकृत रूप में ऊपर उभर आई। अभी कुछ दिन पहले बड़ी मुश्किल से उसका विवाह हुआ है। बिरादरी में लड़के मिलने कठिन हैं। शादी के बाद भी किसी कन्या पाठशाला में पढ़ाती है। बहुत कहा कि कालेज में पढ़ ले पर उसका दिमाग़ ठस था। अपने एक छोटी सी पाठशाला में जो काम मिल गया उसे इससे गर्व हो गया। किंतु आज नई समस्या थी। उसने कुंठित करके कहा : इस्तीफ़ा दे आई हूँ।

और पूछने की ज़रूरत नहीं। यह उसने तीखी आवाज़ में चिल्ला कर कहा। पिता की लाडली थी; अधिक पूछने से पहले लड़ेगी, फिर रोयेगी।

दोनों भाइयों ने सुना। माँ ने सुना। सब के मुख पर एक मुस्कराहट छा गई। इसकी भी कोई नौकरी थी? बड़े घर की लड़कियाँ भी यदि छोटे छोटे स्कूल में भी कम से कम तनख्वाह पर भी नौकरी कर लें, इसमें अपमान नहीं समझा जाता। यह इस बात का बहुत बड़ा सार्टिफ़िकेट था कि लड़की पढ़ी लिखी थी। उसका पति गरीब आदमी था। हाँ अब परिवर्तन हो गया था। पहले वह बेकार था, पर बहू के भाग कि अब नौकरी लग गई थी।

फिर बहिन ने कहा : अब तो मैं बाबू जी के नाम के स्कूल में बच्चों को पढ़ाऊँगी।

दोनों भाई हँसे। पर वह तब तक रोने बैठ गई।

'ठहर तो', माँ ने कहा, 'मैं अभी लाला जी से जाकर बात करती हूँ।'

धमकी धमकी ही थी। माँ ने उसे सत्य समझा। वे चलने लगीं।

निर्मला पुकारती ही रह गई, किंतु माँ तब तक कमरे के बाहर निकल चुकी थीं। निर्मला का मुँह उतर गया। दोनों भाइयों ने उसे आश्चर्य नेत्रों से देखा। सेठ कृष्णसहाय उसके ट्रस्टी थे। पर स्कूल अभी दिमाग़ों में था। मृत्यु के समय ही वकील साहब के नाम पर पचीस हज़ार रुपया एकत्र हो गया था। आज तक उसका कोई ज़िक्र तक करने वाला न था। परंतु सीधी सादी माँ को यह सब कौन समझाता?

जैसे बड़ी किताबों में सेठ कृष्णसहाय बैठे बैठे कुछ पढ़ रहे थे। सामने एक आदमी बैठा कुछ उनसे प्रार्थना कर रहा था। उसके हाथ में कुछ था, जो वह उनका घुटना पकड़ कर ले लेने की याचना कर रहा था; और वे सिर हिला रहे थे। उस सिर हिलाने में नहीं का भाव नहीं था, भाव था 'ज़रा और' का, और सामने वाला ऐसे गिड़गिड़ा रहा था जैसे यमराज से कह रहा था : ज़िंदगी ...बस एक दिन के लिए और दे दो......

माँ ने प्रवेश किया। वह अपने स्वभाव से बढ़ती गईं। उन्होंने उच्छ्वासित स्वर से कहा : लाला जी...

उनका शब्द कमरे में चलती हल्की मद्धिम आवाज़ों पर वज्रपात के समान सिद्ध हुआ। वह सरल परिचय का पुराना शब्द घुन लगे काठ में उँगली की तरह घुसा, जो उस घुने हुए, भाग को खरोंच खरोंच कर नीचे गिरा देना चाहती थी। सेठ चौंक उठे। बोले : भाभी आप भीतर चलिए, मैं अभी आया। स्वर में संकोच था, जैसे जो हो जल्दी खतम हो जाये यही अधिक ठीक है। सामने बैठे आदमी के हाथों में चमकती हरे नोटों की गड्डी छिप गई। सेठ का उत्तर हवा में काँपता

रहा। गौरवान्वित हृदय को चोट लगी। सिर झुक गया। उन्होंने नीचे का होठ काट लिया। एक वह दिन था जब यह उन्हें देख कर कुछ भी करता हो, तुरंत उठकर इज्जत से खड़ा हो जाता था। माँ को लगा उनके मुंह पर थप्पड़ लगा।

सेठ के मुंह पर आतुरता थी। जैसे माँ ने आकर उनकी बनती भीत को ठोकर मार कर नीचे गिरा दिया हो।

माँ लौट चली। यह नहीं कि सेठ कृष्णसहाय ने इस विषय की वास्तविक गम्भीरता को नहीं समझा। पर वह समाज में अपना सम्मान प्राप्त करने के माध्यम जुटा रहा था। माँ के मुख पर एक कठोरता थी वह जो बहुत दिन की पिघलती ममता को हठात् ठंडा कर देने से जम जाने पर पैदा हो जाती है।

जब वे घर पहुंचीं हरनाथ को लगा उसकी नसों में खून जम जायेगा। शिवनाथ ने सुना। निर्मला ने देखा।

चाचा के जीवन का उत्थान जैसे यमुना की बहती धारा में कालिया नाग का उठना था, जो समस्त जल को विषाक्त करता चला जा रहा था। एक अजीब सा सन्नाटा छा गया! कुछ देर सब चुप रहे! पर अन्त में हरनाथ से नहीं रहा गया।

उसने तड़पती हुई आवाज में कहा: मैंने तो पहिले ही कहा था कि मत जाओ। अब गईं तो क्या नतीजा निकला। मैं तो इस आदमी को बाबू जी से वक्त से ही जानता हूं। पर मजबूर था। बाबू जी किसी को भी नीचता और ओछापन करते देखते तो तुरन्त तरह दे जाते, पर मैं चुप नहीं रह सकता। बाबू जी की भलमनसाहत से यह नंगा आज दुनिया में इज्जत पा रहा है, उनकी बदौलत इससे दो आदमी बात करते हैं......

माँ चुप रही। वह कहता गया: जिस पत्तल में इसने खाया उसी में छेद करना चाहता है! आस्तीन का साँप.....

वह क्रोध से हाँफने लगा। आज खुली बगावत हो रही थी। शिवनाथ ने व्यंग से हँसकर कहा—चाचा······

हरनाथ ने फिर बात छेड़ी : आज मुझसे सिब्बों कह रहा था—वह परमिट जो मैं लखनऊ से लाया था किसी को बेचा जा चुका है। इनकी मशीनें लगी थीं आज ये मुझसे बेचने को कहते हैं। इसमें भी इन्हीं का धंधा होगा। मेरा 'परमिट', उसकी आवाज गरजने लगी—। मैं घर को खड़ा कर देता, पर वह चाचा ने चोरी से बेचा है, सिब्बो कह रहा था, मैं तो,' उसने स्वर बदल कर कहा—'तभी समझ गया था।'

माँ को एक झटका सा लगा। उन्होंने उठ कर कहा—क्या कहा तूने ? किसने क्या बेच दिये ?

हरनाथ आज किसी भी शर्त पर पीछे हटने वाला नहीं था। उसने कहा—हाँ, पावर का परमिट था, बिजली का आजकल मुश्किल से मिलता है।

छोटा बेटा हँसा। उसने कहा—चाचा के क्या कहने हैं ? अब तो लाख डेढ़ लाख कमा लिये होंगे ? आजकल क्या बिजली मिलना आसान है ? इसी परमिट के पाँच सात हजार मिल गये होंगे। तुम्हारे काम आता तो उन्हें क्या मिलता। अब तो तुम उनकी मशीनें खरीद लो। वे तुमको दो चार हजार का ही ज्यादा हिसाब देंगे। तुमने उनसे परमिट माँगा ?

'माँगा था। चाचा से कहो तो रज्जो से पूछो, रज्जो से पूछो तो चाचा से कहो।' शिवनाथ सुनकर हँसा। उसने कहा : यह कहलाती है यार की दोस्ती, कह कर वह स्वयं मुस्कराया। उत्तर नहीं मिला। उसने कहा : इस वक्त तो मैं जा रहा हूँ मुझे एक मीटिंग में जाना है······

इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह चला गया। हरनाथ बाहर आकर बैठक में बैठ कर सोचने लगा। उस ट्रस्ट का क्या हुआ ? जब

इस जरा सी चीज में यह इतनी नीचता कर सकते हैं तो उन पच्चीस हजार रुपयों का क्या हुआ होगा! दो एक बार वह ट्रस्ट के दोनों आदमियों से मिल चुका था। सब ही प्रतिष्ठित आदमी थे। प्रायः हर जगह उन्हीं को ईमानदारी के लिये नगर में नियुक्त किया जाता था और उन्हें बिना काम किये अपना काम ठाठ से चला लेने की सुविधा दे दी गई थी।

—२—

रात हो गई। लौटते ही शिवनाथ ने कहा: आज मैं मिल आया हूँ।

किसी ने भी दिलचस्पी नहीं ली। माँ ने खाना लाकर रख दिया। शिवनाथ कहने लगा: 'आज चाचा के लड़की के व्यापार के बारे में एक बात सुनी है।' निर्मला ने आँखें उठाकर देखा हरनाथ खामोश रहा। नाली में मेहतर उतर रहा था। अब वह कीचड़ निकालेगा, बदबू आयेगी। शायद दबी गन्दगी को निकाल कर फकने वाले को दुनिया इसी से नीच कहती है, वह चाहता है, गन्दगी रहे, पर दबी रहे। माँ ऐसी पड़ी रही जैसे सो रही थी।

शिवनाथ कहता रहा:—तो इन्होंने एक तरकीब निकाली। कौन परेशानी करे। जंगलों में एजेन्ट रख छोड़े थे। उनके जरिये पेड़ खरीद लेते। फिर परमिट को डेढ़ गुना कीमत पर बेच देते। इसके बाद इन्हें कोई मतलब नहीं। अब जिस आदमी ने डेढ़ गुना कीमत दी है वह तीन गुना लेगा भी। सो रोजगार इस तरह मजे में चल रहा था। पर कमबख्त एक आदमी पकड़ा गया। वह पँचगुनी कीमत पर बेच रहा था। दरोगा से हुआ उसका झगड़ा। मामला पकड़ा गया। तलाशी की गई। जनाब चाचा साहेब के कदमों से गंगा निकली थी। लकड़ी का परमिट छिन गया है क्योंकि बड़े कांग्रेसी हैं, जेल अब नहीं भेजे जा सकते। जैसे पहले जमाने में ब्राह्मण शूद्र का कत्ल कर देने पर भी अवध्य था। दूसरे जिस अफ़सर ने इन्हें परमिट दिलाया था वह भी एक डेढ़ लाख खा

चुका था। उसे भी सजा मिली है। तबादला हो गया है। वह एकाएक हँसा। उस वमघोंट हँसी ने पर्दा फाड़ना शुरू किया। आत्मा पर छाया हुआ पर्दा। केवल कहने मात्र से जो वास्तविकता का भान नहीं हुआ था अब वह हँसी से प्रकट होने लगा। उस खिस्ती मार्मिक हँसी से जिसमें नफरत कूट कूट कर भरी थी। इन सभ्य जातियों के प्रति उसमें कठोर घृणा थी, घृणा······ईंट पर ईंट रगड़ने के शब्द के समान कानों को बुरी लगने वाली किस किसती हँसी। यह चोर सभ्य हैं, दुनिया इन्हें भला समझती है जबकि इन्हें कोड़ों से मारना चाहिये······

अब हरनाथ ने कहा—मैंने नई पाठशाला के बारे में तलाश किया है। निर्मला को नहीं लिया जायेगा।

निर्मला ऊन बुनती बुनती ऊबने लगी। उसने कहा-हमारा उस पर कोई हक नहीं !

'हक !' हरनाथ ने कहा—'हक छोड़ कर और कुछ सुनना देखो।' मुझे लगता है कि यह पच्चीस हजार रुपया भी अब नहीं मिलेगा। उस रुपये के मालिक चाचा हैं। हम नालायक हैं। समझो ! जिससे पूछो, कहता है—देश के कामों से फुर्सत नहीं मिलती। कहाँ-कहाँ क्या-क्या करें !

शिवनाथ वही गरचलाती दबी हँसी हँसा। उसकी हँसी में कटु शासन था। उसने हंसते हंसते ही बायें गाल में कौर खिसका कर भरे मुँह कहा—ठीक ही तो है। कहाँ कहाँ से रुपया मारें। मजबूर हैं। चाचा चाचा ने अपने लड़के के नाम से आज साबुन का कारखाना शुरू किया है। लकड़ी का परमिट भी रज्जो के ही नाम था। बात यह है कि खुद तो देश की सेवा से फुर्सत ही नहीं मिलती······

उस समय उनकी आँखों में सेठ कृष्णसहाय का वह चित्र घूम रहा था, जिसे याद करके क्रोध आता था।

घड़ी ने ग्यारह का घण्टा बजाया। 'मैं इस आदमी को सजा देना

चाहता हूँ। रँगा स्यार! सभी को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। किस कदर गिर गया है!' इस समय हरनाथ की आवाज में कुछ जोश था। वह कहता गया—मैं कांग्रेस वालों से रिपोर्ट करूँगा कोई बात है! यह लोग गांधी के नाम का नाजायज फायदा उठाते हैं। इनका बस चले तो गाँधी की लाश के खिलौने बनाकर बेचें और अपने घरों में, दूसरों की आँखों में धूल झोंक कर, दनादन पैसा भर लें।

वह हाँफने लगा था। माँ को जैसे चेतना लौट आई। निर्मला ने देखा हरनाथ के नथुने फूल उठे थे। वह घूम रहा था। आवेश में वह कहता गया—'क्या हम इनके गुलाम हैं?' नहीं। हम इनका भंडाफोड़ जरूर करेंगे। माना कि आज हम गरीब हैं, पर इसे हमारे भाग ने इस दर्जे तक पहुँचाया है। वे जानते थे कि यह तभी चन्दे खाता था। उन्होंने अपने पास से रुपये भरे थे। जब वह सारी बात कह चुका, शिवनाथ ने उसी हंसी से सराबोर आवाज में कहा—आप किसके पास न्याय के लिये जायेंगे जरा यह भी पहले जाहिर करदें। जो वयोवृद्ध पूज्य तपस्वी आज शहर कमिटी के प्रधान हैं इन्होंने लड़ाई के ठेकों में कुछ काम किया था, जानते हैं? जो पूज्य आज मन्त्री हैं उन्होंने नमक के व्यापार में चोर बाजारी की थी जब एक मामूली सीनियर इन्सपेक्टर ने पकड़ लिया और रिश्वत लेने से इन्कार किया तब उसे नौकरी से निकलवा देने की धमकी दी गई और वह बिचारा चुप हो गया। अपना शहर तो छोटा है। बड़े शहरों को देखिये। बेचारे काले रंग के हैं। अंग्रेज सफेद था। भीतर की काली करतूत छिपाने को सफेदी चाहिये, यह लोग सफेद टोपी लगाते। वह निर्दयता से हँसने लगा। हरनाथ ने सुना। वह फिर कुर्सी पर झुक गया।

शिवनाथ ने फिर कहा—जो तीन आदमी कांग्रेस से निकाले गए हैं, क्या वे देशभक्त नहीं थे? हाँ, खाऊ जरूर न थे। तभी उन्हें निकाल दिया गया।

अब निर्मला ने कहा—बाबूजी ने जो चाचा के नाम बैंक में डाला था। उस तक में उन्हें ने पचास रुपये कम दिये और जब मैंने हिसाब फैलाया तो चुपचाप गये। कह गये अभी चेक भेज दूंगा।

हरनाथ की मुट्ठियाँ क्रोध से भिंच गईं।

शिवनाथ ने कहा: 'पहले जाल था। इनके हाथ में ताकत न थी। अब ताकत है, तो देख लो। पर तब ऐसे आदमी कम थे, छिपे हुए थे, अब सब ज़ाहिर हैं, सभी ऐसे हैं·····अब ये मालिक हैं···जनता नहीं'···वह फिर हँसा।

दूसरे दिन धूप जब हलवाई के छप्पर पर आगई थी महरी ने आ कर छूटते कहा: बड़े आदमी होंगे, अपने घर के, हमें क्या मालूम नहीं है!

माँ चौंकी। पूछा: क्यों क्या बात हुई!

हुई क्या! लड़के को अपने यहाँ नौकरी पर रखा था, कारखाने में। अब चोरी लगाकर निकाला है।

'क्यों?'

'क्योंकि वह इनकी तरकीबें, इनकी चालें देख गया एक दिन दरोगा मिला रखा है। रक़म चल रही है खूब।'

माँ ने आंख उठाकर देखा। निर्मला बैठी बाल काढ़ रही थी।

महरी ने अकल से सिर हिलाते हुए कहा: माँ जी 'वखत ही बदल गया। किसे दोस दें'। इनका सुराज हुआ है हमारा नहीं। सो ये भर भर के घर रहे हैं और जो अब धर लेगा उनसे फिर कौन क्या ले लेगा! लड़ाई के मुनाफ़ा वालों से किसी ने क्या ले लिया! है किसी में हिम्मत माँ जी बाज़ार में हँस के कहते हैं—लेना हो लो, न लेना हो आगे बढ़ो'। आजकल तो पैसे लेकर बाजार में चीज खरीदने जाओ तो बनिये ऐसे देखते हैं जैसे कोई भीख मांगने आया हो······

महरी का विवेचन, और आलोचनात्मक विश्लेषण चलता रहा,

बर्तनों की खनखनाहट उठती रही······ और महरी ने मुड़कर निर्मल से कहा। बिटिया जरा एक पान का टुकड़ा तो लगा दे, जरा तमाखू और चूना ज्यादा लगाइयो, हाँ !' और फिर वह पूछने लगी—'बड़े भैया का कुछ रोजगार लगा कि नहीं ? और मैं कहती हूँ ये वैसे छलछंद नहीं जानते, इन्हें तो कहीं नौकरी करने को कहो·········

—४—

अंधेरा हो गया था माँ अकेली ऊब गई। हरनाथ और शिवनाथ कहीं गये हैं। निर्मला सामने के घर गई है। घर में इस समय कोई है नहीं। घर पर का खाना ही कितना। चार प्राणी, जिनमें निर्मला आज-कल की लड़की होने के नाते कम खाती है और हरनाथ की भूख चिंताओं ने मिटा दी है। उनकी अपनी भूख बुढ़ापा मार चुका है। कुछ नहीं। जाकर बाहर की गौरव में ही खड़ी हो गई। वही पुरानी तीलियों की चिकें पड़ी हैं। अच्छा खासा पर्दा है। बाहर वाला नहीं देख सकता। सड़क पर बच्चे शोर करते घर लौट रहे हैं। उन्हें याद आया। वकील साहब दोस्तों के साथ इसी पत्थर पर बैठे रहते थे। हरनाथ और शिवनाथ शाम को खेल कर घर लौटते थे। निर्मला कभी भीतर कभी बाहर खेलती थी। वे दिन कितने अच्छे थे। तभी देखा रज्जो कुछ इनके घर की ओर ही दिखा दिखाकर बता रहा था। कुछ देर में बात बंद हुई। वे दोनों आदमी चलने लगे।

'बस। इतना ही।'

'जी हाँ। पर यह क्या आसान था ?'

'सरकार आपकी दुआ पर पलते हैं।'

रज्जो कुछ देर देखता रहा। फिर कहा : एक आदमी यहीं रहे। बाबूजी कुछ देर में आते होंगे। उनसे मिलते जाना।

'बहुत अच्छा।' वे चले गये। रज्जो भी चला गया।

माँ की समझ में कुछ नहीं आया। यह क्या था। रज्जो इन दो नये आदमियों को क्या दिखा रहा था?

फिर अँधेरा सघन होने लगा। सड़क पर दूर दूर जलती बत्तियों का धुन्धला प्रकाश मात्र था, जिससे एक छाया का भान हो सकता था। हवा धूल से भारी भारी थी। पड़ोस के मंदिर में आरती का शब्द सुनाई दिया। फिर वह हलचल सिर झुका कर चूर होने लगी।

रात हो गई थी। माँ ने देखा।

सिर पर सफ़ेद टोपी, चुस्त सफ़ेद चूड़ीदार पाजामा, और सिलवट हीन लम्बी अचकन। गोरे रंग पर गम्भीर मुख। पाँवों में चमकदार जूता। हाथ में छड़ी। कुछ मोटे। सेठ कृष्णसहाय ने एक आदमी के साथ प्रवेश किया। उनके पीछे एक और आदमी दिखाई दिया।

'काम हो गया?' सेठ जी ने पूछा—रज्जो ने नक्शा बता दिया? आप भेदिये तैनात कीजिये।'

'हुजूर' कहकर वह चला गया। माँ ने अब समझा। रज्जो भेदिये को शिवनाथ की वजह से घर का नक्शा बता रहा था। शायद शिवनाथ गिरफ्तार हो जाये। तभी कमरे से स्वर उठे।

'मैं तो आप जानते हैं व्यापार करता नहीं। पूरा झंझट है। बस जरा मित्रता है। परमिट ला देता हूँ। डीजल आयल पहुँच रहा है?'

सेठजी का ही स्वर था।

'जी हाँ, पूरी की पूरी गाड़ी दूने दामों पर बिक रही है•••'

'अच्छा, अब बताइये आपको नया परमिट दिलवाया जाये? आप क्या करेंगे?

जो आपका हुक्म हो•••••' फिर स्वर डूब गये।

और माँ को याद आया। उसके पति ने आज से अठारह वर्ष पूर्व कहा था: जब देश स्वतन्त्र होगा, जब गरीबों का राज होगा? तब धन

को नीचा दर्जा दिया जायेगा, जब हम सब बराबर होंगे, तब तुम हमारी दोस्ती की कीमत जान सकोगी। यह निःस्वार्थ मित्रता है......

और भी जाने क्या क्या याद आने लगा। उनके होंठ काँप उठे और अस्फुट सा शब्द निकला : जिनके आँखों के लाल डोरे मिट चुके हैं, उनके भीतर खून खतम हो चुका है, उनकी देह में मशक की तरह पानी भरा है; वे मर चुके हैं......

# अच्छा और बुरा

उस घिरी-घिरी मुगलिया सड़क से जरा दायें उतरे कि ऊँचे घरों की छाया से एक अजीब तरह का धुंधलका पैदा हो जाता है जो न दिन ही लगता है, न रात ही। सकरी सड़क है। बड़ी मुश्किल से उसमें एक वक्त एक ही तांगा चल सकता है, वह भी लोगों को काफी तकलीफ़ देने के बाद।

तभी चपटी डबलरोटी वाले लड़के के खोम्चे पर झुक कर चील ने झपट्टा मारा और ऐऽऽ, ले गई बे, ले गई……और ही ही ही हा हा हा का कानों को फाड़ने वाला स्वर उठा। लड़के ने काफी फुर्ती दिखाई और जमीन पर गिरी हुई दो रोटियों को उठाकर उन्हें अपने पीछे रगड़ कर साफ़ किया तथा फिर आगे चल कर आवाज लगाने लगा।

नुकीली दाढ़ी वाले बूढ़े, पर्दों में बन्द ढँकी डोलियों में ठेल कर औरतों को पहुँचा रहे थे। इन गलियों में गाड़ियाँ जाना असम्भव है। और स्त्रियों के लिये पर्दा अत्यन्त आवश्यक। उन बूढ़ों की सुती हुई देह पर छोटी-छोटी मांस पेशियाँ निहायत चमकदार हैं, और वे स्वाभाविक ही झुक गये हैं। अन्दर बैठी हुई स्त्रियाँ या तो दुनियाँ देखने को पर्दे की आड़ से झाँकती हैं या फिर कफ़न में ढंकी सी भीतर ही चुप बैठी रहती हैं। वहीं एक छोटी सी कोठरी थी। नाली के गन्दे किनारे जहाँ जरा खुले से दिखते हैं, और ककिया ईंटों का चूना झड़ गया है, वहाँ एक छोटा सा दरवाजा है जो इस वक्त खुला हुआ है। सीधे करीब तीस

कदम चलने पर सामने गोश्त वाले की दूकान है, जिसकी चिक में से भी गोश्त के बड़े-बड़े टुकड़े दिखाई देते हैं। कभी कभी उसके तेज चाकू से गोश्त को खच खच करके काटने की आवाज भी यहाँ सुनाई देती है।

उस कोठरी की दीवारें, जमीन, और छत सिर्फ काली-काली सी दिखाई देती हैं। जिन पर चलते हुए कीड़े और छिपकली भी सीलन में नहीं दिखते; और उस बदबू में चुपचाप चार आदमी मौजूद हैं। उनके गाल बैठे हुए हैं, और आँखों के चारों तरफ काले-काले गहरे कुण्डल हैं, और सबके कपड़े अत्यन्त मैले कुचैले और बदबूदार हैं, जिनसे कभी कभी बाहर रहते वक्त उन्हें स्वयं सड़ांध आती है।

लेट जा, नूरबख्श, तू भी लेट जा', तीन आदमियों ने अपनी अपनी जगह सँभालते हुए कहा। अब जमीन पर एक चटाई बिछ गई थी। मुक्खू चिलम में फूंक मार कर उसे सुलगाने में व्यस्त था। उसे किसी का भी ध्यान नहीं था।

'हाँ, हाँ, बे क्या सोच रिया है?' कह कर करीमा ने नूरबख्श की गर्दन में अपनी टांगों की कैंची डाल दी और नूरा के बावजूद 'ठहर-ठहर, सुनबे,' कहते रहने पर भी उसे प्रायः इतना झुका दिया कि उसका माथा जमीन से लग गया। सब ठहाका मार कर हँसे। 'अबे लेट भी जा' का समवेत स्वर उठा। आखिर नूरबख्श भी लेट गए।

'तू आखिर किस खब्त में डूब रिया है?' हमदर्द फूफी ने पूछा। और जवाब न मिलने पर स्वयं बोला :—'बेटे!' और बांये हाथ से घुटने पर तबला बजाते हुए हिल हिल कर चिल्लाने लगा—डूबे है बे, डूबी है बे......

उसके बाद दम लगने लगे। चिलम से एक लम्बी झपट सी निकल जाती जैसे सांप की जीभ कभी-कभी लहरा जाती। और अंधेरे में उसकी एक अजीब सी चमक होती, जैसे अन्धेरा ही एक बहुत बड़ा

कीड़ा था, जो इस छोटी सी कांतर को भी सहज ही निगल जाता था। निर्भय चाट जाता था।

धुंआ अब उठने लगा, उठ कर फैलने लगा, फैल कर भरने लगा और इसके बाद घना होकर घुटने लगा, जिस से कोठरी की सील भरी हवा एक बार कुछ पिचकी और फिर धुएं को कंधों पर रख कर धीरे-धीरे कोठरी के दरवाजे से निकल कर बाहर सरकने लगी।

पेट से निकली हवा का गन्दा और बदबूदार शब्द तथा गन्ध का व्यापार अब कोठरी में दिखने लगा था। चंडू पीने वालों को उन्टा लेट कर पीना पड़ता है, क्योंकि उस मादक द्रव्य से पेट में हवा बहुत पैदा होती है जो इस तरह अङ्ग शिथिल करके लेट जाने से अपने आप निकलती रहती है। उस गंदगी में चिलम बारी-बारी से हाथों में चल रही थी और वे सूखे हाथ उसे मस्ती से थाम लेते और मुँह झुकाकर दम खींचते और फिर एक खांसी उठती, अजीब, भयानक, कातिल, जैसे जिगर पर कीलदार जूने की ठोकर पड़ी हो, या अंजर पंजर को ऐसे झकझोर दिया गया हो, जैसे बिल्ली छिछड़े को झिंझोड़ देती है। और देखते ही देखते उनके चेहरे विकृत हो गये। पुतलियों पर भारी तकियों की तरह पलकें ऊपर नीचे सरकने लगीं।

और कई-कई सालों का यह अड्डा इसी प्रकार चलता रहा है। इसमें नये मेम्बरों की कभी कमी नहीं पड़ती जैसे यह चाही जमीन है जिसका पट्टे पर उठ जाना कोई अचरज की बात नहीं।

जब चारों आदमी अपने आप को भूल गये उस समय कोठरी के द्वार पर एक छाया दिखाई दी। किसी ने भी उधर नहीं देखा। बाहर वाले को देखने में और भी अधिक कठिनाई थी क्योंकि कोठरी के द्वार पर धुंआ ऐसा झूल रहा था, जैसे मसहरी का टुकड़ा लटका दिया गया हो। आने वाले की लम्बी छंटी हुई दाढ़ी, उसके खोखल गले तक पहुँचती थी। शरीर पर एक अधमैली अचकन, जो किसी ईद पर जरूर

ही आस्मानी रंग की रही होगी, मगर अब घुल घुल कर, मैले गधे की खाल के रंग की हो चुकी है। उसकी आस्तीन, कुहनियों तथा गर्दन पर एक चीकट है जो अब फैलती जा रही है। सिर के बाल पीछे से पठानी पट्टों की तरह कटे हुए हैं और उन पर मेंहदी का बहुतायत से प्रयोग किया गया है।

वे ठिठक गये। उनके हाथ की छड़ी अपने आप ही उठ कर उस कोठरी की देहलीज पर टिक गई। भीतर का धुंधलका अब आँखों को साफ होने लगा था। उन्होंने तनिक भर वेदना से देखा और फिर वे कह उठे—'अबे मरदूदो! सुबह-सुबह यह क्या शुरू कर दिया आज?'

'कोई बात है खां साहब?' किसी ने पूछा।

'नहीं भजा कहां! लेकिन देखो, सालों की सेहत तो देखो। बत्तीसी निकल आई है, जैसे कीलें ही कीलें छोड़ कर जूते की पूरी ऐड़ी घिस गई हो।'

और तभी एक मोटी औरत, रंग काला—बेंगन के से हाथ, चपटी नाक, जिसमें बुलाक झूलता हुआ, मुँह में पान का मोटा बीड़ा चबाती हुई बढ़ आई। वह एक मलेशिया की साड़ी और जम्फर पहने थी। उसके बाल गटापार्चे की बड़ी कंघी नुमा पिन से उसके कानों पर चिपके हुए ऊपर की तरफ घुमा दिये गये थे।

वह कुछ देर चुपचाप खां साहब की बात सुनती हुई उन चंडूबाजों को देखती रही। फिर जैसे उसे दया आगई। उसने निराशा से विह्वल होकर कहा—'अये, इन्हें देखो न मुए, ये दुनियाँ में किस लायक लोग हैं! न घर के, न घाट के।'

उसने निराशा से सिर हिलाया, जैसे उसने नाली में कीचड़ सने हुए चार बेहोशनुमा कुत्तों को देखा जो ऐसे सांस ले रहे थे जैसे वे दम तोड़ रहे हों।

'सारा बदन छीदा गया, अये ख्वां जरी देखो इन्हें समझा दो न?'

'तुम्हीं न कहो बड़ी बी', किसी मसखरे ने कहा—'तुम्हें पराये मर्दों से बात करते लाज आती है, तो अपने आदमी को भेज दो।'

'पांच सेर नाज तो बड़ी बी तुम्हारी पीठ पर सुखाया जा सकता है······ ···।'

और फिर उनके मुटापे को चिढ़ाते हुए स्वरों ने मिल कर अट्टहास किया।

पास बैठा हिजड़ा जो छोटे खटोले पर बैठा बकता हुआ बाल काढ रहा था, चौंक गया। उसने कहा—अरी बहिन! तुझे लोग छेड़े हैं! तू काहे को मरों में जा बैठी। अपनी इज्जत अपने पास, पराये मरदों के पास जाते तुझे सरम ना लगी! हाय सहेली······और वह हाथ मटकाने लगा।

मोटी तवायफ ने खोंखिया कर कहा—चुप रह हरामजादे! तू मेरी सहेली बन बैठा। जनखे!

सब बहुत खुश हुए। चारों ओर का वातावरण गूँजने लगा।

हिजड़ा—'अये हये, तू कटखंरी हो गई है, तुझे खुदा समझेगा,' कह कर फिर अपने बाल काढने लगा मगर उसका बदन फड़कता हुआ लचकता ही रहा।

'अपना क्या बिगड़ गया?' किसी ने कहा। 'शुक्र करो, जिंदा लौट आये।'

'कौन है कौन? खां साहब ने कहा।

'आये जाते हैं। अब देखिये आप भी।' उत्तर फिर डूब गया। चंडूबाजों की कोठरी का द्वार फिर खुल गया। शायद फिर वह अन्दर घुसने से डरने लगी।

इसी समय एक आदमी भीतर घुसा। कोठरी में नहीं। गली में जो खुद एक घर के मानिन्द थी। सब लोगों में हलचल व्याप्त हो गई। अस्सलामालेकुम, आलेकुम अस्सालाम, का घातप्रतिघात करता

शब्द, और एक ओर अचरज, दूसरी ओर थकान, एक उठते चिराग की निकली हुई बत्ती की तरह रोशनी की भीख के लिए फैला हुआ हाथ, दूसरा गुल करके अन्धेरे में छिपे रहने का खामोश अन्दाज······

इस शोर को सुनकर चंडूशजो में से एक ने कहा—'साला लौट आया, पाकिस्तान गया था। भूखा मरा होगा। भाग आया।'

नूरबख्श की आवाज घिरघिरी हो गई थी। उसने सोच कर कहा—तो क्या है ? आ जाने दो, फिर लौट जायेगा।'

बहुत अक्ल से कहा गया था—'बे पेंदी के कुल्लड़ हैं म्यां।'

इस बात को सबने निःविरोध स्वीकार कर लिया। उसके बाद इस विषय पर कोई बातचीत नहीं की गई।

'हाँ बे, नूरा, कैसा चल बे।'

'ठेर, जरा, दम मार लूँ।' इसके बाद दम मार कर वह कुछ देर चुपचाप पड़ा रहा फिर कहने लगा—बेगम साहिबा ने फर्माया कि अगर संगमर्मर के हौज बनवाये जायेंगे, तब तो नंगे पैर चलना ही मुश्किल हो जायेगा।

'क्यों यार?' ऐसा लगा जैसे धुएँ ने ही यह सवाल पूछा था।

'अबे उनका पैर छिल जाता······'

वे हँसे, फिर पेट से हवा निकलने लगी। वीभत्स। गंदी। पर अब थोड़ी देर के लिए वीराने का सा मनहूस समा छा गया।

बाहर की नुक्कड़ पर एक ठेले में असू सो रहा था। एकाएक उठ बैठा। मच्छर मारते मारते थक गया था। एक आवाज करती हुई अंगड़ाई ली और छलांग मार कर उठा। और फिर कुछ देर पीठ, पेट, जांघ खुजला कर अंधेरे में कुत्ते की तरह फड़फड़ाया। फिर आगे बढ़ा। सड़कपर जो तख्तेनुमा एक दूकान है जिसकी सतह अब नाली से भी कुछ नीची सी दिखाई देती है। असू वहीं जा बैठा। फिर उसने टांगें फैला कर ऊपर खूंटी पर टंगे मोटे मोटे चीनी के प्याले की ओर देखते

हुए एक अजीब राग से कहा—'बूढ़े, तेरी मैयत मने, जरा, चाय तो पिला दे।

और फिर 'पिला दे' की टेक बना कर उसी सांस में गा उठा—पिलादे, पिलादे, पिलादे साकी! मगर साकीर अपने चीलर बीनने में मग्न था। सो टांग बढ़ा कर पंजों से उस खूसट बुड्ढे की कमोजनुमा पोशाक को खींच कर उसने अपनी ओर उसे आकर्षित किया, जिससे बुड्ढा कुछ कुनमुनाया भी। 'अरे तेरो,' अस्सो ने चिल्ला कर कहा—'साले रकसठ उम्र बीत गई। अब तो चाय पिलादे·······

और फिर पिलादे का संगीत उठा। बूढ़ा उठकर मैली काली केटली को आग पर रख आया, और फिर चीलर बीनने लगा जिससे अस्सो को निहायत बुरा मालूम दिया।

ऊपर बैठा तवायफ मुस्कराई। वह अब अपने दफ्तर में आ बैठा था।

अस्सा को भद्दी भद्दी गालियों का उच्चारण करते सुन कर वह कुछ लजाई। 'हाय' उसने कहा—'क्यों बिचारा को बुराभला कहते हो!

'हूँ हूँ' अस्सो ने कहा—'अब ये बड़े मियां भी, 'बिचारों' में गिने जाने लगे!' 'मर मुए। तेरे मुँह में कीड़े पड़ें।' मोटी औरत ने तमक कर कहा।

'हूँ,' अस्सो ने कहा—'साला! जरा धीरे बोलो वरना जुकाम हो जायेगा समझीं। अपनी दूकान सँभालो। दुनिया से क्या लोगी!'

तवायफ बिगड़ने लगी। दूकान के छज्जे से नीचे नाली के और दीवार के बीच में बैठने वाला, सब्जी वाला किसी बच्चे को सब्जी तोल रहा था। उसने अब कहा :—'क्यों 'बे अस्सो! मरता गया है!'

'चचे! अस्सो मग्न होकर चीख उठा। कमाल कर रहे हो। क्या कहने हैं!'

love Beautiful member of a prostitution Santosh



सब्जीवाला अपने वैसे ही गम्भीर बना रहा और जब उसने गाहक को घूर कर देखा, वह गम्भीर हो गया।

इसी समय एक तांगा रुका। मीर साहब चले आ रहे थे। पतली कमर, हर कदम पर झुक कर आदाब करते हुए वे बढ़े आ रहे थे।

'सलामालेकुम' 'सलामालेकुम' का गम्भीर स्वर चारों ओर से उठा।

वे जवाब देते हुये बढ़ते रहे। उनकी चाल में गौरव था। सब को जवाब देते हुए, सबकी कल्याणकामना स्वीकार करते हुए वे ऐसे बढ़े जैसे सबको आशीर्वाद देते हुए चल रहे हों।

और उनके पीछे दो औरतें चल रही थीं। ऊपर से नीचे तक काला कीमती रेशमी बुर्का। पैरों में मखमली सैंडल थे, जिनमें से उनकी सफेद बर्फानी एड़ियां मात्र दिखती थीं। लेकिन उन्हीं को देखते ही प्रकट होता था कि वे पांव कभी धरती पर नहीं चले, कभी उनमें बिवाई नहीं फटी, ऐसे जैसे फूल की गुलाबी पंखुड़ी हो।

बड़े करखनदार थे खान बहादुर। उनके जूते के व्यापार से बड़े बड़े आलीशान मकान बन गये थे। मीर साहब उनके मुंह लगे मैनेजर थे जो खान बहादुर साहब की लड़कियों को बरेली से चचा साहब की जमींदारी से ला रहे थे। अब ये लड़कियाँ कुछ पढ़ गई हैं, वर्ना क्या मजाल कि इस बड़े खानदान की लड़कियों की कोई एड़ी भी देख पाता। यहीं से पर्दे खिंच जाते। डोली आ जाती। जब वे चले गये, नाच नाच कर हजामत बनाने वाले नाई ने ललकारा—अब्बे ! जिल्दसाजी की अदा, देख कर आता है मन यह भर......

और बेतुकी कविता, बनने लगी। आधी हजामत बन चुकी थी, आधी शेष थी, बायें गाल पर अभी साबुन था, पर गाहक भी खुश होकर हंसने लगा।

और बूढ़े जिल्दसाज निहायत सफाई से तराये। नाई तब सुरीली

आवाज से हाथों पर जमे साबुन और छिले हुए बालों को साफ करने में लगा था। जिल्दसाज बुड्ढे आदमी थे। किताबों के ढेर में अलड़ बैठे थे। आज तक उन्होंने बस एक ही हिन्दुओं का शास्त्र पढ़ा था। इस मौके पर न चूके। एक सांस में वह चुनीदा; नुकीली, अठपहलू, त्रिकोनी गालियां दीं कि जैसे पूरा कोकसास्तर दुहरा गये।

सुनने वालों ने फटकारा।

'दाढी का तो ख्याल रखते।'

'बड़े मियां, रहम करो। आखिर लौंडा है।'

अभी काफी खुशामद के बाद वे चुप हो ही पाये थे कि फिर एक आवाज उठी। अब उधर असगर जो चाय पीकर उठे तो एक बार उन्होंने शेर की तरह देखा, दो बार खम ठोंक कर डकारें लीं और अर्राते हुए गली में दौड़े।

'देखा,' बड़े मियां ने सिर उठाकर कहा—'यह जमाना है।'

नाई ने सिर हिलाकर मस्ती से कहा—'जमाना तो सरकार आपने देखा है। हम क्या जानें!' इसके बाद उसने अपने वाक्यों से दुधारी चोट की जो गंदी होकर भी भलमनसाहत की पहचान थीं।

अभी यह सिलसिला खत्म भी नहीं हुआ था कि चंडूबाजों की आवाजें फिर उठने लगीं—तो बेगम तो जाकर लेट गईं और बांदियों ने उनके फूल से तलवे पर गुलाब का इत्र लगाया। बेगम ने नाक भौं सिकोड़ कर कहा—मुई 'यह क्या बदबू आ रही है!' बांदियां बड़ी घबराईं। कहा—मलका यह तो गुलाब का इत्र है……तब बेगम हँसी और कहा—अरी धीरे, तेरे हाथ से मेरे तलवे छिले जाते हैं……।

और उसी समय उस जराजीर्ण मुहल्ले में कुछ थपेड़ों की तरह बज उठा। लोग उन्हें देखने जो इकट्ठे हो गये, जैसे हवा का एक नया झोंका घुसा और पीले सूखे पत्ते उड़ उड़ कर बिखरने लगे। जैसे सूरज

की एक तेज किरण घुसते ही नाली के कीड़ों में खलबली मच गई। सब चकित होकर देखते रहे। उनको अद्भुत विस्मय ने घेर लिया था।

जुलूस चल रहा था। जूते के कारखानों के मजदूर बढ़ रहे थे। फटे पुराने चेहरे, जरा जीर्ण कपड़े और ऐसा लगता है जैसे इनके चेहरों में वह चमक नहीं जो जाहिर कर सके कि इन्होंने कभी जिन्दगी का कोई ऊंचा दर्जा हासिल किया है जिसे इन्सान की इज्जत कहते हैं। उनकी आवाज ऐसी उठती जैसे पहले चिल्लाने वाला अंकुश सा मारकर उनकी चेतना को घायल कर देता और वे हाथी की चिंघाड़ उठाते। इंकलाब चाहते हैं। वे रियासत नहीं चाहते, वे अपने ईमानी हकों को चाहते हैं जिन्हें लोग अपनी दकियानूसी में ढंक कर खो देना चाहते हैं, उन चन्द लोगों के लिये जो इन्सान को पीस रहे हैं, कुचल रहे हैं······

'अये हये,' तवायफ ने जिल्दसाज की तरफ मुड़कर कहा—'मुआ' तुम्हारा सिद्दीक भी जा रहा है!

जिल्दसाज ने आंखों पर हाथ रख कर देखा। फिर आंखें चुंदा करते हुए देखते रहे।

सब्जीवाले ने कहा—क्या! यह कैसे रंगों में गिरा है लौंडा। इसे रोको वर्ना बुढ़ापा मिट्टी हो जायेगा।

जिल्दसाज का बूढ़ा हृदय भीतर ही भीतर कांप उठा। फिर भी उसने कुछ नहीं कहा। उस जुलूस की धकधकाती चुनौती को सुन कर भीतर ही भीतर सब चौंक उठे। और साथ में सिपाही चल रहे हैं! या अल्लाह, गजब! और इन्हें जरा भी डर नहीं।

पर जुलूस बढ़ रहा था। उमड़ते हुए कदम अब जमने लगे थे। लगता था वे अब उठेंगे तो धरती में गड़ जायेंगे और फिर उन पत्थरों पर बजने लगेंगे। असो ने ललचाई निगाह से देखा। लगा जैसे एक फौज बढ़ी जा रही है। यह फौज इन्सानों की फौज थी। इसे देख कर डर नहीं होता था। कांग्रेस के संकदर शा जुलूसों

में भी जाते झिझक मालूम देती थी। लेकिन यह तो बिल्कुल अपने ही जैसे हैं।

एक बूढ़ी सड़क पर खिसक रही थी। वह बहुत बूढ़ी थी। उसने सारी जिन्दगी प्रायः बिता दी है। फिर भी उत्सुकता से देखने को आगे बढ़ी चली। उसने अपने झुर्रियोंदार चेहरे को ऊपर उठाया और अनबूझ सी देखती रही। अब क्या है ? यह भी सही।

साईं के चेले छज्जे के किनारे हो गये। बदन पर एक लम्बा गेरुआ चोगा सा था। बाये हाथ में कड़ा पहने थे। वे कह उठे—जमाना अजीब होता जा रहा है।

सब ने उनकी बात को समझा। वे लोग जिस हवा के पले थे उसमें यह सचमुच एक बिल्कुल नई चीज थी।

और सिपाही क्यों थे ? क्योंकि यह लोग अमन के दुश्मन हैं। क्या यह लोग लुटेरे हैं।

'अरे बाप रे !' सब्जीवाले ने कहा—ये लौंडे क्या चक्की पिसवाना चाहते हैं ? हमने भी गरीबी देखी है, पर कभी अमन में खतरा नहीं डाला। न कभी सिपाही हमारे साथ घूमे। देखा तुमने ?' उसने दोनों हाथ फैला कर कहा—'जानते हो ? सिपाही किनके साथ चलता है ?' फिर कहा—'सिपाही उनके साथ चलता है, जो चोर हों, डाकू हों, वरना क्या जरूरत है ?'

किसी के पास उत्तर न था।

फिर वही खामोशी का आलम लौटने लगा। सड़क पर से जो हिजड़ा भाग गया था लौट आया। उसने ऊपर देख कर कहा—'अये सहेली। ये क्या था ?

'मुये, रहजनी करने चले हैं। दुनिया में अब लोग एक दूसरे को देख भी नहीं सकते।' तवायफ ने उत्तर दिया।

तर्क ठीक था।

'किस्मत, जूटा भी उठा दिये ?' टिन्डे ने पूछा।

उसके बाद फिर नाई की हजामत खत्म हो गई थी। वह फिर नाचा फिर चिल्लाया। बूढ़े जिल्दसाज ने फिर उसे पहले से भी खूबी गालियाँ सुनाईं; तवायफ ने फिर लिहाज और शर्म की दुहाई दी, सब्जी वाले ने उसकी बात को दाद दी, अस्सो फिर जाकर ठेल में सो रहा, पर चंडूबाजों का किस्सा अभी तक चल रहा था। तब बेगम के बालों में कंघी की जाने लगी। अये मुई, बेगम ने कहा—यह कंघा बड़ा कंटीला है। तब बांदी ने जवाब दिया—कंघा तो रेशम का हो नहीं सकता ·····रेशम का हो तो बालों की उलझन कैसे दूर हो, सफाई कैसे रहे·········

चिलम का धुंआ उतर रहा था। हवा निकलने लगी। धुंधलका गहरा हो चला क्योंकि सूरज सिर पर आगया था। और किस्सा चल रहा था—कंघा तो कड़ा ही चाहिये जो सफाई करे, और तब बेगम इसका कुछ भी जवाब न दे सकी। बांदी ने फिर कहा—बालों में न जाने कितने जूंए, और ऐसे ही कीड़े घुस कर खून पीने लगते हैं······

# अंधेर नगरी चौपट राजा

१

रात की अँधियारी नहीं; स्वयं अंधेर नगरी। दिन का उजाला, चौपट राजा।

मैं थैला लिये स्टेशन की ओर चल दिया। रेलों का कुछ ठीक नहीं है। जल्दी भी आ सकती है, देर में भी, सरकार खुद जिम्मेदारी नहीं लेती।

बकरी क्यों मर गई ?

सरकार, दीवाल उस पर गिर पड़ी।

अच्छा दीवाल को हाज़िर करो।

मैंने परेशान होकर इधर-उधर देखा। एक इक्का नीम की छाया के सामने धूप में खड़ा था। इक्केवाला मुझे देखकर समझ गया। घोड़े के सामने पड़ी घास को समेटने लगा।

'कहाँ जायेंगे ?' मेरी बदहवास हालत को देखकर इक्केवाला भुनभुनाया।

'राजामंडी।' मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'बारह आने होंगे।' उसने उधर देखते हुए कहा जहाँ उसके देखने योग्य कोई चीज़ नहीं थी। बला का आदमी है।

मैंने कहा—मैंने मना किया है ? चना एक सेर का होगा, गेहूँ होगा ही नहीं......

इक्केवाला हँसा। बोला—'आप तो जानते ही हैं। बैठिए।'

मैं बैठ गया। इक्केवाले ने एक बार चाबुक झूल देकर घुमाई। इक्का दौड़ चला।

इसके बाद वही झूल, वही दचक। आसमान में कुछ विदेशी हवाई जहाज़ में उड़े जा रहे हैं। जहाज़ों की घर्र-घर्र जैसे भारत के आकाश को जगा देना चाहती है। कितना व्योम है, कितना उन्मत्त प्रसार है। विदेशी पूंजीवाद की यह मक्खी भारत की मिठाई पर बैठकर अपनी ज़हरीली टांगों से विष फैलाने उड़ रही है। राह में अनेक प्रकार के लोग हैं। मैं देखता हूँ। वह जो फौजी अफ़सर सर्राती मोटर में भागते चले जा रहे हैं, और ईंटों से लदी वह बैलगाड़ी।

इक्केवाले की एक अजीब तरह की आवाज़ जिसका अंत एक अस्पष्ट सी गाली और फिर एक गीत की गुनगुनाहट······

अँखियाँ मिला के······

और फिर घूमते पहिये में चाबुक की लकड़ी की खड़खड़ाहट।

मैं ऊब उठा।

सड़क पर उस बंगले के मैदान में भीड़ लग रही है। वह बँगला नहीं है, कोई सरकारी दफ्तर है शायद। चुनाव का ज्वार चढ़ रहा है।

इक्केवाले ने हँसकर कहा—'बाबू! आज चुनाव है। देखा सालों को! पी-पीकर वोट देने आये हैं।'

'किसने पिलाई है?' मैंने चौंककर पूछा।

'वोट लेनेवालों ने।'

'कौन हैं वे?

'यह तो नहीं पूछा सरकार', 'इक्केवाला' कह रहा है—'अच्छा है, ऐसे मौके कम आते हैं। नीच जात साले...।' वह चुप होकर मुझे देखने लगा। नीरवता। इक्केवाले ने फिर कहा—'बाबू! आजकल तो अंगरेज लंदन से आये हुए हैं।'

मैं कुछ तैयार हुआ। कहा—'हाँ, आये तो हैं।'

'कहते हैं वहाँ के मज़दूर हैं।

'हाँ', मैंने कहा—इनमें से कई थे।

'शाबाश' इक्केवाले ने हँसकर कहा—'शाबाश रे विलायत। तेरे तो मज़दूर भी हमारे राजाओं की टक्कर के हैं······।'

मैं उसी हँसी के विक्षोभ से व्याकुल हो उठा। लगा जैसे किसी ने पसली में फौजी जूता पहनकर ठोकर मार दी और हड्डी अपने सारे बल प्रयोग के बावजूद चढ करके चटख गई।

'क्या मिलेगा बाबू!' फिर वही प्रश्न गूँज उठा और इक्केवाला हँसा। उसके पिचके गाल कुछ अजीब तरह की लकीरों से चित्रित-सा फूले तो नहीं, खिंच गये, जैसे किसी ने उन्हें नोंच लिया हो।

लेकिन गति में तीव्रता नहीं। कोई मशीन नहीं है। धीरे हो, जल्दी, हो, मंजिल तक ले जाने वाला भी अपनी जान रखता है। उसे भी अत्याचार की सीमा मालूम है, वह भी कभी हरी घास दिखाकर छला जा सकता है, लेकिन मौत के कगारे पर खड़ा होकर वह कभी उस अनन्त में छलांग नहीं मार सकता जिसकी प्राप्ति का अर्थ जीवन से हाथ धो लेना है। स्टेशन पर पहुँचते ही देखा कि दोपहर की उस धूप में एक वह हलचल है जो हलचल और खामोशी दोनों की अनबूझ-सी कशमकश है जिसमें कोई अपनापन नहीं, क्योंकि यात्रा करने को निकला हुआ इंसान आज भी अपने साथ बैठे हुए से उतना ही डरता है जितने उसके बाबा ठगों से डरते होंगे। काश! काश इसके हाथ में एक छुरा होता तो शायद अपने आपको यह कहीं अधिक अशक्त समझता क्योंकि लोहे की धार से गला काटने में उतना कष्ट नहीं होता जितनी विभत्सता गला घोंटकर मारने में हो सकती है। इक्केवाला छूट गया है। मैं टिकट लेने खड़ा हूँ। एक टिकट······

बाबू ने नीरस स्वर से कहा—बुकिंग बन्द है।

'लेकिन मेरा जाना जरूरी है।' मैंने हठात् अनजाने उसपर जोर दिया। जैसे मेरी जरूरत का उसपर भी कुछ असर अवश्य हो सकता है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अपनी मजबूरी दिखाकर शायद मैं उसके दिल में दया की वह भीख देने की इन्सानियत का चुड़ैल जगा सकता हूँ जिसके लिए सारी दुनिया जीभ लटकाये कुत्ते की तरह हाँफ रही है। कुछ समझ में नहीं आया। इधर-उधर टहलने लगा। इतने में देखा खुसरो साहब चले आ रहे हैं।

सिर पर टोपी, बदन पर फौज से उड़ाकर छोटा करवाया हुआ ऊनी खाकी कोट, पतलून। देखकर ही लगता है कोई मजदूरों में काम करने वाला राजनीतिक कार्यकर्ता है।

'कहो' उन्होंने तपाक से कहा—'जा रहे हो कहीं?'

सुना। मुस्कराये। उन आँखों में स्नेह है। लेकिन उस स्नेह की नीरसता कितनी भयानक वेदना है जो छूती है, लेकिन स्पर्श का रस अनुभव करके भी जैसे उसे स्वीकार नहीं करना चाहती, क्योंकि वह अपना अपमान समझती है। और मैं सामने खड़ा हूँ। जिस व्यक्तित्व को जुटाकर मैं आज अपनों के सामने सिर झुकाना सीख गया हूँ वह भी केवल अविश्वास है!

उन्होंने कहा, अमाँ हटाओ भी। चलो हमारे साथ राजामंडी से कैण्ट। वहाँ देखा जायगा।

फिर प्लेटफार्म पर इधर उधर, फिर गाड़ी, नितांत खाली।

खुसरो साहब लपककर बैठ गये हैं। मैं भी। उनके पास टिकट नहीं है। वह रेल के मजदूरों की यूनियन में काम करते हैं। सारे बाबू उन्हें जानते हैं और खुसरो के टिकट खरीदने पर बुरा मानते हैं। हम लोग इधर-उधर की बातें करते रहे। पांच-सात मिनट का रास्ता, एक बात शुरू की, खतम होने के पहले ही सुना—पान बीड़ी सिगरेट...

कैण्ट की रौनक। और हम जो सड़े-घुसे मुहल्लों में रहते हैं। क्या

यही काफी नहीं है बता देने को कि उनमें हममें क्या फर्क है ? मुझे उस अंगरेज लड़की की याद आ रही है जिसने फर्स्ट क्लास के डिब्बे के दरवाजे पर खड़े-खड़े मुझे अपने नौकर के साथ बगल के नौकरों के डिब्बे से एक बार उतरते हुए देखकर एक बार विस्मय से, फिर उपेक्षा से, फिर दया से देखा था और उसकी दृष्टि अपने बालों वाले झबरे कुत्ते पर स्नेह से टिक गई थी।

मैं किससे कहूँ कि मैं कुत्ता नहीं हूँ। लेकिन मेरे साथियों की कमी नहीं। बस एक फर्क है। हम लोग चिल्लाते हैं तब भूँकते नहीं, हमेशा उसमें एक सर्द आह हो न हो, पुकार जरूर होती है।

'लाओ टिकट ला दूं', खुसरो ने चलते-चलते रुक-कर कहा—'देखना आज। कुछ हमारा भी रुआब है या नहीं।'

मैंने रुपये दे दिये। और उनकी ओर देखा। वह कुछ सेवा के गर्व से झुके खड़े थे, जैसे यह तो कुछ नहीं।

'अभी आया' कहकर खुसरो साहब नोट लेकर भीतर चले गये।

मैं बाहर टहलता रहा। दीवारों पर रंगीन बड़ी-बड़ी तस्वीरें हैं। उनमें कपड़े की मिलों के विज्ञापन हैं। कला की दृष्टि से वे चित्र भले ही अच्छे न हों किन्तु रंग उनके अवश्य अच्छे हैं। और वे सरकारी एलान—सफर कम करो...क्यू बनाना...सीखो...

सल्तनत ने हमें तमीज सिखाने की पूरी कोशिश की है। खुसरो के जूतों की खटखट आवाज आई। लौटकर मेरे हाथ में टिकट देते हुए कहा, 'कहता था बुकिंग बंद है। लेकिन आपकी खातिर दिये देता हूँ। कोई कहे तो कह देना दस बजे से पहले ही ले लिया था।'

फिर कुछ नहीं। प्लेटफार्म। मैं और खुसरो। कुछ शहर के मजदूरों की हड़ताल की बातें। वक्त नाजुक है। और शायद एक भयानक आँधी आने वाली है। ऐसा न हो कि हम तिनका बने उड़ जायें। लेकिन

शायद यह नहीं हो सकेगा। क्योंकि हमारे दोनों पाँव फौलाद के हैं जो धरती में गड़े हुए हैं जिन्हें कोई नहीं उखाड़ सकता—वे गन्दे मजदूर, वे भूखे किसान।

हवा चल रही है। खुसरो के माथे पर शिकन है। मैं भी गम्भीर हूँ। व्यक्ति का कोलाहल आज समूह की इस भीषण नीरवता में कितना कर्णकटु रोदन बन सकता है; लेकिन यह रोने की आवाज भी अपने पहलू पर बड़ी से बड़ी चट्टान को हिला देने वाली गूँज है।

बातें करते-करते हम लोग रेल की पटरियों को पार करने लगे। पटरियाँ धूप में कहीं चमकती हैं। कहीं रुपहली रंग की-साँपिन-सी, जो गड़ी हैं लेकिन लगता है कि वह भाग रही है क्योंकि आँखें उनके चिकनेपन पर फिसल रही हैं...

तमाम भूमि पर कोयले का कालापन है। एक मालगाड़ी का अकेला डिब्बा, उसके नीचे कुछ काली कीचड़ है। और यहाँ की हवा भी काली है। साँस के साथ धूएँ की हवा है।

हम लोग पटरियों को पार करके मजदूरों के क्वार्टर्स की तरफ आ गये थे।

कुछ लोग बैठे ताश खेल रहे थे। वे सब भूले हुए हैं। दो के सिर पर रूमाल बँधे हैं। एक ने जरा ऊँची आवाज में कहा, अट्ठा।

फिर कुछ शोर। फिर वही खेल। किसी को भी हमारी ओर देखने की फुर्सत तक नहीं। होंगे कोई जो चले जायेंगे। जमीन पर वे उकड़ूँ बैठे हैं। और पेड़ की छाया कभी उनके सिर पर नाचती है, कभी पीठों पर। वह सब वहीं के रहने वाले हैं।

ओट में एक छोटा रास्ता पार किया। खुसरो ने झुककर बाईं तरफ देखा और मैं साथ जा खड़ा हुआ। एक छोटा-सा क्वार्टर। दरवाजे पर एक मैला फटा पर्दा पड़ा हुआ। दीवार पर कुछ लिखा है उर्दू में।

खुसरो ने द्वार पर खड़े होकर आवाज दी—'खान !'

'अरे भई, खान !'

'कौन है ?' भीतर से एक नाक में से गूँजती हुई आवाज आई। 'भीतर आ जाइए।'

खुसरो भीतर घुसा। पर्दा हटाकर मैं भी। छोटा-सा आँगन है, फिर एक छोटा-सा ही बराम्दा, जिसमें एक मेज पड़ी है, एक अंगीठी रखी है, इस समय वह बुझ गई है। और फिर वह छोटा-सा कमरा, पीछे की तरफ खिड़की, जंगले, और जँगलों के ऊपर जाली।

देखा। एक व्यक्ति कपड़ों को सहेजकर एक ओर खाट पर रख रहा था। मैंने देखी—एक नम्रता, और खान मुस्करा रहा था। वह एक अधेड़ आदमी है लेकिन उसका शरीर नौजवानों का-सा छरहरा है। वह एक जरसी पहने है, एक खाकी पाजामा। सिर के बाल तेल डालकर कढ़े हुए। उसके दाँत होते हुए भी लगता है कि दाँत नहीं हैं।

'चलिएगा ?' खुसरो ने कहा—'आज मिल आया जाये ?'

'मैं जरा' खान ने नाक में से बोलते हुए कहा—'अपना राशन ले आऊँ। वर्ना पड़ौसों झगड़े फिर लगेंगे।'

खुसरो ने कहा—'कितनी देर लगेगी ?'

'यही कोई एक आध घंटा', 'खान ने फिर कहा—'बात यह है वह तोलने में गड़बड़ कर देता है। रिपोर्ट करो, कोई सुनता ही नहीं।'

कितनी साधारण हो गई है आज जिन्दगी में घंसखोरी। हममें से कोई भी उसे अनुभव ही नहीं करता। जैसे यह ही तो एक नियम है। जो इसे नहीं जानता वह नितान्त मूर्ख है।

'तो', खुसरो ने कहा—'मैं चलता हूँ। घंटे भर बाद... !'

'मैं वहीं प्लेटफार्म पर मिलूँगा आप से', खान ने वाक्य पूरा किया।

रेलवे ने यह गरीब आदमियों के क्वार्टर बना दिए हैं। हम फिर पटरियों पर चलने लगे।

खुसरो सुनाने लगा—'इस आदमी की कहानी भी बड़ी मज़ेदार है।'

मेरे कान खड़े हुये। जिस तरह सेठ अपने गाहक को तुरत ताड़कर बनाये रखना चाहता है वही हालत किस्से-कहानियों के बारे में मेरी है।,

मैंने कहा—'क्यों? क्या हुआ?'

खुसरो ने कहा—'यह काश्मीरी है। यहाँ वाच एण्ड वार्ड देख-रेख और चौकीदारी में नौकर है। सामान आता है, बड़ी-बड़ी बिल्टियाँ, छोटी-छोटी चीजें सब ही पर इसकी ड्यूटी लगती है, तो एक बार ऐसा हुआ...।'

हम चलते जा रहे हैं। मैं सुन रहा हूँ। दूर कोई रेल के पहले स्टेशन छोड़ने पर घंटी बजा रहा है, या कोई और बात है लेकिन सीटी भी सुनाई दे रही है और खुसरो कह रहा है—कि एक बात बता दूँ यह मुसलमान है।

मैं हँसा।

'खान हिंदू भी होते हैं?' मैंने हँसकर ही पूछा।

'नहीं' खुसरो ने कहा—'मैं भूल गया।' लेकिन वास्तव में उसने भूल नहीं की है। ज़ालिम चंगेज़ ख़ान था, मगर मुसलमान नहीं।

मैंने कहा—'फिर?'

खुसरो ने कहा—'यह कभी रिश्वत नहीं लेता, इसलिए इसके अफ़सर और साथी इससे बेहद नाराज़ रहते थे। बात यह कि जिस घर में शैतान खुदा की आँख देखता है—मसल मशहूर है फिर वह चैन की साँस नहीं लेता। रिश्वत, थाना हो दफ्तर हो रिश्वती हमेशा उसे बाँटकर खाते हैं। अब एक आदमी ऐसा हो जो कहे मैं गुनाह नहीं करूँगा और ज़माना कहता हो कि जिसे तू गुनाह कहता है वही हमारा

सब से बड़ा फायदा है, पुण्य है। पूछिए तो कहेंगे कि हमारे इतने बड़े-बड़े घर हैं, बच्चे हैं, तनख्वाह से क्या पेट भरता है? सब लेते हैं, हम भी लेते हैं।'

'एक मुसलमान जो इसके पहले ड्यूटी पर था उसने कुछ माल उड़ाया। खान ने उसे पकड़ लिया। उसका नाम था रशीद।'

'रशीद ने कहा—अबे उल्लू हुआ है? देखता नहीं, किसी हिंदू का माल है। उड़ने दे साले को। थोड़ा-सा तू भी ले लीजो।'

'लेकिन खान ने कान पर जूँ भी नहीं रेंगी। उसने कहा—'जिसके पास नहीं है वह चोरी करे तो कहेंगे पेट की पुकार है। यह तो बहुत बुरी बात है।'

खुसरो ने कहा—'सच है कि वह माल जिस सेठ का है, वह सब से बड़ा चोर है, यह सरकार भी चोर है, मजदूर भी चोर है, मैं इस सब पर न आकर सिर्फ खान की बात बताता हूँ।

'और खान ने उसे पकड़ लिया। उसकी रिपोर्ट कर दी। हिंदू अफ़सर था। जाकर सब कहा। लेकिन अफ़सर विचलित नहीं हुआ। सुनकर चुप हो गया।'

'इसके बाद', खुसरो की आवाज़ एकाएक गरज उठी। 'एक दिन खान पर जुर्म लगाया गया। उसे दो महीने से आज नौकरी से अलग कर दिया गया है।'

मैंने कहा—'यह कैसे?'

खुसरो ने कहा—'हिंदू अफ़सर ने देखा कि यह शख्स जो आज अपने मज़हब को भूल कर अपनी बात का इतना पक्का है वह आगे चलकर ज़रूर खतरनाक साबित होगा। कोई राजा उस सिपाही को पसन्द नहीं करता जो तलवार की धार अपनी उँगली काट कर आज़माता है।

'उसने रशीद को बुलाया। कहा—रशीद! खान ने तुम्हारी रिपोर्ट की है।

'रशीद सिर झुकाए खड़ा रहा। उसने कहा—हुजूर! मैंने कोई नई बात नहीं की। मगर हम लोग आपस में ही लड़ेंगे तो काम नहीं चल सकता। मैंने कभी आपकी खिदमत से इन्कार किया हो तो आज जो सजा मुझे दिलायें, मैं उसके लिए तैयार हूँ। और हुजूर, अगर मैं अकेला कुसूरवार हूँ और आप लोग यही समझते हैं तो भले ही मेरी बीबी, मेरे बच्चे भूखे मर जायं मुझे कोई उज्र नहीं। घड़ा एक है। ऊपर भी तेल है, नीचे भी और बीच में भी तेल के अलावा कुछ और नहीं। कहीं से भी चटक जाये, ऊपर, नीचे, बीच का भेद नहीं रहेगा। जो निकलेगा, वह सिर्फ तेल ही होगा—तेल चीकट, गंदा, जो चिपक जाये और फिर उसपर धूल जमते कुछ देर नहीं लगती।

'बाबू समझ गया। उसने कहा—एक काम करो। रिपोर्ट करो कि खान ने तुम्हें ड्यूटी में चोरी करने को उकसाया। तुमने मना किया, लेकिन उसने कहा कि वह खुद उसमें से कुछ रुपया खाना चाहता था। और तुम उसकी बातों में आ गये। तुमने चोरी की और खान ने तुम्हें मदद दी। लेकिन बाद में जब खान ने देखा कि मामला पकड़ा है और अब वह खुद फँसने वाला है तो उसने अपनी बचत करने के लिए रिश्वत लेने के बावजूद तुम्हें पकड़वा दिया।

'और यही हुआ। खान पर केस चलाया गया। खान बाबू के पास गया। सब बातें बताईं, लेकिन बाबू कोई ठलुआ नेता न था कि हिंदू मुसलिम सवाल सुनकर चौंक उठता। हिंदू चाय हो, मुस्लिम चाय हो, चाय एक ही है। चांदी का हिंदू का माल है, चांदी का मुसलमान का। सिक्का चांदी का ही जो कहलाता है। चाहे उसमें चांदी नहीं ही हो, क्योंकि उसपर वॉरनहेस्टिंग्ज के एक वंशधर की शकल काट कर मढ़ दी गई है। और पेट में हिंदू पच गया है, पेट में

मुसलमान जज़्ब हो गया है, क्योंकि ईमान की नफ़रत नहीं, बेईमानी और झूठ के खुदा ने इंसान को टके-सेर खाजा कर दिया है।

'ख़ान कहकर चुप हो रहा। बाबू ने कहा—ख़ान! तुम यह बातें करते हो जो इस दुनिया के लोग करने पर सीधे कहलाएंगे। यानी साफ़ लफ़्ज़ों में बेवकूफ़ कहलाएंगे। मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकता। रेल के बाबू सब की डाँट खाते हैं। कोई कहे मैं नौकरी करता हूँ, इज़्ज़त नहीं बेचता, यह मैं कैसे मान सकता हूँ! तुम इतनी सी तनख्वाह पाते हो, और बात करते हो जैसे कहीं के बहुत बड़े नवाब हो!

'ख़ान कुछ नहीं कह सकता क्योंकि बाबू का आदर्श नवाब है। वह उसे शरीफ़ समझता है। एक हरामज़ादे को वह खुदा की शान समझता है क्योंकि शायद उसका भगवान भी एक हराम की सरमायेदारी है जैसे गोरे बादशाहों की सल्तनत की अमानत का झूठा घमंड और ख़ान निकाल दिया गया है।'

खुसरो ने एक लम्बी सांस ली और कहा—'कौन-सी इंसानियत है जिसको यह लोग बचा सकेंगे! कहाँ है वह शराफ़त जिसके इतने ढोल पीट-पीटकर कानों को बहरा किया जा रहा है!'

'लेकिन', उसने दृढ़ स्वर से कहा—'यह ज़ुल्म हमारे इम्तहान ही नहीं, हमारी ताक़त के सामने क़ातिल के लड़खड़ाते हुए पैर हैं जिसमें यह सारा निज़ाम ही गन्दा है। जिसमें अंदर से इंसान की आवाज़ नहीं आती, लगता है बाड़े में बंद सुअरों की गन्दी आवाज़ें हैं।'

मैंने देखा उस दुबले-पतले युवक के होंठ काँप उठे थे। किन्तु वह फिर शांत हो गया। उसकी शांति एक ठंडी नफ़रत है, एक क़ाबू किया गया गुस्सा है जो फटेगा तो सैकड़ों करोड़ों हुंकारों के प्रचंड आघात से सत्ताधारियों के सिर से ताज उड़ने लगेंगे जैसे लोहे के हथौड़े की भयानक चोट से पत्थर के टुकड़े टूट टूटकर खंड-खंड होकर आसमान में उड़ उड़कर छितर कर बिखर जाते हैं, और लोहे की हर मार पर लोहा

और गर्म होता है और फिर हर चोट पर लोहे में से आग निकलने लगती है।

'खान का मिज़ाज हिंदुस्तान की सभ्यता का सवाल है, तहज़ीब का सवाल है। उसे बचाने के लिए सब कुछ करना है।' उसकी आवाज़ कठोर हो गई थी। मैं सुनता रहा।

प्लेटफ़ार्म पास आ गया है। हम लोग फिर हलचल के बीच में हैं। कुछ बच्चे बैठे शोर कर रहे हैं। उनको क्या मालूम कि उनके सिर पर क्या तबाही के बादल छाए हुए हैं। उनके निर्दोष अहं के ऊपर डंक उठाए कैसे काला बिच्छू उन्हें काट लेने के लिये दम साध रहा है! उनके खेल के ऊपर जीवन की कितनी कीचड़ भविष्य बनकर जमती जा रही है।

खुसरो चला गया है। लोग कहते हैं वह गद्दार है। क्योंकि वह रिश्वतखोरों से नफ़रत करता है क्योंकि वह चन्द बदमाशों को कीड़े की तरह मसल देना चाहता है जो लाखों करोड़ों को फँसाने के लिए जाला तानकर मकड़ी की तरह बीच में बैठकर कह रहे हैं—मेरी प्यारी मक्खी! कभी हमारे घर क्यों नहीं आतीं! और जब खुसरो उस जाले को फाड़ देना चाहता है उन्हें कुचल देना चाहता है, मुँह से ज़हर उगलते हुए वे कहते हैं आस्मान को सिर पर उठाने लगते हैं कि देखो यह हमारा घर बरबाद करता है, यह गद्दार है, यह बदमाश है...

मैं घूम रहा हूँ। गाड़ी आने में अभी देर है। पुराने ज़माने की रेलें कहते हैं मुसाफ़िरों के लिए थीं, अब मैं देखता हूँ कि मुसाफ़िर रेलों के लिए हैं। इन रेलों में कोयला ही नहीं झोंका जाता, बल्कि वर्दी पहने हुए आदमी भी। इधर लम्बे लोहे के ढांचे पर काफ़ी ऊँचाई पर शीशा लाल जगमगाती चांदी की तरह धूप में चमक रहा है। रात को यह बत्ती खून की तरह होगी लेकिन इस समय वह किसी के अरमान से तम-तमाये हुए मुँह की तरह आग बनी-सी घूर रही है। वही समझेगा इसे

जिसकी गर्दन में गुलामी का केकड़ा धीरे-धीरे दांत गड़ाये हुआ दर्द कर रहा है कि थोड़ी देर में ही यह उस गोले को इतना कस देगा कि जीभ लटक पड़ेगी, आँखें निकल आयेंगी।

पेड़ों की छरहरी छाया हो रही है। कितनी अच्छी है यह छाया जैसे एक दिन निर्मल के बाल तकिये पर फैल गये थे। निर्मल हँस दी थी, लगा था बाल भी हँस देंगे, लेकिन छाया नहीं हँसेगी क्योंकि वह गुलाम की धरती पर काँप रही है। एक बेंच पर दो गोरे बैठे बातें कर रहे हैं। एक अंग्रेज है। एक अमेरिकन। वे एक दूसरे के देश के बारे में बातें कर रहे हैं। एक मेरा भी देश है। लेकिन उन देशों के सामने उतना ही गंदा, जितना उन दोनों के सामने मैं हूँ। लेकिन मेरा देश जो आग है, वह उनके देश नहीं, क्योंकि वे वह नहीं, जो मैं हूँ—यानी बागी।

पेड़ों की छाया में दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो मोटे-मोटे आदमी उन पर बैठे बाजार भाव की बातें कर रहे हैं। उनके पास सूटकेसों पर दो मांसल औरतें बैठी हैं, जेवरों से लदी। उन औरतों की आँखों में वही ठंडापन है जो मुर्दों की आँखों में होता है। उन्हें उनके माल पर बैठा देखकर मुझे इतनी घृणा क्यों हो रही है? क्या ये भी इन्सान ही नहीं हैं? लेकिन बाजार भाव पर बात करने वाले जुआरी हैं, उन्हें जेलों से बाहर रखने वाली सरकार उस बदमाश की सी है जो अपने घर में नाल गड़वा कर पैसा खाता है, हारे हुओं को रुपये पर बारह आने का सूद लेकर कर्जा देता है और फिर सुबह उठकर पूजा करता है। मैं नहीं कर सकता इनसे समझौता क्योंकि मेरे सिर झुकाते ही हजारों किसान, मजदूरों का अपमान होगा और मेरी आत्मा घुटकर मर जायेगी। मैं फिर घूम रहा हूँ। मन विभ्रांत हो रहा है। कुछ ऐसी बात नहीं दिख सकती जिसे मन कहे यह पाप नहीं है!

आँखें जगह-जगह ठोकर खा रही हैं। वह एक बुढ़िया बैठी है। शायद वह मुसाफिर है। क्या होगा उसका जीवन? या तो उसको मार

कर जी रही है। या सबको जिलाने का नाम देकर खुद मर रही है। और कोई चारा ही नहीं। जिसके गंदे कपड़े चिल्ला रहे हैं कि वह गरीब है, उसने परमात्मा की रटन दुहराई हो, लेकिन वह ब्रह्म को नहीं जान सकती।

और वह दो विद्यार्थी बेंच पर बरामदे में बैठे पढ़ रहे हैं। एक के हाथ में आस्कर वाइल्ड का डोरियन ग्रे है दूसरे के हाथ में जेम्स जायस का यूलिसीज। उन्हें गर्व है कि वे अँगरेजों से किसी हालत में कम नहीं। वे उनके देश की भाषा पढ़ सकते हैं। लेकिन उन दुध-मुँहों को देखकर मुझे हँसी आ रही है क्योंकि वे अभी खुद मुख्तार भी नहीं सिर्फ बहस कर सकते हैं, औरत की दो आँखें ही उनकी जिंदगी की सबसे बड़ी प्यास है......

बाईं तरफ मूँछों पर ताव दिये कोई ठाकुर बैठा है। मन में आता है कि इसके सामने जाकर इससे ठिठोली करूँ। पूछूँ कि जिन मूँछों की इतनी ऐंठ है वह क्या गुलामों के मुँह पर अच्छी लगती है। भूल का यह अभिमान नरक की काँपती हुई आग है।

दक्षिण की ओर मुड़कर जो व्यक्ति हाथ पसारे बैठा है उसकी दर्दनाक आवाज काँप रही है—अल्ला! भूख लगी! अल्ला भूख लगी! और लोग बहरे हो गये हैं। उन आवाजों को सुनना पसंद नहीं करते। ज्यादा से ज्यादा उसे वहाँ से हटा देंगे। और जरा आगे हटकर वह फिर कुत्तों की तरह चिल्लायेगा। अल्ला! भूख लगी! अल्ला! भूख लगी भयानक कुतुबमीनार की तरह यह स्वर उठ रहा है। यह साम्राज्यों के विजयस्तंभों में सबसे ऊँचा है। लेकिन काँप क्यों रहा है! अश्वमेधों के पराक्रमी इस पर पिशाचों की तरह लचक रहे हैं। अल्ला बहरा था, इन्सान भी बहरा है, क्योंकि मुझे भूख लगी है...

ग्राम प्रांत का वह साफा बाँधे किसान। अपनी गठरी बगल में दबाये बैठा है। इन्तजार कर रहा है। आयेगी, तेरी प्रतीक्षा की वेला

का भी अंत है। लेकिन तू यह भी सोच कि जब तक तू इन सब चीजों का मालिक नहीं होगा तब तक यह जमाना ऐसा ही रहेगा क्योंकि तेरे मालिक को नशे में लकवा मार गया है और उसके हाथ-पाव लुंज हो गये हैं, वह सिर्फ गाली दे सकता है...

और एक ही बात है। एक ही रूप सबके मुखों पर है। वह भाव नहीं जो उन मांसल टाँगों वाली गोरों की बगलों में दबी लड़कियों में है। क्योंकि कुछ भी हो उनके चेहरे पर किसी तरह का दाग नहीं। क्योंकि वे किसी के भी सामने सिर उठा सकती हैं; क्योंकि किसी भी देश का आदमी उन्हें आदमी समझकर बात कर सकता है, वे हर एक की बराबरी कर सकती हैं। यदि वे लुटी हुई भी इस योग्य हैं तो हम क्या इस योग्य नहीं ? क्यों वह निश्चितता नहीं जो उन काले मोजे पहने खड़ी दो गोरी फौजी औरतों में है। वे कोई भविष्य का भय नहीं करतीं कि उन्हें भी रेल आते ही एक दौड़ लगानी है कि शायद जगह मिले न मिले। उनके लिए फौज है, पुलिस है, वह लोग हैं जिन्होंने हमें बांधकर हमारी माँ के थन का सारा दूध अपने लिए निचोड़ लिया है और हम बछड़ों की तरह चिल्ला रहे हैं...वह दर्प नहीं जो उन खाकी ऊनी कपड़ों से लैस गोरे फौजियों में है। हमारे लिए एक सुई जितनी जमीन नहीं, उनके हर कदम के नीचे की धरती उन्हीं की है ! कहाँ हैं वे गद्दार जो कहते हैं कि अंगरेजों की सल्तनत हिन्दुस्तान से उठ चुकी है और सिर्फ दुश्मन अब घर ही में रह गया है। मेरी आँखें जिस दिन फूट जायँगी उस दिन भी मैं इन गंदे पाँवों, साम्राज्यवादी पाँवों की चाप सुनकर गुस्से से काँप उठूँगा। इतनी मजाल है इन कायरों की कि वह हमारी धरती पर हमें कुचलने का हौसला कर सकें।

फूट के टुकड़ों पर खड़ी होकर हिन्दुस्तान की अस्मत इन लुटेरों को देख रही है, और सिर नोंच-नोंच लेती है। और बेटे देख रहे हैं अभी

तक अनबूझ से क्योंकि सबके चेहरों पर गुलामी का काला दाग है और उन्हें अपना मुँह छिपा लेने की इच्छा हो रही है!

सारे समन्दर का पानी न धो सकेगा यह काला दाग। जमीन की गुलामी करने वाला चाँद न पोंछ सका अपने मुँह की कालिख, हजारों बरस हो गये, तुम धो डालोगे इसे! दुनिया का है कोई मुल्क जिसकी साँस में इतना गर्म गुबार हो!

··· पहाड़ों की चोटियों से शहीद नहीं लुढ़कते, लुढ़काये जाते हैं। तुम्हारे अरमान जिसको ठोकर मारने चले हैं वह वही था जिसके पाप को एक रोज कातिल ने अपने देश की सेवा कहकर उसे माफ कर दिया था। इन्सान को गिद्धों को काट-काट खिलाने वाले को अंधेर नगरी में वजीर कहा गया था क्योंकि बादशाह के गिद्ध भूखे थे! हराम की कसम, तेरे हर जर्रे में किसी का खून चमक रहा है, तेरे हर गाने में कोई बेदम होकर दम तोड़ रहा है...

लेकिन यह दाग मिटाये बिना हम नहीं रह सकेंगे। धोना होगा और हमें इसे कातिल के खून से धोना होगा। अँगरेज के निरीह रक्त से नहीं, वह तो बेचारा इन्सान है, लेकिन उस साम्राज्यवाद के खून से जिसने हमें और उसे दोनों को हैवान बना देने में कोई कोरकसर नहीं छोड़ी है।

एक क्षण मन उल्लसित हो रहा है। कैसा होगा वह दिन जब यह मजदूर नागरिक अधिकारों से लैस साफ कपड़े पहने घूमेंगे। तब यह लोग आदमी के सफेद कपड़े देखकर डरेंगे नहीं, जब यह लोग सल्तनतों की जहरीली घास को पनपने के पहले ही उखाड़कर फेंक देंगे। जब किसान किसी के चंगुल में नहीं छटपटायेंगे बल्कि उन्हें भी अपनी मेहनत का गर्व होगा। वे दूसरों के लिए नहीं, मरकर, अपने लिए जीवित रहना सीखेंगे।

और ये जो बच्चे यहाँ गंदे कपड़े पहनकर शोर कर रहे हैं, उनकी

देह पर इतनी मुलायम सतह होगी कि देखने वाले को बरबस उन्हें गोद में लेकर प्यार करने की इच्छा हो जायेगी।

लेकिन अभी वह दिन दूर है। उस फ़सल को उगाने के लिये बहुत खाद देनी है हमें।

मन विश्रांति चाहता है लेकिन हो नहीं पाता क्योंकि नींद के बाद कल का उजाला एक भयानक अंधेरा भी हो सकता है, क्यों इतने अँधेरेवाली ब्रिटिश सल्तनत में लोग कहते हैं सूरज कभी नहीं डूबता...

व्याकुल होकर मैं फिर घूम रहा हूँ। मन न जाने क्यों बाहर उमड़ आना चाहता है।

हवा कुछ तेज़ हो गई है। जब एक जगह हवा का दबाव हल्का हो जाता है, तब चारों तरफ़ की घनी हवा उस स्थान की ओर चलने लगती है। और दबाव कम होने का कारण है, ताप में गर्मी, तब तो धरती गर्म हो रही है! LOVE THE GOD

उधर जहाँ प्लेटफ़ार्म का ढाल है पटरियों के बीच में कुछ गाल पड़ी है और तीन मज़दूर बैठे हँस रहे हैं। यह बैठे हैं इन बीमारियों के डाक्टर। जिन बीमारियों को मूसा जैसे पैगम्बर नहीं मिटा सके, तुलसी-दास और चैतन्य जैसे भक्त नहीं भगा सके उनके डाक्टर, हकीम, वैद्य कुछ कह लो यहाँ बैठे हैं। है किसी में इतना ताब कि जले पर नमक छिड़कनेवाले को देखकर हँस सके। इनका दिमाग ही सारी समस्याओं को सुलझा सकता है क्योंकि सारी दुनिया इन्हीं के बल पर पलती है। आज यह ग़रीब हैं। मगर यह सिर्फ़ रोटी के ग़रीब हैं, ताक़त के ग़रीब नहीं। अपने क़ातिल को यह पहचानने लगे हैं। यह जानते हैं कि मोटा मालिक है तभी गोरा मालिक भी है। गोरा मालिक को निकालने के लिए ही लड़ना है, उस लड़ाई में सफल हो गये तो मोटा मालिक अपने आप मर जायेगा।

तीनों मज़दूर बातें करते-करते राख हटा रहे हैं। 'साम्राज्य की राख

OF FANATIC

हटाई जा रही है। भीतर से वारेन हेस्टिंग्ज की लाश निकल आयेगी। उस लाश के सीने पर अभी भी तमगे लगे होंगे। उन्हें हम अपने जूतों में कीलों की जगह लगवा लेंगे।

हमें वारेन हेस्टिंग्ज से इसलिए नफ़रत नहीं कि वह अँगरेज था, उसकी चमड़ी गोरी थी, वरन् इसलिए कि उसकी व्यापार-तृष्णा की मशाल ने हमारे गाँवों के छप्परों में आग लगा दी थी और जब औरतें और बूढ़े और बच्चे उनमें से निकलकर भागे थे उसने उनपर गोलियाँ चलवाईं थीं।

उसने बेगमों पर अत्याचार किया था। उसने औरतों पर हाथ उठाया था। हमें उसपर गुस्सा है पर सिर्फ़ इसलिए नहीं कि वे बेगम थीं, मगर इसलिये कि उसने हमें पराया समझ कर हमारे देश की अस्मत पर हाथ उठाया था और उन पर अत्याचार किया था कि उसके बादशाह के सिर के ताज में कोहेनूर चमक सके। चेतसिंह का खून याद है इसलिए नहीं कि वह सिर्फ़ राजा था, नहीं, याद है कि कम्पनी का माया-जाल जो धोखे के बल पर आज तमीज सिखाने का मदरसा यानी साम्राज्य बनकर खड़ा है, उसकी हड्डियों की नींव पर ही यह उठ सका है, टिक सका है। वारेन हेस्टिंग्ज का अर्थ अँगरेज़ी साम्राज्य है। उसने हमें लूटकर हमारी नफ़रत जगाई। पर यही नहीं। बल्कि यह लोग गंदे और भूखे होकर तड़प रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं, यह सब उसी की देन है। उसी के पुण्य के परिणामस्वरूप आज हम देख रहे हैं कि हमारे हाथों को लोहे की जंजीरों ने गुलामी का ऐसा निशान दे दिया है जो आज तक हमारी आत्मा को पलटकर डस रहा है। और एक दिन जिस डाकू को जिन्होंने अपना वीर बनाया था उन्हें हम याद दिला देना चाहते हैं कि कमीने और कायर जिस देश के वीर होते हैं वह देश पाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। और वह दिन भी आ रहा है जब हिन्दुस्तान का हर इंसान वारेन हेस्टिंग्ज के मुँह पर नफ़रत से थूकेगा

क्योंकि उसने हमारे बच्चों के मुखों पर आँसुओं का मैल जमाया है, क्योंकि उसने हमारी औरतों की छाती का दूध निचोड़ लिया है, क्योंकि उसने हमारी जिंदगी को बेअसर रहम पर पलनेवाली भेड़ बना दिया है जिसमें से चुनकर वह हर खुशी के दिन जिबह करता है और हमें अभी तक उसके सामने सिर झुकाकर रहना पड़ा है।

पत्थर का कितना भी छोटा टुकड़ा हो जब वह पानी में गिरता है तब उसके कारण गोल-गोल लहरें बनना जरूरी है और वह तब तक फैलती चली जाती हैं जब तक पत्थर का टुकड़ा तह में बिल्कुल ही डूब नहीं जाता। इस सल्तनत ने हमारे विराट समुद्र में हलचल की है। और सच है कि जब तक यह साम्राज्य धरातल के एक भी हिस्से में बचा रहेगा तब तक पानी तक की हर घूँट हमारे गले में अटका करेगी।

मैं फिर इधर-उधर घूम रहा हूँ। गाड़ी आने में अभी भी देर है।

पुल के पास कुछ मुसलमान औरतें बैठी हैं। उनको काले बुर्कों ने ढक रखा है। एक स्त्री जो युवती है कभी-कभी बूढ़ियों या अधेड़ों की नजर बचाकर मुँह खोलकर बाहर झाँक लेती है। यह सत्य है कि उसके यौवन भी है, रूप भी किंतु इतने भयके आवरण में छिपी वह सुकुमारता भी मुझे आकर्षित नहीं कर पा रही, क्योंकि इस लाज का मूल नारी की कितनी बड़ी परवशता है यह जब मैं सोच लेता हूँ हठात् मेरा मन झन-झनाने लगता है जैसे किसी ने पकड़कर मेरी उँगली बिजली के तार पर रख दी हो, और खुद लकड़ी पर खड़ा होकर हँस रहा हो।

पुल की सीढ़ी के नीचे कुछ ईसाई लड़कियाँ हैं। लगता है महाराष्ट्र की हैं। क्योंकि वे कुछ साँवली हैं और उनके मुखों पर कुछ दाक्षिण्य का प्रभाव भी है। उनके लिए यह परदेश है। अब यदि मैं याद करूँ तो मुझे उन लड़कियों की याद भूल जायेगी। एक नाना फड़नवीस दिखेगा, दूसरा पानीपत में लड़ा वही वीर योद्धा...लेकिन वह इतिहास में गर्क हो गये जहाज अब कभी लौटकर फिर दुनिया के इस समुद्र पर नहीं

तैर सकेंगे। वह सदा के लिए डूब गये हैं। पुल है, इस पुल के ऊपर बहुत से लोग आ जा रहे हैं और नीचे यह लड़कियाँ अँगरेजी ढङ्ग से मुस्कराने की चेष्टा कर रही हैं। मुझे सच बड़ी अद्भुत यातना हो रही है। क्या हम वास्तव में इतने चंचल हैं।

लेकिन पुल के पीछे वह तेज़ आँखोंवाला कोयलों की कालिख से सना एक मज़दूर खड़ा-खड़ा अपने कंठ के बटन लगा रहा है। वह शायद अभी वहाँ हँस-हँस कर राख उठा रहा था, अब यहाँ आ गया है। उसकी आँखें गिद्ध की तरह तीखी हैं जैसे उसे किसी पर विश्वास नहीं, क्योंकि वह सिर्फ़ सताया गया है, क्योंकि उसकी ज़िंदगी ऐसे ही बीतती चली जा रही है, जैसे कोई दुःस्वप्न है।

'कहाँ चले?' उसके सामने से नीली वर्दी का कोट-सा पहने प्याऊ वाले को हाथ में पानी से भरा डोल ले जाते देखकर पूछा।

'थाने! और कहाँ!' प्याऊवाले ने उत्तर दिया। मैंने, देखा पीछे की तरफ रेल की पटरियां पार करके उधर तम्बू पड़े थे। वहाँ शायद पुलिस थी।

'थाने में भी ड्यूटी लगी है तुम्हारी!' मज़दूर ने कहा। और व्यंग से तम्बुओं की ओर देखा जैसे उसका बस चले तो उनको, जमीन पर उठे हुए उन जीत के गर्व में भरे फोड़ों को नोंचकर फेंक दे।

पाण्डेय हँस दिया और उधर बढ़ चला जहाँ मालदौलत का एक खंभा आ गिरा था और मुझे ऐसा लगा जैसे किसी भयानक भट्टी का एक शोला छिटककर इधर आ गिरा हो और अब वह आग की जीभ से आस-पास की सब जमीन चाट जायेगा। हर जगह जलिया है—हर जगह यह कसाई सिर पर सल्तनत की पनाह लिये ईमान पर कोड़े बरसा रहे हैं क्योंकि यह चिड़ियाघर के वे शेर हैं जिन्हें कातिल ने इनका शेर पन भुला देने के लिए इन्हें सिर्फ़ उतना ही गोश्त डाला है जिससे

इनका आधा पेट भर जाये, मगर गजब है कि यह शेर कुत्ते होकर हर किसी को काटते फिर रहे हैं।

आग जल रही है।

और यह आग विक्षोभ सिर्फ एक गिद्ध है जो आकाश में मँडरा रहा है और वारेन हेस्टिंग्ज को लाश पर टूटनेवाला है। आज यह उसका सीना फाड़कर उसके लहू से भीगे पंजों से आकाश में उड़कर एक बार चिल्ला उठना चाहता है कि एक बार इंद्र भी यदि स्वर्ग में है तो वह दहशत से थर्रा उठे। आजादी के परिंदे के पंख फड़फड़ा रहे हैं।

सदियों से मुँह बंद कर रखा था जालिम, आज जब लात खानेवाला कुत्ता पलट कर भेड़िये की तरह बदला लेने के लिए गुर्रा रहा है, तब तू इसे अत्याचार कहकर अपने स्वार्थों को बचाना चाहता है!

हिटलर को तूने भी गालियाँ दी थीं धोखेबाज़! तब भूल गया था तू अपने वैभव का अभिमान! याद रख। तेरे देश के मज़दूर किसानों के रक्त में अब भी इंसानियत है। अभी उनकी आँख पूरी तरह से नहीं खुली। जिस दिन वे जाग उठेंगे उस दिन हिन्दुस्तान के शाहंशाह अपने ही मुल्क की ताकत खो बैठेंगे जैसे कल ही एक ठोकर में वे चर्चिल जैसी जली रस्सी की ऐंठन को उठाकर फेंक चुके हैं। धोखे को सहने के लिए इंसान की एक पीढ़ी और सही, दो और सही, लेकिन यदि तू चाहता है कि तेरे लिए हम हमेशा ही कीड़े बनकर रेशम उगलते रहेंगे तो यह तेरी भूल है, तेरी नींद शायद ज्यादा गहरी हो गई है, क्योंकि मानवता की कोई वेदना तुझे आज छू नहीं पाती।

हिरोशिमा की आग तो नकली थी शैतानो! आज हर हिन्दुस्तानी के दिल में तेरी ताकत, तेरी हुकूमत, तेरे व्यापार, तेरे साम्राज्य, तेरी शान शौकत, तेरे तख्तोताज के लिए हिरोशिमा है, यानी चालीस करोड़ हिरोशिमा हैं जिनकी एक लपट में तू धुआँ बनकर उड़ जायेगा और

फिर भविष्य की संतानें बढ़कर पूछेंगी—क्या इसी पृथ्वी पर एक दिन राक्षसों का वास था।

उस दिन हर मशीन में से आवाज़ आयेगी—हे मनुष्य के पुत्र! तेरे पिता ने, तेरे पितामह ने, तेरे प्रपितामह ने यहीं उस दानव का अपनी लोहे की मेहनतकश हड्डियों से वध करके उसे समुद्र में फेंक दिया था और वह शायद वहीं गल गया होगा।

बालक कहेगा—कहते हैं तू भी पहले उस राक्षस के हाथ में थी। तूने भी मेरे दादा को अपने वज़न के नीचे कुचलना चाहा था।

मशीन कहेगी—सच है बेटा! लेकिन मैं क्या करती? मैं तो बेजान हूँ। दोष तो उस राक्षस का था। बालक सुनेगा और चिल्ला उठेगा—'तेरे लाल किलों की अँधेरियाँ दूर हो गई हैं। हमने तेरी अभिमानी दीवालें तोड़कर भीतर उजाला करके रहने योग्य स्थान बना लिया है! हमें एक दूसरे से प्रेम है। हम किसी का छीनकर नहीं खाते जो एक दूसरे से भय करें।

बालक का वह उल्लास भरा स्वर मेरे विक्षुब्ध गर्जन की गूँज बनकर फैल जायगा। कल ही के लिये मेरी सत्ता का 'आज' तुममें रह कर ललकार रहा है।

जेलों की वह दर्दनाक आवाज़ें अब भी आकाश को फाड़ रही हैं। रात को जब सुनता हूँ तब लगता है अँधियारे में दूर कहीं मुझे कोई बुला रहा है। तू समझता है कि घड़ों में दीपकों को बंद कर देगा। पर तू भूलता है कि इन दीपकों की हर एक लौ में इतना ताप है कि तेरा घड़ा चटकने पर मजबूर हो जायगा और तू उन्हें नहीं बाँध सकेगा।

राह के भिखारियों की दौलत को छलनेवाले, खुदा का नाम लेकर तूने हमारे धर्म के हाथों जो गंदे खेल खेले हैं, आज हमने कसम खाई है कि हम हिन्दुस्तानी ही नहीं, बल्कि हर प्रान्त, हर व्यक्ति, सब स्वतन्त्र होकर रहेंगे, क्योंकि हमारे सब के अधिकार बराबर हैं।

अपनी हैवानियत को सभ्यता का नाम देनेवाले दकियानूस, तेरी लाश को कंधों पर उठाकर हम तुझे शहीद नहीं बनने देंगे क्योंकि सूरज डूबने के बाद यूनियन जैक सिर नहीं उठाता और देख अब यह दूसरे दिन का उजाला तेरे निकम्मे हाथों के लिए नहीं आयेगा। तेरे राज में इंसान को मा, बहिन और बेटी के बाजार में जोबन बेचने का लाइसेन्स मिला तेरे राज में गीदड़ों को हिंदुस्तान का ईमान बेचने की रायबहादुरी और खान बहादुरी मिली है। तेरे राज में रोटी का हर टुकड़ा खाते वक्त हमारे दांतों में धूल के कणों की तरह किसकिसाया है, तेरे राज में हमने रोते हुए भूखे बच्चों को दूध की जगह उन्हें पानी पिलाकर पाला है और अपने जिगर के टुकड़ों से झूठ कहा है कि पानी ही दूध है, क्योंकि इंसान के सहन की भी एक इन्तहा होती है, और आज तू कह रहा है कि हमारा तूने कुछ नहीं बिगाड़ा। खून से भीगी तलवार देखकर एक बार नादिर बेमुरव्वत संगदिल भी सिहर उठा होगा लेकिन तुझे तो बिल्कुल ही शर्म नहीं और हम जानते हैं कि हड्डी के लिए कुत्ता सब कुछ कर सकता है और वास्तव में यह तेरा अपराध नहीं, तेरी शान का कुसूर है, तेरे दंभ की आत्मा का एकमात्र कलुष कुत्सा से भरी चेतना तो क्या, उपचेतना भी यही है।

रेल आ गई है।

फिर वही भगदड़। उतरनेवाले पहले उतरना चाहते हैं, चढ़नेवाले पहले चढ़ जाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

मैं रेल में बैठ गया हूँ। गाड़ी में सब घुटने सटाये बैठे हैं। गाड़ी भाग चली है। वह मेल है। हर जगह रुकना नहीं जानती। उसका वेग एक शक्ति का प्रधावन है जिसके प्रबल घूंसे से वायु भी रेत के ढेले की तरह पीछे हट जाती है, लौट आती है और फिर घूँसा खाकर हट जाती है। यह संसार की विद्रोह भरी जनशक्ति है जो बढ़ती चली

जा रही है, सारी प्रतिक्रिया इसे रोक लेना चाहती है, लेकिन क्योंकि इसका मुख फौलाद का बना है इसपर कोई असर नहीं हो सकता।

डिब्बे के एक कोने से आवाज़ आ रही थी। मैं सुनने लगा।

मौलाना बोल उठे—आपका इस्मशरीफ़ ?

सुननेवाला मुस्कराया। बोला—आपको अपना पूरा नाम बताऊँ कि अँगरेज़ी का आधा ?

सब मुस्करा दिये। एक ने कहा—जो चाहे बताइए।

'शरीफ़ को एम० आई० चौधरी कहते हैं।' कहनेवाला बंगाली था। मौलाना ने कहा—मुहम्मद इब्राहीम कि...

चौधरी हँसा। कहा—मृणाल ईश्वर क्यों नहीं ?

मौलाना हँसे। बोले—क्यों नहीं ?

'लेकिन मेरा नाम मुहम्मद इस्कहान है।'

सब हँस दिये। किसी को विश्वास नहीं हुआ। सब मज़ाक ही समझे।

मैं सोचता हूँ क्या हमारे नाम किसी विशेष की जड़ हो सकते हैं। क्या मौलाना के लिए मृणाल वह नहीं होगा जो मुहम्मद होगा ? जिससे रक्त में लैला और मजनूं के प्रेम का रस होगा वह क्या इंसान से सिर्फ़ ऐसी मामूली बात पर घृणा कर सकेगा ?

चौधरी ने रुककर इधर-उधर देखा और कहा—मैं आपको सच बताऊं, मेरा नाम मुहम्मद इशाक है।

बात हल्की पड़ गई थी। चौधरी ने कहा—आप चौंकेंगे कि हमारे नाम में चौधरी हिन्दू नाम कैसा है ?

फिर वह कहता गया—'लेकिन चौधरी का अर्थ है कि हमारा बाप दादा कोई जमींदार रहा होगा। हम तो नहीं हैं। वहाँ जो भी हिंदू मुसलमान जमींदार होने सकेगा ओ चौधरी नाम का आगे जोड़ने सकेगा।'

सत्ता स्वार्थियों के कितने दृढ़ बंधन हैं। बेचारा मनुष्य क्या-क्या करे? हर जगह ही तो उसकी राह रोके कोई खड़ा है।

हर इंसान आज़ाद होना चाहता है, हर जाति स्वतन्त्र होना चाहती है, हर देश स्वतन्त्र होना चाहता है...

और सभी कुछ होगा क्योंकि हर इंसान भूखा है, हर जाति भूखी है, हर देश भूखा है। रोटी के पीछे जो कुछ जालिम पड़ गये हैं उन्होंने ज़िन्दगी का सारा व्यक्तित्व हराम कर रखा है।

डिब्बे में लोग बातें कर रहे हैं। दराक कह रहा है कि वह कई भाषाएँ पढ़ा है—लोग विस्मय विमुग्ध बैठे हैं।

तीसरे दर्जे की इस आलीशान लकड़ी को देखकर मैं हँस रहा हूँ। इसमें असल में हिन्दुस्तान बैठा है, असली हिंदुस्तान।

और छत में बल्ब नहीं है, क्योंकि हमारे लिए रात को उजाले की कोई ज़रूरत नहीं समझी गई, जैसे यह कोई मालगाड़ी का डिब्बा है, हम इंसान नहीं हैं, हम वह बिल्टियाँ ही हैं जिन्हें स्टेशन पर शायद कोई रसीद लेकर छुड़वाने आयेगा और हम तब ही उतर सकेंगे......

बाहर खेत दिख रहे हैं। पाला हाल में चने को मार गया है। कहीं-कहीं किसान औरतें खड़ी हैं। उनके सिरों पर डलिया रखी हैं। कितना सीमित है उनका दायरा और इस ज़मीन के हरियाली के ढँके टुकड़े पर उनका जीवन है, उसी के बल पर उनका सुहाग है, उसी के बल पर मातृत्व है, ब्याह है, शादी है, समाज की रस्में हैं, रिवाज हैं, और उनका अपना सुख दुःख है लेकिन वह टुकड़ा—वह ज़मीन का टुकड़ा—उनका अपना नहीं है, किसी ऐयाश ज़मींदार या जागीरदार का है जो मुफ्त में इनका खाकर, खुद मोटा होता जाता है, इन्हें दुबला करता जाता है, और कहा जाता है कि इस अन्याय को बनानेवाला वह है जो बागियों के डर से धरती छोड़कर आसमान में जा छिपा है। एक दिन जिन्हें देवता समझकर उसने अमृत बाँटा था आज वह खुद राक्षस बन गया है, लेकिन भगवान सो गया है रेल बढ़ी जा रही है। दहाड़ती हुई बढ़ी चली जा रही है और लोग ऊंघ रहे हैं।

# यह ग्वालियर है!

यह ग्वालियर है।

माता लक्ष्मी बाई की इस पुण्य समाधि पर मैं माथा टेकता हूँ। यह वह स्त्री थी जिसने विदेशियों के दाँत खट्टे कर दिये थे। इसके हाथ की उस चमचमाती तलवार ने जो बिजलियाँ भारत के आकाश में पैदा करती थीं; वही आज सम्मिलित होकर लरज़ रही हैं, कड़क रही हैं।

अट्ठारह सौ सत्तावन की वह प्रचण्ड बाढ़ जिस चट्टान को नहीं उखाड़ पाई, आज यद्यपि वह पहाड़ बन गई है, लेकिन हम उसे जड़ से खोद कर मानेंगे।

आज़ादी की उठी हुई तलवार को माँ ने कभी म्यान के अन्दर वापिस नहीं रखा। मुझे लग रहा है कि वह तलवार मुझे रास्ता दिखा रही है।

क्या है सतीश, क्या सुना रहे हो?

सतीश उत्तेजित है। वह कह रहा है—कल हमारे कालेज में नाटक हो रहा था। एकाएक हमने सुना कि मिल के मज़दूरों पर गोली चलाई गई। मैंने कहा—नाटक रोक दो।

उन्होंने मना किया। लेकिन हम तीन-चार आदमी अड़े ही रहे। और.........

मैंने सुना। संसार में अनेक भूखे हैं, अनेक अत्याचार हैं। क्या नाटक रोकना केवल भावावेश मात्र ही नहीं?

एक दिन के लिए भी जब मनुष्य अपनी सत्ता के पाप का न्याय नहीं दे सकता तब क्या यह केवल अनुभूति मात्र नहीं है ? क्या इनके नाटक बंद कर देने मात्र से मज़दूरों के दुःख दूर हो जायेंगे ? लेकिन नहीं। इनके नाटक बंद करने का अर्थ है कि कातिल का कोई साथ नहीं रहा है। आज वह जघन्य जानवर खून से भीगे हुए दाँत छिपाने में असमर्थ हो गया है। आज इंसानियत का नाम लेने वालों में कोई भी उसके साथ नहीं है। तुमने साबित किया है कि शोषित बुद्धिजीवी निम्न-मध्यवर्ग मजदूरों के साथ हैं। मेहनतकशों के साथ है। जालिम पूंजीवादी और सामन्तों के साथ नहीं हैं।

'नाटक बंद कर दिया तुमने ? शाबाश। मुझे सुख हुआ है।'

'लेकिन उन्होंने बन्द नहीं किया', सतीश ने काट कर कहा।

'तो भी कोई हर्ज नहीं। यह तो नहीं हुआ कि निम्नमध्यवर्ग की मानवीयता बिल्कुल नष्ट हो गई है ? इस मध्यवर्ग का कल्याण आज मजदूरों के साथ है, किसानों के साथ है, न कि उन रक्तशोषकों के साथ जो आज सारी दुनिया को बोली बोल खरीद लेना चाहते हैं और इंसान के पांसों से चौसर खेलना चाहते हैं।

मैं आगे बढ़ रहा हूँ।

यह किसकी काले पत्थर की मूरत खड़ी है, घोड़े पर यह मरकर भी कौन बैठने का दुस्साहस कर रहा है ? किसने लिखा है इसपर 'हमारा प्रिय शासक ?'

जानते हो यह कौन था ?

यह अँगरेजों के सामने दुम हिलानेवाला केवल एक कुत्ता मात्र था और इसका मन इतना निर्जीव था कि यह अपने को राजा कहने में कभी भी नहीं हिचकिचाया ! इसने अपनी प्रजा को गुलामी का गुलाम बनाया था। काश मेरी जगह कोई मेधावी होता तो बता देता कि मूर्खता के बल पर ही मनुष्य का पाप फलता है। इसने लोगों को कोड़े

मारे थे, स्त्रियों को दासी बनाया था और नरक की अग्नि में सैकड़ों को फेंक दिया था........

बाजार बन्द है। चारों ओर एक विक्षोभ उमड़ रहा है। चारों ओर आज हृदय इस सत्ता से असहयोग करना चाहता है। रियासतों की धांधली ने आज सांप को छेड़ा है, उस सांप को छेड़ा है जिसके ज़हर को बड़े-बड़े सम्राट नहीं सह सके और पल भर में उड़ गये। यह वह शक्ति धधक उठी है जिसके ताप से कोई नहीं बच सकता।

हड़ताल कहाँ नहीं है ! चारों ओर आज मुझे यही सुनाई दे रहा है। पूँजीवाद के नंगेनाच का अंगचालन। आज पूँजीवाद राष्ट्रीयता और सरकार के बीच में नट की तरह कलाबाजियाँ खा रहा है।

आगरे में हड़ताल है, अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता, नागपुर, सब में यही आग है।

यह आग देश की सीमा को पार कर गई है। यह विद्रोह न्यूयार्क में है, स्वयं जालिम साम्राज्यवाद के लड़खड़ाते घर में है। मजदूरों ने जिससे उनको राष्ट्र का गौरव कहकर उन्हें छला गया था, आज वह उस घर में आग लगाकर स्वामित्व का दंभ छोड़कर मानव बनाना चाहते हैं।

हलचल कहाँ नहीं है ! कहाँ है आज शांति ? सब कुछ दाँव पर लगा हुआ है। देश, राष्ट्र, प्रांत, नगर, ग्राम, घर, यहाँ तक कि पुरुष का पेट और नारी का पेट, और बच्चों का पेट, सब कुछ दाँव पर खेला जा रहा है ! और सारा संसार एक स्वर से पूछ रहा है—किसके लिए ?

आज 'राष्ट्रवाद' का छल उनके पूँजीवादियों के भयानक प्रचार को ऊपर से मढ़ नहीं सकेगा।

युद्ध कहाँ नहीं है !

इंडोनीशिया में कि ईरान में, कहाँ मनुष्य युद्धरत नहीं है। मैं तो देख

रहा हूँ कि भिन्न-भिन्न भू प्रांतों में, भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाला भिन्न संस्कृति, वस्त्र धारण करके, वास्तव में वह एक ही मानव है जो अपने सिर को खून से भीगा हुआ देखकर क्रोध से उबल पड़ा है।

हैवानियत के सामने आज इंसान कहाँ सिर झुकाये खड़ा है! 'कहीं नहीं,' आकाश गूँज रहा है, क्योंकि धरती पुकार उठी है। आज कोई भी धोखा आँखों की जाली नहीं बन सकता। आज किसी भी तरह मन को नहीं बहलाया जा सकता। मनुष्य की भूख क्या कोई मामूली भूख है जो वह चुपचाप उसे सहता रहे! Kiss Bhanu Tisher

किसके पैरों की चाप सुनाई दे रही है! उनकी जिनकी ठोकर से हिटलरी मेघनाद का गढ़ चकनाचूर हो गया। उनकी जिनकी पगध्वनि को सुनकर करोड़ों की आँखें हर्ष से किलक उठती हैं। उनकी जिनकी भूख पर लोगों ने नफे कमाये हैं। उनकी जिनकी बाहुओं के हिलने से साम्राज्य का भारी-भरकम बजड़ा समुद्र में पड़े तिनके की तरह डगमगाने लगता है। यह किनकी हुंकारों से आसमान काँप रहा है! उनकी जिनकी बात इंसानियत की पुकार है। जिनके मुँह से निकले इंकलाब का मतलब है इंसान की आजादी। जिनके 'जिन्दाबाद' का अर्थ है मेहनतकशों का राज। जिनके हर नारे में राष्ट्र का जागरण है। जिनके भाई सारे संसार में शेरों की तरह दहाड़ रहे हैं और मुफ्त की खाने वाले ऐसे भागते फिर रहे हैं जैसे भूचाल आ गया हो। जिनकी एक करवट में राजाओं के मुकुट धूल में गिर गये हैं और वे नौकरी की तलाश में चल पड़े हैं; जिनकी पूरी शक्ति जहाँ कहीं, प्रतिक्रिया का विष धीरे-धीरे फैलता जा रहा है।

यह काले-काले कौन हैं!

यह वह हैं जिनके पेट में वह आग है जो दुनिया से दल्लाली मिटा देना चाहती है। यह काले इसलिए हैं कि तूने आज तक इनका तेल

तक खींच डाला है और उन्हें धूप में जूठन देकर काम करने पर मजबूर किया है।

यह नंगे भूखे कौन हैं ?

यह वह हैं जिनके कपड़ों को तूने विदेशी सरकार को देने के नाम से अपनी संदकों और तहखानों में छिपा लिया और उन्हें नंगा कर दिया। जिनको पेट भरते देखकर तेरा खजाना कै करने की उबकाई से मरोड़े खाने लगता है, कोयलाचोर! तेरी दरियादिली है तो उठा ले इन्हें और चबा जा!

जीवाजीराव मिल्स के व्यापारी आज छिपे बैठे हैं। इसके मालिक बिड़लाजी हैं। मैं नहीं जानता वे कैसे हैं। उनका व्यक्ति कैसा भी हो। किन्तु वे पूँजीवादी हैं। आज उनके घर में यह हत्याकांड हुआ है। चोरों की सल्तनत है, वर्ना ऐसे व्यक्ति को कटघरे में खड़ा कर दिया जाता। इसके नफे ने खून किया है, वह नफा इसका धर्म था।

यह खूनी है। इसे छोड़ना इंसानियत की जड़ों पर कुल्हाड़ा चलाना है। जैसे कुछ हुआ ही नहीं या मच्छड़ मर गये हों। गांधी के पैरों पर सांप बैठा है। मेरा सारा देश व्याकुल हो उठा है, कहीं यह जहरीला मेरे बाबा को डस न ले।

वह जिसने आज तक अँधेरे में हमें चिराग दिखाया है, जो राष्ट्र का पिता है, आज वह कहीं मूर्छित न हो जाये। मेरा सारा मोह हाथ उठाकर चिल्ला रहा है—त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!

लेकिन मजदूरों के नारे गूँज रहे हैं। मेरे मन को संतोष हो रहा है। आग नहीं बुझी है। जब तक शोला लाल है तब तक सांप के काटे का जहर वह जला सकता है। और सांप!! कल हमने अँगरेजी सरकार को अपने देशवासियों का खून बेचा था। इसलिए नहीं कि यह मर-गिर कर भी फासिस्टों से लड़ने वालों का साथ देना चाहता था, बल्कि इस

लिए कि इसने मुँह से गांधी की जय बोलकर चोर बाजारी की थी है।

आज यह अपने देश के लोगों के अँगूठे काट रहा है। रियासतों में आदमी बहुत ही गरीब हैं। इसलिए उन्हें चाहे जिस तरह खरीदा जा सकता है। और साम्राज्यवाद पूँजीवाद से गँठबन्धन कर रहा है, जैसे एक दिन मीरजाफर ने अंगरेजों को अपने घर में घुसा लिया था। तू घरती पर लूट, मैं बाजार में लूटूँगा और लूट के दुगने दामों पर बेचूँगा। और क्योंकि मजदूरों ने बोनस माँगा था यानी रोटी माँगी थी! क्योंकि उनका पेट नहीं भरता था, क्योंकि उनके बच्चे भूखे थे! और उन्होंने बोनस माँगा था कि कहीं भूख के मारे वह एक दूसरे का मांस खाने को मजबूर नहीं होना चाहते थे जैसे बंगाल में लोगों को चिल्ला-चिल्लाकर दम तोड़ना पड़ा था और फिर भी उन्हें कुछ नहीं मिला था!

मजदूरों ने माँग की थी। उन्होंने आशा की थी, क्योंकि उज्जैन में उन्हें मिल गया था। लेकिन उन्हें बहुत-सी जगह नहीं मिला, क्योंकि उससे मुनाफे में कमी आ जाती! क्योंकि फिर मन्दिर नहीं बन पाते! क्योंकि फिर अनाथालय नहीं बनते! नाम नहीं चलता! और तेरे लिए वह समाज ही क्या जिसमें इंसान के बच्चे को अनाथ करके उससे भीख न मँगवा ली जाये! क्योंकि तेरी थैली दुबली हो जाती, तेरा यश नहीं चलता! और उनपर गोलियों की बौछार की गई, क्योंकि उनके हाथ में बंदूक नहीं थी! वे निहत्थे थे! देशभक्ति की इस सीमा को देखकर भारत आज अपने घर में न्याय माँग रहा है। कल जब चोरबाजारी का नाम सुनकर यह मुनाफाखोर आदमियत के लिए लड़ने वालों को गद्दार कह रहे थे, आज जब वह हजार-हजार के नोटों के वह गरीबों के कटे हुए सिर निकालकर उनपर रो रहे हैं तब भी क्या इनका पाप का गर्भ छिपा रह सकता है!

और याद है कल जर्मनी में मजदूरों को कुचल दिया गया था।

क्योंकि हिटलर के हाथ में बन्दूक थी। उस रावण की भीषण विजयों पर विदेशों के पूँजीवादी जन गढ़ की ओर आकर खड़े होकर भयक्रांत-से काँपने लगे थे कि कोई हमारी रक्षा कर ले, हम अपने आप में जीवित नहीं रह सकते।

यह सच है कि गरीब के पास जब तक एक ही कपड़ी है तब तक जूँ उसमें रेंगती ही रहेंगी। लेकिन मजदूर की उँगलियों को भूल जाना क्या ठीक होगा, जिनके बीच में कैसी भी जूं पीस दी जा सकती है।

और बाड़े पर साँझ की छाया काँप रही है।

उन बड़ी-बड़ी इमारतों पर से जाड़े की धूप उधर खिसक जा चुकी है। अब एक मटमैला आकाश झाँक रहा है। जैसे काँपती हुई पलकों के बीच फूलेवाली आँख। बड़े-बड़े स्तम्भ स्तब्ध खड़े हैं। यह वह जगह है जहाँ आज सिर झुकना नहीं चाहता। यह वह जगह है जहाँ आदमी का अपमान अपमानित किया गया था। वह आते अंधकार को बाहु से पीछे धक्का देकर पूछ रहा है—कहाँ गया वह जल्लाद!

और एक कोलाहल है। लगता है, बहुत दूर-दूर बहुत-सी लहरें अनंत विस्तार को झकझोर कर तीर पर आकर टकरा गई हों। मजदूरों के जत्थे, झुण्ड के झुण्ड। वह सब बदला लेना चाहते हैं, लेकिन वे खून के प्यासे नहीं हैं। उन्हें कोई डर नहीं। मारने की इच्छा हो और मार ले। हम तो कोई गलती नहीं करते। हाथ उठाकर जिसे तू जुल्म कहता है, वह तेरी कायरता है, और कुछ नहीं। हम तो तेरी गोलियों से कभी भी खत्म नहीं हो सकते। मत भूल को गोली की आवाज सुनकर शेर हमेशा गजरते हैं, वह चुनौती नहीं सह सकते। सोया करें वह दूसरी बात है।

फुफकार पर फुफकार, जैसे मतवाले साँप इकट्ठे हो गये हैं। हम जानते हैं कि हमारे एके से तू डर रहा है। हमारी कल की चुनाव की

जीत से तेरी प्याले की शराब सूख चली है। तुझे मालूम है कि लहर पानी ही क्यों न हो, लेकिन उसका थपेड़ा फौलाद का थप्पड़ होता है।

गोली!

धाँय!

एक धाँय नहीं, अनेक धाँय; लेकिन भीड़ खड़ी ही है। मरकर क्या बिगड़ जायेगा। परसराम जाधव भी तो नहीं मरा।

मैं देख रहा हूँ—

यह सन् १७ ही नहीं है, जब मजदूरों ने रूस को, भूखे, दलित रूस को, शाप के बन्धनों से छुड़ाया था। वह एक दिन था। उस दिन दुनिया काँप उठी थी। युरोप के सारे मुल्कों ने उसके खिलाफ़ तलवार उठाई थी, जैसे आज कांग्रेस के दुश्मन देशी राजे और कांग्रेस के दोस्त फिरंगी हाथ में हाथ डाले खड़े हैं। एक के हाथ में बंदूक है, दूसरा गोली देता है। यह कैसी दोस्ती!

यह फ्रांस की राज्यक्रांति नहीं है जिसमें एक ज़ालिम के बेवकूफ उत्तराधिकारी को जनता का भयानक बदला याद दिलाया गया था, क्योंकि अत्याचारी ने अपनी गाड़ी के नीचे बच्चा दबने पर सिर्फ एक सवाल पूछा था कि—गाड़ी का पहिया कहीं खराब तो नहीं हो गया!

मैं पूछता हूँ कि उससे बढ़कर नर-दानव संसार में कोई हो सकता है!

और—

यह १८५७ ही नहीं है जब हिंदुस्तान ने अपनी तलवार चूमकर क़सम खाई थी कि व्यापार करने की भीख माँगने आकर जो धोखेबाज फरेबी सौदागर हमारे घर में आग लगा रहे हैं, अपने बड़े से बड़े कमीनेपन को न्याय देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते और बेशर्मी ही सबसे जिनकी बड़ी हया है, उनको समुद्र की लहरों में फेंक देंगे।

यह सन् ३० भी है, जब निहत्थों पर वार किया गया था। जिस

दिन हिंदुस्तान के वीरों के—मेरे पूर्वजों के—पिताओं के सिर खून से भीग गए थे। ज़ालिम अपने ज़ुल्म पर खुद झेंपकर हट गया था। क्योंकि पिटने वाले का दिल कहीं ज़्यादा बहादुर था।

यह सन् ४२ भी है, जब इसी ग्वालियर में भाले-बर्छी लेकर विद्यार्थियों के जुलूस पर हमला हुआ था और उस दिन बापू जेल में थे, उस दिन हिंदुस्तान ने एक भयानक करवट ली थी, लेकिन सब कुछ होते हुए भी लोग दबे नहीं थे, हारे नहीं थे, उनकी हुँकार गिरफ्तार नहीं हुई थी।

यह जलियाँवाला बाग भी है, जब घेर कर लोगों पर गोलियाँ चलाई गई थीं। उस दिन गुरुदेव का हृदय विचलित हो उठा था। उस दिन स्वयं सरस्वती आर्त्तनाद कर उठी थी। उस दिन पंजाब की धरती पर जो खून फैला था, वह आज भी नहीं सूखा है...

और स्वार्थियों ने तब भी गोली खाने वालों पर दोष लगाया था और आज भी वह यही करेंगे, क्योंकि उनके पास इसके अतिरिक्त चारा नहीं, क्योंकि उनके पास सच है कहाँ जो वे झूठ को छोड़ दें।

लेकिन फौज ने गोली चलाने से इंकार कर दिया है।

लेकिन क्या है तेरी फौज ? वही तो है इसमें जो तेरे ताज की मुहब्बत की वजह से इंसान पर हाथ उठाने को खड़े नहीं हुए, बल्कि इसलिए कि यदि वे हैवान नहीं बन जाते तेरे लिए तो तू इंसान बनकर ज़िंदा नहीं रहने देता ! जो लौट कर फौज से तेरी मेज़ों पर दावत नहीं उड़ाते, वरन् गाँवों के कच्चे घरों में घुसते हैं, मज़दूरों में अपना गुज़ारा गुज़ारते हैं।

देश देश की फौजें जाग रही हैं। इन्डोनेशिया में साम्राज्यवाद मुँह की खा चुका है।

और पुलिस के सिर पर खून से भीगी पगड़ी का दम्भ है—। मज-

दूरों ने कहा था—कि हमारा आपस का झगड़ा है, तुम्हें क्या मतलब ?

लेकिन शांति स्थापित करनी थी तुम्हें !

तब शांति नहीं करनी थी जब मजदूरों के घरों में भूख का डाकू उछल-कूद रहा था। तब कायम नहीं रखना था अमन जब मा ने मुंह फेरकर आंखें पोंछ ली होंगी कि बेटी रोटी के लिए रो रहा है और उसके पास वह नाखून भी नहीं जो सीना फाड़ कर रोता हुआ अपना दिल दिखा दे ! कहाँ थी तब यह न्याय की दुंदुभी जो आज लाशों पर गा-बजा रही है ?

वह खड़ा है ग्यारह बरस का लड़का एक—एक लड़का है वह ग्यारह बरस का। उसके चेहरे पर गुस्सा तड़प रहा है। तुमने भीड़ पर गोली चलाई है। उसमें तुमने औरतों का खून किया है।

वह लड़का सीना खोलकर खड़ा है सामने। 'लो' वह कह रहा है—'क्या औरतों पर गोली दागते हो ! मारो, मेरे सीने में मारो।'

धाँय ! धाँय !! धाँय !!!

मार दिया उसे भी ! गिर गया लड़का कि हाहाकार करता हुआ आस्मान से तारा टूट गया। चढ़ा दिया ईसामसीह को सूली पर ! भूखा मार सके हो गांधी को ! दमन से हरा सके हो आदमी की आत्मा को ?

गिर गये बेटा ! लहू से तुम्हारी छाती रंग गई है। आज तुम्हारी मा की छाती में दूध उमड़ रहा है। एक घूंट पीकर उसके दूध की लाज तो रखते जाओ ! वाह ! कैसी शान है ! मजाल है, चेहरे पर मौत का डर हो ! आज तो कातिल का चेहरा बिल्कुल स्याह पड़ गया है।

बेटा ! एक बार मजदूरों के यह जैकारे तो सुनते जाओ। देखो, तुम्हारी शहीदी की आन आज हर कोई कैसा निडर होकर निभा रहा है !

तुम्हारी लाश आज मक्का से भी ज्यादा पवित्र है। तुम्हारी लाश को देखकर कौन कहेगा कि तुम जिन्दा नहीं हो। उसे जाने दो। उधर न देखो तुम। वारेन हेस्टिंग्ज़ की लाश, क्या उसने तुम्हारा मुकाबिला करके हम अपने नन्हें बहादुर की बेइज्जती करें? उसके तो जीवन में ही उसके चेहरे पर क्रूरता लिखी थी। कितना घृणित विकार था उस पर! पर तुम तो हमारी ममता के जीते जागते अरमान हो।

तुम्हारी अधखुली आँखें अब भी शायद देख रही हैं कि झंडा झुका नहीं है। नहीं, वह नहीं झुकेगा। भूखा रहकर एक-एक मजदूर दम तोड़ देगा, लेकिन क़ातिल की जीत न होगी।

वारेन हेस्टिंग्ज़ की वह गलीजी आँखें, ढँक दो उन्हें। उनमें कितना गंदा कीचड़ पड़ा है। जिन-जिनका उसने गला घोंटकर मारा है उन-उन का अक्स उनमें पड़ रहा है। यह लाश इस लायक नहीं कि इसमें शहीदों का अक्स भी पड़े। बेटा! तुम्हें देखकर मुझे भगतसिंह की याद आ रही है। आह! तुम्हारे चेहरे की यह शहीदी मुस्कान! हम सब रोकर आज तुम्हें कायर नहीं कहलवायेंगे। तुम तो चुनौती देकर मरे हो। तुम्हारी ललकार गूंज रही है।

और वारेन हेस्टिंग्ज़ की यह भयानक मुख विकृति कैसी पैशाचिक है।

बेटा! सुन, तेरी मा का दिल आज बार बार उमड़ आना चाहता है। उसकी हर हिचकी में तेरे लिये कितना प्यार हुड़क रहा है। उसकी छाती में दूध उमँड़ रहा है बेटा, मरते मरते एक घूंट तो पीता जा।

आठवें एडवर्ड ने तख्त छोड़ दिया था। लेकिन आज तेरे बलिदान के सामने वह कितना फीका लग रहा है! जैसे वह सिर्फ कठपुतलियों का खेलमात्र था।

बिड़ला के पूंजीवादी अखबार नहीं छापेंगे कि तूने भी किसी की आजादी के लिये जान दी है। उनमें मालिकों का स्वार्थ भरा होगा।

लेकिन तेरी याद उन बिरले वीरों के साथ होगी जो मर कर भी नहीं मरते, क्योंकि हर आँसू में तेरी याद थिरकेगी, जब मजदूरों के हाथ में महल होंगे तब तू सब से ऊपर झंडा होगा।

तेरे लाखों भाई हिंदुस्तान में तेरे लिये हाथ उठा रहे हैं। कोई मजाक है कि मजदूर का बेटा औरतों को कत्ल किये जाते देखकर हुँकार उठता था। तेरी याद की आग हरएक कारखाने में फैल जायेगी।

तेरे करोड़ों भाई दुनिया में क़दम मिलाकर चल रहे हैं। आज उनके पैर कितने सध गये हैं!

तेरी लाश मेरे गीतों पर चढ़कर आस्मान तक को चुनौती देगी मेरे लाल! तेरी लाश को दफनाने का अपमान मानवता कभी नहीं सह सकेगी, क्योंकि तू दिलों में दीपक की लौ बनकर जल उठा है। कैसा भी तूफान तुझे नहीं बुझा सकेगा।

आज ग्वालियर की धरती पर हसनैन का कत्ल हुआ है।

नगर की इस विक्षुब्ध हवा में एक ही भयानक आवाज आ रही है—

सत्रह खून

चित्रकार भय से काँप उठा है। उसने हाथ की कूंची रख दी है। वह सुन्दरी जिसका वह चित्र बना रहा था, उभर कर जैसे वह खून तड़प कर कह रहा है—चित्रकार! भूल सकोगे इस खून को!

चित्रकार आज व्याकुल हो उठा है। सच वह क्यों नहीं बोल उठता?

सत्रह खून?

गायक दहल उठा है। आज उसका गला रुँध गया है। स्वर कंठ में अटक गये हैं। वह बोलना चाहता है, किन्तु बोल नहीं पाता, क्योंकि आज किसी भयानक पंजे ने उसके गले को जकड़ लिया है। हज़ारों की भीड़ उधर आतुर हो रही होगी। गायक का स्वर बंद हो गया है।

और काले पत्थर के घोड़े पर बैठा वह काले पत्थर का इंसान,

यह सन् एक पत्थर है, आज उसके गुर्गे पवार ने जर्मनी के नाजियों की तरह हुक्म दिया है कि भून दो और वह भाग गया है और मजदूरों को दंगाई कहकर दुनिया को धोखा देने का प्रयत्न कर रहे हैं टुकड़ों पर पलने वाले कुत्ते, जिनके पेट में रोटी जाकर केंचुओं की तरह किलबिलाने लगती है ! न्याय की माँग है, इन जल्लादों से जनता बदला लेगी।

माता लक्ष्मी बाई की समाधि को प्रणाम। तेरे बेटे तुझे भूले नहीं हैं। गोली चलाने वाला अगर गोली ही चला सकता है किस तो गद्दी की जरूरत है उसे बचाने के लिए ? हड़ताल नहीं रुकेगी। मजदूरों की पुकार आज हुंकार से कम नहीं तड़पती—पवार को निकाल दो, जाँच करो, मारो गोली''मगर हिम्मत है किसी में और ? दो सौ आदमी घायल हुए हैं, क्योंकि वह पीछे नहीं हटे और जिन्हें दंगाई कहा था उनके हाथ से एक भी घायल सिपाही न खड़ा कर सका वह हत्यारा जो समझा था कि यह भी एक खेल है, दबा देंगे यों ही इन्हें। अरे दबा न पाया सात समुद्र पार चलने वाला साम्राज्य, तुम दबा लोगे उनसे मिलकर !

और तीस दीनारों में जिसने ईसामसीह को सूली पर चढ़वा दिया था वह फिर बढ़ रहा है। लेकिन वह डर क्यों रहा है ? क्योंकि हजारों मजदूरों की तनी हुई मुट्ठियों को देखकर वह दहल उठा है। यह उसने आज तक नहीं देखा था। मजदूरों का खून से भीगा झंडा फरफरा रहा है।

कुचल दो उस साँप का फन क्योंकि इसे अपने आप फाँसी लगा कर मर जाने की शर्म कभी नहीं आयेगा क्योंकि यह इंसान नहीं रहा है।

मजदूरों के पाँव आज अंगद के पाँव हैं। रावण क्या रावण का बाप भी नहीं डिगा सकता। ज्वालामुखी फूट निकला है। इस लावा में कौन नहीं झुलस जायेगा, दब जायेगा ? हम शांति से खड़े हैं। कौन कर सकेगा गिरफ्तार ? हमपर गोली चलाई है तूने ! तेरी इंसानियत को देखकर दुनिया छाती पीट रही है।

और उन लाशों में हिंदू नहीं हैं, मुसलमान नहीं हैं—हिंदू भी मरे हैं, मुसलमान भी मरे हैं। आज दोनों एक होकर मरे हैं, इसलिए भारतमाता की हाथ की जंजीरें एक जगह तड़ाक से चटख गई है। सब इसी का इंतजार कर रहे थे। शाबाश ग्वालियर! तेरी धरती पर जो खून बहा है उसपर पाँव रखने की है किसी में हिम्मत? वह मज़दूरों का खून है। राम और मुहम्मद के सीनों में गोली लगी है, क्योंकि वे मज़दूर होकर एक थे।

और उन लाशों के लिए सबके दिल में खून के आँसू हैं। विद्यार्थियों की आग है कि वे खूनी पवार के एक पुतले को साथ लेकर गा रहे हैं और लड़कियों का भेदता स्वर ग्वालियर के उस पत्थर के भयानक किले में टकरा रहा है—

यह पवार का जनाज़ा है
ज़रा धूम से निकले
लश्कर की गलियों को
ज़रा चूर के निकले।

सुनें बिड़ला! कान खोल कर सुनें! नौजवान चिल्ला उठे हैं : सब आतंकित हैं, नहीं जानते कल क्या होने वाला है। किन्तु एक बात वे नहीं भूलते कि मौत कोई डरने की चीज़ नहीं है। देश-देश में रोटी माँगने वालों को गोलियाँ मिली हैं। आज फिर सही। यह गोली खाने वाले तरुण पजड़ते हैं। आज फिर सही। वह झुके नहीं हैं। उनपर गोली चला लो। वह होश में हैं। मजदूरों की मांगों को पूरा करना होगा।

लेकिन मजदूरों के जालिमों ने उन्हें भेड़ समझकर जिबह करना चाहा है, इसलिए विद्यार्थी पवार के पुतले को नाले में जला रहे हैं। 'पवारशाही का नाश हो' का नारा आकाश और पृथ्वी में काँपता हुआ

डंके पर चोट की तरह पुकार रहा है। यह गूंज किसी आनेवाले तूफान की छाया है। यह जो नगर-नगर में टिड्डीदल टूटगे उनका जागरण है।

पहले खून के नाम ! ग्वालियर की समस्त जनता का अभिवादन है। सब तुम्हारे साथ हैं। कोई भी उन ज़ुल्मियों के साथ नहीं है। तुम्हारे लाल खून से हमने अपने आज़ादी के संग्राम का झंडा रँगा है।

दूसरे खून के नाम ! सारे भारत के मजदूर तुम्हारे ऊपर इस घोर अत्याचार को देख जाग उठे हैं। सारे किसान इसको सुनकर क्रोध से होंठ चबा रहे हैं।

चारों औरतों के खून के नाम ! झाँसी की रानी की कसम, वह मिट्टी भी चंदन है जिसपर तुम्हारा खून गिरा है। तुमने रोटी के लिए ही जान नहीं दी, तुमने उस दुनिया को बनाने के लिए जान दी है, जिसमें इंसान इंसान का खून नहीं चूस सकेगा।

उदासी नहीं है आज जनता के मुखों पर। जैसे एक चुनौती है कि यह खून भी हमें याद रहेगा। एक गरज है कि इस कुर्बानी को हम कभी नहीं भूलेंगे। एक तड़प है कि हैवानियत के इस कठोर जाले में छटपटाती हुई इंसानियत की यह लड़ाई भी हमें याद रहेगी। हिंदुस्तान की नसों में आज बिजलियाँ दौड़ रही हैं।

जिंदा बचे रहने वाले सुन रहे हैं कि उन लाशों का भी एक पैगाम है। उन झोंपड़ों और क्वार्टरों से आवाज़ आ रही है। लगता है, झाँसी की रानी फिर अपनी समाधि पर जिंदा होकर बैठ गई है और अपनी तलवार माँग रही है। सौदागरों, व्यापारियों, सामंतों और साम्राज्य-वादियों से लड़ने के लिए उसकी रगों में खून लहरें मार रहा है।

सारी दुनिया का पाप एक तरफ है, सारी दुनिया की इंसानियत एक तरफ है। आज सिर्फ खेमे हैं। और दोनों लड़ रहे हैं। मगर जंगजू मजदूरों की तरफ वे सब मास्टर, दूकानदार, नौकरपेशा और वे सब सताये हुए लोग हैं, जिनको मुट्ठी भर दाने के लिए सुबह से शाम तक बेइज्जत

जिन्दगी बितानी पड़ती है। वे सब हैं, जिनके बच्चों का धूल का बिस्तर है।

पूँजीवादियों के हाथ में बंदूक है। हम निहत्थे हैं। मगर हमारी एक कितनी भयानक बारूद है, यह ग्वालियर दिखा रहा है। कातिल गुफाओं में छिप जाना चाहता है. मगर आज पहाड़ों के दिल भी उनके लिए बन्द हैं।

रात के ग्यारह बज रहे हैं। रात की चाँदनी में कुहरा सघन होता जा रहा है। ठंड से सिकुड़ती हुई अँधेरी कभी काँपती है, कभी फैल जाती है। मुझे उन लोगों की याद आ रही है जिनके तन पर इस ठंड में एक भी कपड़ा नहीं होगा और वे काँप रहे होंगे और उनके बच्चे ठिठुर रहे होंगे······

सिर फटा जा रहा है मेरा······

रेल हवा को चीरती हुई भाग रही है, जैसे संसार की अदम्य जनता अभी तक रुकी नहीं थी। वह बराबर भाग रही थी।

रेल में एक ही सनसनी है। लोग बिड़ला को गालियाँ दे रहे हैं। वह बूढ़ी औरत आँसू पोंछ रही है। मरने-वालों में कोई उसका सगा संबंधी तो न था, लेकिन असल में वे सब सगों से भी ज्यादा हो गये हैं। आज वे सब अपने हो गये हैं। गुलामी, भूख और अत्याचार की नापाक धरती पर आजादी, अमन और बराबरी का खून फैल गया है। इसे कोई इंकार नहीं कर सकता। बंगाल को शहीदों की लाश आज जिंदा होकर इन मुनाफाखोरों और नाजचोरों की तरफ उँगलियाँ उठाकर अपने खून का बदला माँग रही हैं। करोड़ों के दिल आज उबल रहे हैं, भाप बन रही है···भाप से लोहा दौड़ने लगता है···

आगरा पास आ रहा है। साम्राज्यवाद का मजार पास आ रहा है. लेकिन आज मजार पर भी आदमी जाग उठा है, क्योंकि वह अपने अधिकारों, अपने हकों के लिए लड़ने उठ खड़ा हुआ है। उसकी भी वही माँग है जिसको सारा हिन्दुस्तान माँग रहा है।

अनेक नक्षत्र धुँधले धुँधले टिमटिमा रहे हैं। दबी हुई, मगर हल्की वायु चल रही है जैसे केवल शरीर को सुख स्पर्शमात्र देने के लिए।

नगर में चारों ओर हलचल है। दीपमालिकाओं ने जगमगाती शृंखलाओं से समस्त नगर को बाँध लिया है। आकाश में देखते-देखते अद्भुत रूप निखर आया है। दो सर्चलाइट को फेंक कर एक विराट V (वी) जग मगा रही है। ब्रिटिश साम्राज्य की तेज चमचमाती तलवारें जैसे महा नगर के ऊपर फिर झूल रहीं हों; एक साम्राज्यवाद के मजार पर दूसरे साम्राज्यवाद ने दीपक जलाये हैं।

ताज पर टिमटिमाते दीपक जल रहे हैं। उनकी मन्दस्मिति से संगमर्मर स्निग्ध सा मुस्करा रहा है जैसे किसी सुन्दरी स्वच्छ के कपोल पर स्वर्ण का कर्ण-भूषण हिल रहा हो। दूर किले पर दीपमालाएँ हवा में काँप रही हैं। उन शिखाओं में प्राण हैं। वह चल हैं, बिजली की बत्तियों की भाँति प्राणहीन आँखों से वे पथराई दृष्टि से नहीं घूरतीं।

सड़कों पर घुड़सवार सिपाही घूम रहे हैं। जैसे ज़ार के समय कज्जाक लोग पहरा दिया करते थे। उस मैदान में जहाँ स्वतन्त्रता माँगने वालों पर कई बार गोलियाँ चल चुकी हैं आज आतिशबाजी हो रही है। यह लन्दन की छाया है, यह मास्को का अपमान है। किन्तु इसका एक और सत्य है।

बर्लिन पर अब भी अंगार बरस रहे हैं। किन्तु बर्लिनवासियों ने मनुष्य को गुलाम बनाने का प्रयत्न किया था, हमने आज़ाद होने का। और साम्राज्यवाद का कोढ़ आज छिपने से इन्कार कर रहा है। बाजार की जगमगाहट से आँखें चौंध रही हैं। सामने से फौजें गुजर रहीं हैं। इन सेनाओं में एक नहीं, दो नहीं सैकड़ों मनुष्य हैं। जातियाँ हैं। किन्तु खाकी पहन कर वह एक हैं; उन्होंने बर्बरता से युद्ध किया है। पेट के लिए, उन्होंने बर्बरता के चरण अपने केशों से बाँधकर दृढ़

किया है पेट के लिए। उन्होंने परदेशी बर्बर को मारा है। आँख बन्द करके उन्होंने अपने देशवासियों को कुचला है, आँख खोल कर।

आज वह प्रसन्न हैं। अधिकांश इसलिए नहीं कि फासिस्टवाद का राक्षस नष्ट हुआ, किन्तु इसलिए कि वह जीवित रह गए हैं, जिनका जीना और मरना, अंधी सत्ता है; गुलामी है। फिर भी उनमें असन्तोष है। इस साम्राज्यवाद से वह भी नफरत करते हैं। घृणा करते हैं, कि इससे बढ़कर अंध, कलुष और पाप इस संसार में नहीं है।

ट्रक्स पर बैठ कर अमरीकी हँस रहे हैं, अंगरेज टामी धक्के देकर चल रहे हैं। जाट, सिख, डोगरा, मद्रासी......दहशत से बाजार भर गया है। वेश्याएँ उन्हें ऊपर से ललचाई आँखों से देख रही हैं। यह गुप्त सम्राट की वाहिनी नहीं है, न यह विजई अकबर की सेना है। यह ब्रिटिश साम्राज्य की सेना है। सैनिकों की हुंकारों से नगर काँप रहा है। विक्षुब्ध भूमि भारी जूतों के प्रताड़ित होकर दहल उठी है। वाद्य ध्वनि से इमारतें हिल उठी हैं। वायु में घोर कोलाहल भर गया है जिससे इन्द्रियाँ स्तब्ध हो गई हैं। और वही भयानक निर्घोष करती पगध्वनि एक लय और सम पर लेफ्ट-राइट करती जनता की आँखों को तीखा बना रही है। साम्राज्य का प्रतीक हाथ उठा दे तो संसार ठहर जाए। हाथ गिरा दे तो फिर से सब चल उठे'। इतनी शक्ति, इतना वैभव। मैं इस वैभव पर और अच्छा लिखता काश मैं उनका गुलाम होता, काश मैं किप्लिंग या कोई रायसाहब होता, काश मैं एक कुत्ता होता। लेकिन इस झूठ से नफरत करना मुझे उन्होंने सिखाया है जो दीप बनकर अँधेरी जेलों में भीतर जगमगा रहे हैं, जिनकी शृंखलाओं की झन झन इन किसी भी सेनाओं की भीषण पगध्वनि से अधिक मेरी है।

आज भारत भर में यही तूफान उठ रहा है। राजाओं और महाराजाओं का यह ऊधम आज तलवार बनकर गरीबों पर झूल रहा है। इतिहास का यह एक दिन आज नहीं युगों तक संसार याद करेगा।

संसार को दिखाया जा रहा है कि भारत आज हर्ष से पागल हो उठा है कि इतना हर्ष उसे तब भी नहीं हुआ था जब जलियाँवाला बाग में हत्याकाण्ड हुआ था, जब भगत सिंह को फाँसी लगी थी, जब सन् ४२ में निहत्थों पर, निरपराधों पर, गोलियाँ चलीं थीं।

भविष्य के इतिहासज्ञ जब इस दिन की वास्तविकता पर खोज करेंगे तब यह देख लेना काफी होगा। मैं प्रचार नहीं करता। सत्य को कहना प्रचार नहीं है। आज मेरी वाणी पर रोक है। इसी से पूरी बात नहीं कह सकता, क्योंकि वह आग है—उस में खून है, ताजा खून—जो अभी काटकर बहाया गया है।

× × ×

मैं देख रहा हूँ।

दर्जियों के कारखानों में धुंधलका है। फौज के लिये यहाँ कपड़े सिलते हैं। मशीनों की खड़ खड़ सुनते सुनते मनुष्य स्वयं मशीन हो गया है। उसे कोई आराम नहीं है, उसकी मशीन बिचौले ठेकेदारों के कब्जों में है। कपड़ा सिलता है, किन्तु मनुष्य का सुख फटता चला जाता है। गंदा सा नसीर काज सीते सीते बोला—"अँमा उस्ताद! देखो सालों को! कैसा ढोल बज रहा है।"

उस्ताद ने पैरों का चलाना रोककर कहा :—"हमने फौजों के लिए इतने कपड़े बनाये मगर हमें छुट्टी तक नहीं मिली।"

नसीर हँसा। बोल उठा :—"तो उस्ताद! समझे ये दर्जियों की जीत हुई है, अब तो और भी कुचलेंगे!"

उस्ताद ने सीना दबा कर सिर उठाया और पैनी आँखों से देखते हुए कहा—"कुचलने में कोई कसर की है! लेकिन अबके दिन कुचलेंगे, हिटलर ही कै दिन चला?"

उस्ताद के पैर चलते हैं। पहिया घूमता है, मशीन चलती है कपड़ा सिलता है। वे दुनिया के नंगे बदन को ढँकते हैं। आप नंगे

बदन रहते हैं। वे गाँव से अकेले आये हैं, पेट के खातिर बीबी दूर, बच्चे दूर, और, और तीन साल तक मशीन की तरह काम करते करते उनका हाजमा बिगड़ गया है। दवा कराने को महगाई है। और कारखाना चल रहा है, शहर खुशियाँ मनाने का स्वाँग हो रहा है। सड़क के एक किनारे ही एक काछिन रहती है। उसका एक बेटा है। वह फौजी कपड़ों में काज बटन टाँगता है। एक कमीज के दो पैसे मिलते हैं।

और भगवती जो कि बूढ़ी थी, आज रात को उसने आँख फाड़ कर देखा और अस्वीकृति से सिर हिलाया। उसका विश्वास और उसके हृदय की अनुभूति से सशक्त नहीं था। सच ही उसने इतने बटन टाँके थे, वह जो फौजी हैं, शायद बहुत से उसी के हाथ के बनाये कपड़े पहने हैं। लेकिन वह आज भी अकेली है। अब कुछ दिन बाद बटन लगाना भी बन्द हो जाएगा। लड़ाई के बाद क्या खायेंगे ?

उसने निराशा से आकाश की ओर देखकर परमात्मा की खोज की, किन्तु बिचारा परमात्मा नहीं दिखाई दिया। उसी समय सिपाही ने रुक कर कहा—"ए बुढ़िया ! दिये जलाये ? सरकार का हुकुम नहीं माना तूने !" उसके कठ र स्वर को सुनकर भगवती काँप उठी। कहा, "जमादार ! तेल तो मिलता ही नहीं !"

जमादार हँसा। उसने कहा—"तुम लोग ! तुम्हें लड्डू बँटा, कपड़ा बँटा, मगर तुम क्यों मानोगे सीधे ढंग से, जब तक हंटर न पड़ें तुम्हारे ! दिये तक सस्ते करा दिये।"

बुढ़िया ने रिरिया कर कहा :—"भैया ! रोटी भी मुश्किल से होती है। हम गरीब हैं। यह तो अमीरों का काम है।" सिपाही चिल्ला उठा :—"अरी गरीब की बच्ची ! गरीब थी तो सड़क के किनारे घर क्यों लिया था ! दरोगा जी देखेंगे तो क्या कहेंगे ? कहीं से जला नहीं तो देख लीजो।"

बुढ़िया भीतर गई। साग बनाने का बचा हुआ तेल डाल कर दिया जला दिया। सिपाही चला गया और भगवती विक्षोभ और अपमान से विजय के दीपक को देखती रही।

× × ×

और वे देश भक्त बनते हैं।

लाला रामचरन की विराट अट्टालिका पर सहस्रों दीपक जगमगा रहे हैं। उन्होंने आज कसम खाई है कि शहर में उनसे अच्छी सजावट कोई नहीं कर सकता। बाहर बैंड बज रहा है। विशाल कतारों में दीपक साजे धरे हैं। पेड़ों में रंग बिरंगे बिजली के लट्टू हैं। चारों ओर दिन का सा उजाला छा गया है जैसे कोई बड़ा भारी उत्सव मनाया जा रहा हो। लोग सड़क पर खड़े देख रहे हैं। उनके घर के सामने ही सड़क पर जगह जगह बने बड़े बड़े दरवाजे हैं। इस देश में। इस देश में गांधी-द्वार, जिन्ना-द्वार, चर्चिल-द्वार, और वावेल-द्वार है। उन पर थान के थान कपड़े लपेट दिये गये हैं।

दिल्ली में साम्राज्यवाद की स्वीकृति यज्ञ हुआ था जिसमें अनेक मन अन्न की आहुति दी गई थी। उस समय बंगाल भूखा मर रहा था। आज विजय के इस यज्ञ में कपड़ा लट्ठों पर मँढ़ा गया है, जबकि देश के लोग नंगे फिर रहे हैं और गान्धी टोपी की आड़ लेने वाले व्यापारी, गान्धी की आत्मा को कुचलने वाले यह अत्याचारी कपड़ा बचा हुआ अपनी गद्दी के नीचे दाबे बैठे हैं। क्रोध के अतिरिक्त मेरे मन में कोई भाव नहीं रहा है।

राह किनारे दो सिपाही खड़े हैं। वे साम्राज्यवाद के पुर्जे हैं। उनकी बात सुनकर मैं ठिठक गया। एक ने कहा—"यार! यह तो कांग्रेसी है। फिर इसने दीये कैसे जलाए हैं?" दूसरे ने कहा, "—कांग्रेसी तो नहीं है। हाँ उनकी तारीफें जरूर करता है। चन्दा भी देता है मशहूर होने को।"
"चन्दा देता है?" पहले ने चौंक कर पूछा—"चन्दा कैसे दे देते हैं

यह लोग ? भाई, हमारी नौकरी अच्छी। तनख्वाह कम है तो कम ही सही, मगर देने की इल्लत तो नहीं ?"

दो नों हंसे। और मैं चल पड़ा हूँ। लाला रामचरण कांग्रेस को भी चन्दा देते हैं, सरकार को भी रुपया देते हैं, मन्दिर भी बनवाते हैं। उनके एक मित्र ने जिक्र किया था कि वे लड़ाई बन्द होने के सख्त खिलाफ हैं। उनको अत्यन्त लाभ हो रहा है।

यह लाभ करोड़ों की भूख है। करोड़ों की मौत है। मनुष्य का मर जाना उनकी दृष्टि में इतना बड़ा नहीं जितना एक पैसे का बिना यश के हाथ से निकल जाना। मैं पूछता हूँ क्या यह मनुष्य है ? विदेशी सरकार होने का बहाना करके जो भयानक से भयानक पाप करने से नहीं हिचकिचाते, क्या वे क्षमा करने योग्य हैं ? इन लोगों से घृणा करना मनुष्य से घृणा करना है।

वह दिन दूर नहीं है जब इन गाथाओं को पढ़कर मनुष्य बार बार क्रोध से विक्षुब्ध होगा। एक एक बात हमारे रक्त से लिखी है। यह परम्परा का युद्ध आज का नहीं। कल हमारे पिता ने लाठियाँ खाई थीं। उनके शरीर का एक एक घाव साम्राज्यवाद के कफन-बक्स की एक एक कील है। परसों हमारे पितामह ने सिर उठाया था। उस समय वैभव कहीं अधिक था। साम्राज्य कहीं अधिक चतुर और उच्छृंखल था। आज वह सब कुतरा से उड़ चुका है।

नगर का कोलाहल गूंजता जा रहा है, जैसे आज दीवाली हो। मालिक के विवाह पर जैसे कुंआरे नौकर को जबरदस्ती से खुशी मनानी पड़ती है, उसी तरह साम्राज्यवाद के साथ भारत को भी प्रसन्नता दिखानी पड़ रही है। फिर भी इन दीपकों में आग है। यह वही आग है जो हर जगह भयानक है। जिसका रूप भी नया है, जैसे चमकते रंगों से ढँका साँप फिर भी साँप है, विषधर जो अपमानित होने पर फुफकार

करता है, और जिसके काटे का कोई इलाज नहीं। जैसा कि इटली के वीरों ने दिखा दिया है।

इस अन्धकार में भी मेरी आँखों में प्रकाश है। इस घृणा में भी मेरे हृदय में प्रेम है क्योंकि जानता हूँ कि इन दीपकों के नीचे अन्धकार है। करोड़ों मनुष्य भूख से व्याकुल होकर तड़प रहे हैं। इतिहास चल रहा है, उस के अंग चालन में कितने-कितने महान् परिवर्तन हो रहे हैं। अविश्वास ही इस विकृत प्रेम का मूल कारण है। गुलाम की ढाल पर शासन के दण्ड की तलवार टकरा उठी है। इससे जो अंगारे निकले हैं, वह दीपक बनकर चमक रहे हैं। यह ढाल वही है जो स्टालिनग्राड के निवासियों ने उठाई थी, जो सन् ४० की बमबारी में ब्रिटेन की जनता ने उठाई थी, जिसको उठाकर ही फ्रांस स्वतंत्र हो सका। आज का यह पल कितना कठिन है; कितना उन्माद आज चारों ओर हाहाकार कर रहा है!

विजय का यह उल्लास भारत का अथाह विषाद है। इसमें शक्ति का वरदान नहीं, दुरुपयोग है। हिटलर का अन्त साम्राज्यवाद के प्रबल प्रतीक का अन्त है। सिंह मर चुका है। दो मुँह मार अपने आपको यदि गीदड़ ही सिंह का हन्ता समझ ले तो उससे बढ़कर हास्यास्पद कुछ नहीं। साम्राज्यवाद की मृत्यु पर साम्राज्यवाद आनन्द मना रहा है। वह समझता है कि आज का युद्ध भी केवल दो राजाओं का अभिमान है, उन्माद मात्र है। एक की पराजय से दूसरे की विजय का यह भ्रम केवल स्वार्थ का बन्धन है, इतिहास की असलियत को देख कर फिर इन्कार करना है। किन्तु जहाँ व्यक्ति और समाज का समन्वय है वहाँ आँखें मीच कर दुनिया को "नहीं है" कहकर निस्तार नहीं हो सकता।

यह विजय मनुष्य की विजय है, जन समाज की विजय है, साम्राज्यवाद की नहीं। साम्राज्यवाद की वेश्या ने आज दीपक जलाए हैं। किन्तु वह भूल गई है कि घरों को उजाड़ने वाली पापिनी अब अधिक

जीवित नहीं रह सकती। इतिहास का चरण कभी नहीं रुक सकता। वह उठता चला जा रहा है। विकास के इस क्रान्ति पथ पर हर अवस्था से मनुष्य मुक्त हो रहा है। यह जनता की विजय है। येरोप की जनता मुक्त हो रही है, क्योंकि अब वहाँ अत्याचारी के विरुद्ध एक मोर्चा है, एक शक्तिमय हुँकार है, जिसके सामने फिर वही क्रूर इतिहास सिर उठाने का साहस नहीं कर सकता।

चट्टान खड़ी है। समुद्र की अनेक लहरें टकरा चुकी हैं। केवल फेनों से बार बार तीर ढँक जाता है। यह अंधकार की लहरें ऐसे ही टकराती रहेंगी किन्तु चट्टान कभी नहीं गिरेगी। क्योंकि इस पर आकाश दीप लटका है, क्योंकि इस पर एक प्रकाश स्तम्भ है। एक एक बलिदान एक एक ईंट है। हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ पर जो आँधी चल रही है, उसने भले ही भूखा मार दिया हो किन्तु क्या वह उसकी मनुष्यता को छीन सकी है? सिर उठाकर जिन्होंने संसार का सिर झुका दिया है कि आज साम्राज्य की झूठ मुर्दे की तरह सफेद होकर सड़ने लगी है।

× × ×

चंगेज ने अपनी तलवार क्रोध से उठाली और तड़प कर प्रहार किया, किन्तु पत्थर तो क्या काठ भी न कट सका। उसकी भौहें तन गईं। वह जिन्हें देख कर करोड़ों मनुष्य थर्रा उठते थे, जिसमें देश प्रेम लहरों की तरह उठते थे, गिरते थे-आज वह व्यर्थ हो गई थी। किन्तु हृदय नहीं माना। उसने भीषण गर्जन किया और अपनी समस्त शक्ति से फिर प्रहार किया।

किन्तु तलवार झनाकर टूट गयी और चंगेज मूर्छित होकर वहीं गिर गया······। आधी रात बीत गयी। देखते ही देखते प्रकाश की वह विराट ( वी ) मिलकर क्षीण होती हुई एक रेखा बन गई और अंधकार में लय हो गई। तारे मन्द पड़ गये।

भोर पास आ गई थी।

# उपचेतना का तांडव

गीत के शब्दों में चमत्कार नहीं, छन्दों में नहीं कि मैं ध्यान लगा कर सुन रहा हूँ। पड़ोस के गड़रियों में लड़का ब्याह करने गया हुआ है। अतः बिरादरी की स्त्रियाँ मिलकर मंगल मना रही हैं। इनका स्वर टूटता नहीं वरन् लाकर उसे पीछे खींच लेती हैं जैसे लहरें एक बार भी तीर पर बिखरने के समय भी अपने पीछे की अथाह जलराशि से मिली होती है।

मैं सुन रहा हूँ—

हे ढोला! तेरे द्वार पर गोरी आयी है, सारा शहर सो रहा है, आधी रात में बाजार सड़क सब सोये पड़े हैं।

अपने पति को वह छोड़ आयी है, छोड़ आयी है 'ललन पड़े पलने आधी रात।'

तू किस चिन्ता में पड़ा है, वह बड़ी आस से नारंगी लेकर तेरे दुआर पर आधी रात को आयी है, हे ढोला! नाजुक तेरे द्वार पर आयी है।

तू उठ कर देख रहा है। पीछे तेरी ब्याहता कितनी भूली हुई सो रही है, तू दोनों ओर क्यों भटक रहा है? और आधीरात को गोरी दुआर पर खड़ी राह देख रही है।

तू चल रहा है। उसको छोड़कर जो तेरी बहू है, जो पंचों की वानी

है, वह तो रो-रोकर जान दे देगी। शहर, बाजार जागकर क्या कहेगा? सदा तो यह आधी रात नहीं रहेगी!

उसका क्या, वह तो पति और बालक को छोड़ आई है। पर तेरा मन तो तेरे हाथ नहीं है। हे ढोला? आधी रात में तेरे द्वार पर गाड़ी आयी है।

कितनी भारी वेदना छिपी है। लेकिन अब मेरा दिमाग मेरे हाथ में नहीं है। नशा चढ़ रहा है। जानता हूँ, धीरे-धीरे मैं बेकाबू हुआ जा रहा हूँ।

यह बिस्तर है। इस पर पड़ा रहूँ। पिला दी है सोना ने शाम को घोटकर। वह पुराना पियक्कड़ है। अपने हिसाब से तो उसने मुझे हल्की ही दी है लेकिन कितनी तेज—जैसे सिर कहीं ऊपर भागा जा रहा है, गला सूख रहा है, मन करता है कोई रबड़ी लाकर तर कर दे इसे............

नशे की ज्वाला को दुलार देने के लिए वैभव की आवश्यकता है...

एक करवट............

गीत चल रही है। सुनायी पड़ता है, साफ़-साफ़, पर शायद मैं भूल रहा हूँ, भूल नहीं सकता.........मैं क्या कोई नशे में हूँ? मैं तो सुन नहीं रहा हूँ.........गीत......क्या यह गीत है.........माया... .........भ्रम.........

अरे मैं तो बिस्तर पर हूँ।

हट पागल! आसमान में उड़ सकोगे मेरी तरह? बाबा बमभोले की कसम। दुनिया को उल्लू बनाने की सबसे अच्छी तरकीब है अपने आप को उल्लू बनाकर बेधड़के झूठ बोलना। जितने हाथ आज पड़ेंगे, कल वे सब त्याग और तपस्या में गिन लिए जायेंगे.........

'मौज करने के लिए है दुनियाँ। तो हम भी अब चंद्रकला से कह ही देंगे कि अब तो तुमसे प्रेम करने लगे हैं।'

चंद्रकला प्रेम के पहले ब्याह की बात छेड़ देती है।

'तुम तो शायद सोचती हो। प्रेम में स्वार्थ नहीं होता।'

'तो साधू, संत प्रेम करें। हमें उससे क्या ?'

'दुनियाँ में चंद्रकला, ऊँची चीजें वही हैं जिनका असल में कोई फ़ायदा नहीं है, जैसे ईश्वर की कल्पना........'

'देखो जी ! तुम अपनी ईश्वर से बराबरी मत किया करो। मैं कितनी दफा तुमसे कह चुकी हूँ।'

सड़क पर बड़ा कोलाहल हो रहा है। मन में आता है, डाँट दूँ। सोने दो जी ! क्या शोर मचा रखा है ! लेकिन कहने की देर कि नशे के साथ ही हम भी विरत हो जायेंगे।

'महात्मा गांधीजी की जय।'

'क़ायदे आज़म जिन्दाबा'........चुनाव का जोश......सड़कों पर तहलका। जिसे देखो, क़ाबू से बाहर हुआ जा रहा है और उधर सिपाही जी एलान कर रहे हैं कि शहर में दफा १४४ लग गई है, पर आधी रात तक बराबर भीड़ें टूट रही हैं........गरजती हुई टोलियाँ........ सारा शहर काँप रहा है, और हम शेर हैं कि सोच रहे हैं, समझ रहे हैं नहीं पड़ना चाहते बेवकूफ़ियों में, लोग कहते हैं—नशे में है आज।

मैं सोचता हूँ कि मैं अकेला ही नशे में हूँ ! अगर यह सब दुरुस्त है तो मुझमें ही ऐसी कौन सी खराबी है ! वह चिल्ला रहे हैं; मैं यहाँ हँस रहा हूँ।

सड़क पर लोगों के ठट्ठ खड़े हैं। एलान करने वाले का गला भर्रा गया है।

लड़खड़ाती टाँगों से उठकर देखा। लोग जय बोल रहे हैं। जैसे तूफ़ान की प्रतिध्वनि हो रही है। एक दिन भी चैन नहीं लेना देना चाहते। नशे से चूर दिमाग़ी के ऐश से सारा हाहाकार आकर टकरा

गया, और शीशमहल खंड-खंड होकर गिर जाना चाहता है, झन-झना कर, जैसे वह व्यर्थ था, उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

सिर पर से आँधी गुजर गई। आंख खोलकर देखा अब वह मोटर चली गयी है। फिर भी मन पर पत्थर रख गया है वह कमबख्त।

मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

मुँह से निकल गया—'मुन्नी तेरी किताब में झूठ लिखा है......'

मुन्नी अवाक्। भिखारी की गिड़गिड़ाहट। जैसे आज के जीवन में इस यातना से कहीं छुटकारा नहीं, हटाओ भी। इस वक्त क्या कमबख्ती की बातें सोच रहा हूँ। बेवकूफ ने मजा किरकिरा कर दिया। पी होती तो पता चलता, क्या आता है।

कहा—'जाओ, जाओ आगे जाओ! कहीं और जाओ।'

भिखारी चला गया। मुन्नी गुस्सा हो गयी। बोली—'परमात्मा नहीं देते, तुम भी नहीं दे सकते हो? पढ़ाओगे नहीं?'

यह नई बला। कहा—'आज पढ़ना जरूरी है?'

मुन्नी ने यह प्रश्न नहीं सुना। किताब खोलकर पढ़ने लगी—परमात्मा ने सबको पैदा किया है। वह सबको एक दृष्टि से देखता है। वह सबको रोटी देता है........

मुन्नी ने एक साँस ली। इसी समय बंगले पर किसी का मुख दिखाई दिया। सूखा सा। मैंने देखा और मुस्कराकर पूछा—'क्या है? कौन हो?'

'बाबू भूखा हूँ।'

मुन्नी ने मेरी ओर देखकर कहा—'भैया! इसको परमात्मा रोटी नहीं देते?'

'क्या चाहता है वह?'

मैं इस समय कुछ भी सोच नहीं पाता। मेरा मजा मुझसे कोई छीन लेना चाहता है। लेकिन मुझे इस मस्ती से बढ़कर और कुछ नहीं।

बनी रहे यह, फ़ुनवी ऐयाशी की यह सल्तनत, उन सबको हटा दो जो मेरे नशे के वैभव को छीन लेना चाहते हैं.........

आकर लेट गया।

स्वर्ग में यदि कोई जा सकता है तो मेरे अतिरिक्त............ त्रिशंकु.........

एकाएक किसी ने कमरे में स्विच जला दिया। देखा। मुन्नी हाथ में प्राइमर लिये खड़ी है।

'ओ भैया!' वह पुकार उठी। तुम सो रहे हो।

तब नशे में भी जीवन का एक बड़ा सत्य उस नन्हें मुँह से सुना था कि आदमी ही आदमी को परमात्मा का माया-जाल बिछा कर भूखा मारता है।

'मुन्नो! तू जा!'

मुन्नी उठ गयी। उसके प्रश्न का उत्तर नहीं मिला था। उसे केवल डाँट दिया गया था। उसके साथ अन्याय किया गया था। लेकिन बेचारी बच्ची है। कल जब बड़ी हो जायगी तो वह भी यह करने को मजबूर हो जायेगी। अगर आदमी दूसरों के दुख दर्द को अपना समझता रहे तो उसे शायद जीवन में हँसने का एक पल भी न मिले।

एक करवट! बाहर कोई गा रहा है......

मोरे सजन आ जा......आऽऽजा जा......आजा!

शाबाश! क्या गीत है! वाह! मन फिर काँपने लगा है। कैसी घूम रही है सारी दुनिया। कीली पर घूम रही है दुनिया, दुनिया के चारों तरफ़ हवा घूमती है वेग से, भारावृत सघनता तल से मीलों उठ गयी है, फिर भी तारे दिखायी देते हैं।

किसी ने द्वार खटखटाया। शायद कोई सुन्दरी राजकुमारी होगी। द्वार खोलकर देखा, एक फटे हाल राजनीतिक कार्यकर्ता खड़ा है। दुनियाँ भर का ग़म लिये फिरते हैं जनाब, दो कौड़ी के आदमी। कोई

सुनता इनकी मगर यह है कि कभी झंडा लेकर चिल्ला रहे हैं कभी आँसू लेकर चिल्ला रहे हैं। मजदूर! मजदूर!! पिला दो कमबख्तों को, फिर देखें क्या होता है!

'ए!' वह बोले—'क्या कर रहे हो! चलते हो घूम आयें?'

'एँ, क्या?' मैंने पूछा।

लेकिन वह मौत की तरह आये थे। जहन्नुम में खींच ले गये। सोच रहा था कि कायस्थों के पूर्वज चित्रगुप्त जी कहीं चश्मा लगाये खाते देख रहे होंगे। चित्रगुप्त जी के स्थान पर मोटा बनिया दूकान पर बैठा है। वह बही देख रहा है। सारी दुनिया के आदमी नुमा कीड़ों का वह भाग्य निर्णय कर रहा है। किसी को आधा पेट खाकर जीवित रहने की गुलामी।

शायद वह भिखारी आजाद हो चुका था। पुरानी जन्म की तपस्या भंग होने पर फिर सांसारिक कृत्यों के पाप में उलझने के लिए रोटी माँग रहा था मूर्ख, जैसे पुराकाल में कोई था जो शापग्रस्त होकर मुर्दे खाता था और वह मुर्दा सदा उसी की सूरत में आता था। वह खुद लाश खाता था.........

भाव तो है, पर वह आत्मा का नहीं। सामानों का हो गया है।

अमरीका अपना घोड़ा छोड़ सकता है, इंगलैंड अपना टट्टू छोड़ सकता है, हिन्दुस्तान का गधा अभी बँधा हुआ खड़ा-खड़ा सोच रहा है, कौन जाने परलोक में क्या क्या होता है.........

अश्वमेध होगा तो हम क्या करेंगे! अगर घोड़े के पीछे ढोल नहीं बजेंगे तो.........

सिगरेट की दूकान है। एक लड़का दिये की हिलती रोशनी से तसवीर बनाना चाह रहा है। नया हाथ है। कुछ तड़प जरूर है उसमें।

'बाबू भैया', मुझसे कहा—'ओ जरा देखना। ठीक बनी?'

देखा आदमी और औरत की सूरतें गुलाम ईश्वर दोस्त ! मैं दुनियाँ की शराफत देखता हूँ।

लेकिन मैं सोचता हूँ—संसार उसे कुत्ता कहता है, जूठन खाने वाला, गंदा गलीज........वह मजदूर है कि साधु है कि दानी है कि महा पंडित है कि अघोरी !!!

आज तक का इतिहास इसका उत्तर नहीं दे सकता। अलबेरूनी की किताब में इसका जिक्र नहीं है, सारी अलिफलैला में नहीं है.........

कैसा रहा होगा वह उड़ता हुआ कालीन......

पुराने ज़माने में राजा-महराजाओं के प्रेम पर लोग कविताएँ लिखते थे, आजकल अखबारवाले कार्टून छापते हैं। बात यह है, भक्ति नहीं रही। भाव नहीं रहा। उमर खय्याम का मदिरालय।

हे राजन् ! तपोवन का मृग भी अवध्य है।

स्वीकार करता हूँ महर्षि।

मृग चला गया है। दुष्यन्त और शकुंतला हाथ मिला रहे हैं। पटाक्षेप। तालियाँ। बड़े खुश दृश्य। बदलता है।

दुनिया के लोग चल फिर रहे हैं। सड़क के बीचोबीच कुत्ता पड़ा है ! मैंने कहा—'क्यों भाई बेवकूफ़ ! बीच में क्यों पड़ा है। यह क्या साधू-सन्तों की तरह आँख मींच कर ठलुआ पड़ा है ! दुनिया का रास्ता रोक रहा है।'

कुत्ते ने दुम हिलायी और अगले पैरों को खड़ा कर के बैठ गया। बोला—'मेरे या बंदरों या कछुओं की तरह उसके पेट भरने के लिए टुकड़े तोड़-तोड़ कर डाल देने चाहिये।'

रात की अनोखी बहार है। हवा में किसकी लैला सुबक रही है। मेरी जान ! तुम कहाँ हो ? अंधेरा यशोधरा बनकर मेरे राहुल को आज

चिथड़े-चिथड़े कर देना चाहता है क्योंकि जीवन की विकृति उसके भाल कुटिल रेखाएँ खींच रही है।

संस्कृति का वक्षःस्थल फाड़ कर निकाल लिया है किसी ने। अधिकार तो किसी को भी हो सकता है। स्वर्ग और-नरक के बीच की पृथ्वी का न्याय कोई नहीं दे सकता।

सुख पाने की यह निन्दित भावना भारत का प्राचीन तपोवन नहीं सह सकता। अतः दूर जंगल आबाद हो गया है। मस्ती भयानक! लाला के शरीर पर एक चमक है जैसे........जैसे तलवार का दुधारा या कुत्ते के दाँतों का चमचमाता स्वरूप...

'कहाँ जा रहे हैं आप?' मैंने पूछा।

'चलो भी जरा एक सिगरेट पियेंगे, एक पान खायेंगे।'

कितनी ममता है व्यक्ति को अपने सुख से। हमारी संस्कृति पर कितना भारी कुठाराघात हो रहा है। कमबख्त उस देश में सिगरेट का नाम लेता है जहाँ इंसान को रोटी नहीं मिलती! लेकिन इसकी नजर में एक सिगरेट पी लेने का मतलब शायद सौ गालियों के आसमान को धूएँ में उड़ा देना है। तृप्ति ही भ्रांति को दूर करती है, जैसे कोई बड़ा व्यापारी मंदिर बनवा देता है। मनुष्य का मूल्य क्या है! क्या उसे चींटियों की तरह चुगाना चाहिए। अगर ऐसे आदमी और औरत हो सकते हैं तो राक्षस दुनिया में जरूर हो सकते थे। लेकिन मैं सोचता हूँ कि यह इससे बढ़कर चित्र कभी नहीं बना सकेगा, क्योंकि इसके पास साधन नहीं है। यह किसी धनी का पुत्र नहीं कि चित्रकार या कलाकार कहला सके। यह कभी रेशम का झूलता कुर्ता नहीं पहन सकेगा। यह मुसौव्वर है। पान वाले का बेटा है। कभी भी कोई पढ़ी गुदाज बदन लड़की इसकी ओर रहस्य-भरी आँखों से नहीं देखेगी क्योंकि शायद वह उसी से कह उठे कि मुझे नौकर रख लीजिये...

इसकी कला को हमारी संस्कृति ने वह अधकचरी घृणित यातना दी

है कि यह आदमी बनाना चाहता है मगर बनता है राक्षस......मन के सौंदर्य की कैसी अपराजित रूप छवि है........आत्मा की चरमोत्थित सीमा है...

और बाप को जब मालूम होगा तो गाली देकर टूटेगा कि साला पानों पर कत्था चूना क्या लगाना मिल गया, समझा कि तस्वीर ही बना लेगा! तेरे बाप ने भी कभी तस्वीर बनायी थी? मैं कहता हूँ, भूखा मर जायेगा, भूखा।

ठीक है। संस्कृति और कला का सौंदर्य कुम्भ के मेले की अंध-विश्वास भारी अपार भीड़ है। उसी में एक राजकुमारी है, एक अखंड ब्रह्मचारी संत है। सारी कला इसमें है कि और मर्द का दिल जीत ले।

और भिखारी का स्वर—बाबू! भूखा हूँ।

ठहर जा बे! देखता नहीं, राजकुमारी अपने मृगलोचन इस समय योगी से लड़ा रही है। दूध घी फल खा खाकर योगी का तामस तत्व बिल्कुल मिट गया है। वह हट्टा कट्टा बैठा है। अबे तू भी खाता तो देखता कि धमनियों से रक्त कैसा उफान करता है। मूर्ख! अन्न के पीछे मरते हैं। स्वर्ग जाने से अन्न ही रोकता है। कृधातु का अर्थ कुद पृथ्वी से, कृषि से संबंधित होता है। स्वयं अपने आपको बद्ध रखना चाहता है......कुंभीपाद और अंधतमिस्त्र के प्राणी! एक जरा से तख्त के लिए लड़ता है? आखिर जो उस पर, बैठा है वह भी तो किसी ने सोच कर ही बिठाया है...मर और तड़पकर मर!

मूल लेकर ब्याज भी नहीं चुकाना चाहता! हड्डियाँ मिली थीं तो भगवान ने उन्हें गोश्त के टुकड़ों से मँढा था कि नहीं... ..?

लेकिन योगी लड़खड़ाता है......यह भी मानव की विजय है...... यहाँ मानवता ईश्वर में ऊँची है......

अच्छा योगी नहीं डगमगाता...राजकुमारी राज पाठ छोड़ कर विराग लेती है...भाई वाह! क्या दृश्य है। लोग रो रहे हैं। बड़े-बड़े

महर्षियों का हृदय विचलित हो उठा है। आज आत्मा का परमात्मा से मिलन हो रहा है! यह भी मनुष्य की विजय है।

यार, तू है बड़ा बद्‌तमीज़ यानी हम तुझे इतनी ऊँची-ऊंची बातें सुना रहे हैं लेकिन तू है कि बाबू भूखा, बाबू रोटी.....

धायँ बाँध दी है। जैसे रोटी के सिवाय दुनिया में और कोई काम ही नहीं।

हाँ तो, योगी मुस्कराते हैं। सम्राट का सिर श्रद्धा से झुक जाता है......

एकाएक साथी कंधा पकड़ कर मुझे झकझोर रहा है।

मैंने कहा—'क्या हुआ?'

देखा। भीड़ भाग रही थी। विचार आया। कुंभ का मेला नहीं है। यह भीड़ केवल राजकुमारी का शृंगार वैभव दिखलाने के लिए परमात्मा ने बनाकर छोड़ दी थी। और राजमहल के द्वार पर आ बैठा था।

याद आया। चुनाव हो रहा था।

किसी ने चिल्लाकर कहा—'देखा साले चमारों का हौसला! बराबरी करेंगे ये!'

'अजी देखो!' मिठाई वाले, खिजाब मूंछों पर लगाये हुए लाला ने तड़प कर कहा। पर बात शोर में डूब गयी। जत्थे टूट रहे थे। राजनैतिक युद्ध हो रहा था। एक भीड़ इधर से चिल्लाती हुयी भागती थी। पत्थर चलते थे। माँ बहिन की गालियाँ चलती थीं और कट्टर संघर्ष था। कभी-कभी चीत्कारों से आस्मान फटने लगता था। चमारों के दो दल थे। एक गांधी का, एक गांधी का दुश्मन। मुसलमानों के दो दल थे, एक-एक चमारों के दल के साथ मिले हुए।

भयानक नारों से आस्मान और ज़मीन एक हो गये। मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है। ऐसी सनसनी में मन हँसना चाहता है।

एक ईंट उठा कर मारी किसी ने। पटाक से खोपड़ी टूट गयी। शाबाश पट्ठे! कमाल कर दिया। और खोपड़ी की कीमत थी ही क्या।

बढ़े रहो! हटना मत! जमीन पर खून टपक रहा है। कसम से इससे बढ़कर चीज और क्या हो सकती थी!

एक भीड़ दौड़ी। दे ईंट, दे ईंट! हट गये पीछे। अब दूसरी आयी। कोई जैसे आजादी की आँखमिचौनी हो रही है।

एकाएक सारा आस्मान लाल हो उठा। किसी ने पीछे से जाकर चमारों के घरों के छप्परों में आग लगा दी। औरतें बच्चे भयानक चीत्कार करते हुए बाहर भागने लगे। धुँए के बादलों का गुब्बार उमड़ आ रहा है। लगता है जैसे तांडव करते नटराज की अलकराशि खुलकर काँप रही हो।

कवि तो मैं हूँ। क्या उपमा दी है इस वक्त! अगर नीरो की जगह मैं होता तो रोम में आग लगा कर महाकाव्य में भी लिखने का प्रयत्न करता। बात यह है कि फिर मैं अमर हो जाता।

अमर! दूकानें तो फटाफट बन्द हो गयी हैं। सामी कहीं भीड़ में घुस कर चिल्ला रहा है—मत लड़ो। कैसा बेवकूफ है। यह आदमी नेता कभी नहीं हो सकता। अरे, जब मारपीट खत्म हो जाय तब ही कह ले आकर, अगर कहे बिना जी नहीं मानता। मूर्ख सांडों की लड़ाई में घुस गया है। अरे, तुझे ही ऐसी शांति करानी है। पुलिस भी तो है। इस वक्त तुझे कहां दीख रही है! लेकिन थोड़ी देर बाद देखना पहरा लगा होगा, अमन हो जायेगा। ऐसे ही काम करना चाहिये, जरा हाथ पाँव बचाकर......

लेकिन लपटें उठ रही हैं...औरतें चिल्ला रही हैं......

एक लड़की नंगी ही भाग रही है...वह खून से तर बतर है... शायद उससे किसी ने अठखेली की होगी.....क्रान्ति और प्रेम तो साथ-साथ चलना ही चाहिये न!

और एक भरपूर हाथ। कांग्रेस वालन्टियर के गले आर-पार छुरा। एक दर्दनाक चीख......

एक अट्टहास......

फिर पत्थरों की बौछार। नुकीले कठोर पत्थर। मेरे पास का लड़का सात आठ साल का खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था। पत्थर लगा माथे में। लेट गया वहीं। बंदर वाला नचाके खिर गया। बंदर का क्या ठीक? जाने किसे काट खाये। 'हाय! मेरा लाल! अल्ला! यह क्या हुआ!' एक बुढ़िया ने बच्चे को उठा लिया......

एकाएक एक दम कुछ मोटरों के ठहरने का शब्द हुआ। सीटी बड़े जोर से बजी।

धाँय! धाँय!! का भयानक निर्घोष आसमान को फाड़ गया। फिर कुछ कठोर कराहें। और बेहताशा भागती भीड़। उनके पीछे बरसती गोलियाँ।

पलक मारते अमन हो गया। जैसे एक दिन मलका विक्टोरिया के जमाने में हो गया था, गदर के वक्त।

रात के अंधियारे में हवा सनसनाना नहीं छोड़ेगी। पुलिस और फौज का पहरा पड़ रहा है। घुड़सवारों की गश्त लग रही है। लेकिन चमारों के घर धकधक कर जल रहे हैं। अब उस आग को बुझाने की भी जरूरत नहीं क्योंकि वह अपनी भूख मिटा चुकी है। एक दफे इसी तरह यज्ञों की हविष्य पा पाकर अग्नि तक को अजीर्ण हो गया था। आज वह देवता अश्वमेधों का बदला ले रहा है। गोरी फौज का आतंक छा रहा है। सड़क पर कुछ लाशें पड़ी हैं। कोई-कोई कुत्ते की तरह दम तोड़ता हुआ थरथरा उठता है।

कितना अच्छा है। कितना सुन्दर है। आकाश लाल हो गया है। बंदूकों की धांय-धांय अब भी कानों में गूंज रही है......मैं हँस रहा हूँ......

और एक अमन कायम करने वाला ठेकेदार पुलिस वाला मेरे कंधों पर हाथ रख कर कहता है—चलिये जनाब ! जरा थाने में आपकी भी तबियत ठिकाने लग जायेगी......

मैं कह रहा हूँ—वाह ! वाह मेरी बुलबुल !

और सिपाही चेत रहा है—साले ! गुंडे ! दंगा कराते फिरते हैं...

अमन, आजादी, प्रजातंत्र......चमारों के घर की आग लपक रही है, कहीं स्वर्ग में न लग जाये यह आग......इंद्र का मन्दिर बनवाना पड़े कहीं बिरला को......

सड़क से लाशें उठायी जा रही हैं...जैसे प्लेग के चूहे इकट्ठे किये जा रहे हों।

और कल बहुत से बेवकूफ उन्हें शहीद कहेंगे......

लेकिन अंधेरा ठंडा होता जा रहा है, मुझे लगता है जैसे मुर्दे में अभी भी जान बाकी है, और खून से भीगे हुए सिखाला आदमी अभी भी नाच रहा है......

# घास-फूँस

जैसे ही घर आकर सुबोध ने साइकिल रखी, सरस्वती बच्चे को गोद में हिलाते सामने आकर खड़ी हो गयी। पहले जमाने में पति जब घर लौट कर आता था तब पत्नी घूंघट में छिपी रहती थी। बीच में जब अंग्रेजों का राज था तब पढ़े लिखे हिंदुस्तानियों ने देखा कि पत्नी पति को 'बाई, बाई' कह कर दफ्तर विदा करती है और शाम को बाहर ही उसका इन्तिजार करती है। अपने हिंदुस्तानियों में बंगले अधिक के तो होते नहीं और गली में खड़ा रहना स्त्रियों के लिए शोभा भी देता। इसलिये पौरी में स्वागत हो जाता है।

'गये थे डाक्टर के यहां ?'—सरस्वती ने अपनी बड़ी बड़ी पर कुछ कम लम्बी आंखों से देखते हुए पूछा। सुबोध सरल प्रकृति का आदमी है, बल्कि कहा जा सकता है कि सीधा है, और अपने को बुद्धिमान समझने वाले आदमियों में मानता है। वह अपने विश्वासों पर दृढ़ रहने को एक आदर्श मानता है, चरित्र की दृढ़ता कहता है।

उसने आराम से साइकिल रखी। भीतर के कमरे में घुसा। उसकी पत्नी अपने आप ही उसके पीछे-पीछे भीतर चली गयी और तब चुपचाप पहले सुबोध ने टाई खोलकर खूंटी पर टाँग दी और फिर उसने कहा—'हकीम ?'

हकीम शब्द में व्यंग था। सरस्वती की माता सदैव हकीम की तारीफ करती थी। सरस्वती इससे संकोच करती है। वह कुछ झिझकी। सुबोध को अच्छा लगा। वह हँस पड़ा क्योंकि उसे एक भारी खतरा था।

सरस्वती को दौरे आते हैं। वह दौरे बहुत भयानक हैं। जब कभी सरस्वती की मास आती है तब उसे खास पक्ष में पर्दा करना पड़ता है। उनके जाते ही पति पक्ष में अंगरेजित लौट आती है, जिसे स्वामी दयानन्द के अनेकों उद्धरण देकर अब भारतीय मान लिया गया है क्योंकि अंगरेज और हिन्दुओं के पूर्वज एक ही समझे जाते हैं। इस पर्दा और पक्ष से भी अधिक बड़ी दुर्घटना है सरस्वती का दौरा। अभी अभी हँस रही है, ठीक है, और आप हँसते जा रहे हैं उधर जैसे चायदानी पर ढक्कन लगा दिया गया है, भाफ निकलना बन्द हो चुकी है सरस्वती हो गयी हैं। उनका चेहरा लौकी की तरह लम्बा हो गया है। अब सुबोध के सामने सरस्वती नहीं है, एक कछुआ है जो अपने आप में ही बन्द है। उसे हँसाना असम्भव है। अब तो वह दौरा अपना वक्त काटकर उतरेगा।

सौभाग्य से बदली नहीं घिरी। आसमान साफ ही रहा। सरस्वती ने बच्चे को बिस्तर पर लिटा दिया और वह हँसी। सुबोध ने दवा निकाल कर मेज पर रख दी। घर का काम अब उसने ठीक कर दिया है। शायद इसी भावना पर सरस्वती हँस पड़ी। उसने आश्चर्य से देखा। सुबोध नहीं समझ सका। वह अब भी नहीं समझा। सुबोध सरस्वती से बहुत खुश रहता है। वह भी अद्भुत है। अभी चूल्हे के पास बिना शिकायत के सात आदमियों का खाना बना रही है, अब सुबोध के कुछ मित्र सपत्नीक आ गये हैं। सुबोध आवाज देता है। और एक मिनट में सरस्वती ऐसी आकर मित्रों की पत्नियों से मिलती है जैसे खाना बनाने को रसोइये लगे हैं, जैसे वह बैठी उपन्यास पढ़ रही थी।

काश इस वक्त कहीं दूर कोयल बोल उठी। लेकिन स्वर बड़े नीरस थे, जो जंगले की राह घुसे।

आवाजें आ रही थीं।

'तुम्हारा नल है!'

'नहीं तुम्हारा है। तुम यहाँ दिन रात पानी भरोगे हो ?'

'हाँ हमारा है।'—स्वर में स्पष्ट खीझ थी। जवाब नहीं बन पा रहा था।

'जानते तुम कौन हो ? तुम शरणार्थी हो।'

फिर कुछ गालीगलौज। फिर कुछ औरतों की काँय-काँय। कुछ भर्राये और लड़खड़ाती आवाजों में एक दूसरे को कोसना...जिन्दगी... हाय...हाय...

कुछ सिन्धी शरणार्थी आये हुए थे। वे एक घर में ग्यारह-ग्यारह से अधिक लोग रहते थे। बेचारे मुसीबत से मारे। सुबोध के 'शरीफ' मित्र आते और खिड़की की ओट होकर उन सिन्धी औरतों को घूरा करते। फिर बड़ी विद्वता से उनके कपड़ों के भेदों का वर्णन करते हुए चुपचाप उनको देखते रहते। इसी में लम्बी बहस छिड़ जाती। रात को डेढ़ बजे उनके यहाँ जो बात होती है, सुबोध तो बकबक ही समझता है, उसकी नींद में खलल पहुँचती है।

सरस्वती अब तुरन्त भीतर चली गयी थी। पश्चिमी प्रेम संभाषण के बाद अब भारतीय पक्ष शुरू हुआ। पत्नी पालती भी है। वह उसके दाने-चारे का प्रबन्ध करने के सिलसिले से अन्दर कुछ खटर-पटर करने लगी।

सुबोध ने कपड़े बदले। एक बीड़ी सुलगायी और कुर्सी की ओर बढ़ा। कुर्सी की सब बेंत टूट गयी थी। बनाने वाला सात रुपये माँगता था। सो उसमें निवाड़ बुन दी गयी है। सुबोध कुर्सी पर बैठ गया। पुकार कर कहा—'आज टिमाटर नहीं लिए हैं ?'

छोटे भाई की आवाज आयी—'डलिया वाले के पास अच्छे न थे। महगे भी थे।'

कैसा अशिक्षित लड़का है। जोर-जोर से की गयी बातें पड़ोस में भी सुनाई देती हैं। सुबोध चुप हो गया लेकिन तभी बिगड़ी हुई बात

सँभल गयी। यकायक सरस्वती ने और जोर से कहा—'ठेलेवाले से ले लिये थे। सिर्फ चौदह आने सेर थे।'

'सिर्फ चौदह आने!' सुबोध मुस्कराया। पर लोगों ने सुन लिया होगा। गृहिणी तो वह जो अक्ल से काम ले।

चाय आ गयी। और साथ ही ट्रे में एक छोटा-सा पर्चा भी था। सुबोध ने उस कुर्सी पर टांगे उठाकर पालथी लगा ली, बाक़ायदा 'ऐशट्रे' में बीड़ी बुझायी, जिसे पत्नी ने तुरन्त भीतर फेंक दिया और दो लोटे पानी डाल नाली में ऐसे बहा दिया, जैसे ब्राह्मण घरों में जब कोई छिपकर अण्डा खाता है तब सब छिलके एक पुड़िया में बांध कर फेंक देता है ताकि किसी को पता भी न चले।

सुबोध ने पर्चा देखा और उत्सुकता से उसे खोल कर पढ़ा। छोटे भाई ने अर्जी दी थी कि वार बार कह कर हार चुका है। जैसे सामान की कमी के नाम पर मिल मालिक मजदूरों को ठगता है, वैसे ही उसे भी टाला जा रहा है...सुबोध और सरस्वती हँसे सुबोध ने देखा। उसकी अपनी माँग थी। महीने के प्रारम्भ में तनख्वाह मिलेगी लिहाजा पेंसिल, निब, स्याही, इत्यादि पौने दो रुपये का बजट था।

'इतना तो'—सुबोध ने कहा—'अपनी सरकार भी शिक्षा पर खर्च नहीं करती।' व्यंग से मुस्कराया। वह गृहिणी ने बात छेड़ी—'आज सुबह मूली कैसी बनी थी?'

'लो एक प्याला तुम भी पियो'—सुबोध ने अपनी पत्नी से मन ही मन चिढ़ते हुए कहा ताकि विषय बदल जाये। पत्नी समझ गयी। पति का सुख ही पत्नी का सुख है। काम वह सब कर देगी। पर समान अधिकार दो! अधिकार क्या है? अधिकार हैं कुछ रोमान्टिक ढंग से बातचीत कुछ साहित्य, साग-भाजी, रोटी-दाल, स्वतन्त्रता से घूमना, मामी के लड़के का मुंडन, इत्यादि अनेक पहलू हैं जिनमें सुबोध को भी दिलचस्पी लेनी चाहिए। सुबोध दिलचस्पी लेता तो उसके ये किस्से कौन सुनता कि

आज अफसर को उसने कैसा पलट कर डाँटा, और चपरासी कैसा भीगी बिल्ली बना सामने खड़ा रहा।

पर आज सरस्वती के मुख पर रहस्यमयी भावुकता थी। आज जैसे इस जीवन में भी एक परिवर्तन आ गया हो। सुबोध न समझा। इतना वह समझ गया था कि कोई खास बात है। पूर्णमासी को ही कुत्ता घूरे पर खड़ा होकर भूंकता है, वर्ना चुपचाप दिन में सोता है, रात को जागता है। उसने पूछा—'आज बात क्या है? हम भी तो सुनें?'

'वह है न? तुम तो जानते ही हो...' जैसे तैयार बैठी थी सुनाने को उसने कोई और नाम बताया। सुबोध उस नामधारी को वास्तव में नहीं जानता था। जिस घर में पुलिस ईमानदार दीवान जी रहते हों, वहाँ भला चोर कैसे पल सकता है? उसने देखा था, बहुतों को देखा, पर नाम नहीं जानता था, जैसे नये मुहल्ले से बार-बार गुजरने पर सब मकानों में रंग और नक्शा तो याद रहता है, पर उसमें रहने वालों से कोई परिचय नहीं होता।

'आज कल उसका एक से—' स्त्री ने कहा—'प्रेम हो गया है... दिन भर रोती है...समझाने पर भी नहीं मानती...'

सुबोध ने सरस्वती की ओर देखा। जैसे गोया आप अभी तक किस्से कहानियों में विश्वास रखता है। वह इसी निश्चय पर पहुँचा कि स्त्रियाँ यदि मूर्ख न होतीं तो आज समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था कभी नहीं होती—'प्रेम! वाह! खुदा की मार है'—सुबोध ने चिढ़ कर पूछा—'धोबी आया था?'

'धोबी!' यह नहीं कि कोई ऐसा नाम पूछते जिसमें कुछ रोमान्स हो।

सरस्वती को निहायत नागवार गुजरा। उसने फिर कहा—'सुनो तो। तुमने तो बस सुना और तिनक पड़े। भई, किसी का प्रेम हो गया तो इसमें जलने की क्या बात है?'

बात तीखी थी। जीवन में एक बड़ी कमी है कि बहुत से आदमियों को कोई भी स्त्री प्रेम ही नहीं करती। अपने बारे में ऐसा हुआ, क्योंकि स्त्रियाँ मूर्ख हैं। सुबोध सुनता रहा। पत्नी आवेश में किस्सा सुनाती रही। सुबोध को लग रहा था कि सरस्वती ने आज कोई कहानी पढ़ी है, जिसे वह दुहरा रही है। अच्छा होता किताब दे देती। वह खुद पढ़ लेता। वैसे, यह बुरे काम वे क्वारे लफंगे करते हैं, जो इस ऐंठ में भरे जाते हैं कि वे स्त्रियों को मुँह नहीं लगाते, पर असलियत यह है कि उनके हर तरह से अजीज बनने पर भी कोई नहीं देखती। सरस्वती निहायत कच्ची सी कह उठी—'तुम क्या जानो इन बातों को। तुम्हारे सारे दोस्त ऐसे हैं, जिन्होंने कभी न जिंदगी को समझा है न वे असलियत को आँख खोलकर देखना चाहते हैं। उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण काफी विकृत हो चुका है।'

सुबोध सब कुछ सह सकता है, लेकिन अपने बीच मित्रों का घसीटा जाना नहीं। और वह इसलिये कि उसके कई मित्रों का विवाह ही नहीं हुआ।

उसने चिढ़े हुये के से स्वर में पूछा—'तुम जानती हो इन बातों को?'

इन बातों का मतलब है कि सरस्वती ने जरूर विवाह से पहले प्रेम किया है। जिनका वह किस्सा अपने पति को सुना रही है, उसे महानतम प्रदर्शित कर रही है। पर अपने ऊपर लागू करने का अर्थ तो दूसरा है। अर्थात् वह निष्कलंक और पूर्ण पवित्र नहीं है। वैसे सुबोध और सरस्वती प्रेम की स्वतन्त्रता, विवाह, तलाक सब पर नई से नई भावना रखते हैं। पर वह सब औरों के लिये है। सरस्वती यह कैसे सह सकती है कि वह पूर्णतया सुबोध में अनुरक्त नहीं है? इस 'पातिव्रत' का भूत आधुनिकता के छिछले पानी में उतर कर भीतर नहीं बैठा है। वह नारी का बल है, जिस पर कविता लिखी जाती है...

सरस्वती फुत्कार कर उठी—'तुम तो उन अखबारों में बैठ कर जीवन के धर्म को बिल्कुल भूल गये हो। है उन पर कोई जिम्मेदारी ? कमाया खाया, यह भी कोई जिंदगी है ! कुत्ता भी तो अपना पेट पाल लेता है ! उनमें हिम्मत नहीं है।'

सुबोध समझा—सच है। इस बकबक को सह लेना क्या कम हिम्मत की बात है ? अब सुबोध झुका। अगर सरस्वती नाराज हो गई तो शाम को घुइया का साग और मूंग की दाल मिलेगी। क्या वक्त आ गया है। अब पुराने जमाने की तरह स्त्रियों में निस्वार्थ सेवा भावना नहीं रही। गरीबों में स्त्री बिल्कुल दासी है। उच्च वर्ग में स्त्री खिलौना है जो मुफ्त चरती है। निम्न मध्यवर्ग में, यानी उनकी, जो चार आने में धोबी के जरिये बाबू बनते हैं, हालत बड़ी अजीब है। पहले राजा नल खो गये थे, तब दमयन्ती वन वन में बिलखती डोली थी। पर अब स्त्री एक काठी है, जो समाज रूपी कुम्हार, पुरुष रूपी गधे पर कसता है कि यह अड़ियल गधा खूब बोझा ढोले। गधा समझता है सारा बोझ काठी पर ही लदा है। आजकल तलाक बिल पास हो जाने पर भी स्त्रियाँ अपनी जिम्मेदारी नहीं समझ पाई। वे अभी तक वही हैं। किंतु यह तो हैं अखबार की बातें। फिर अब तो सम्पत्ति में भी स्त्री को आधा बँटवारा मिलेगा। और रात को खाना खराब होने का भी खतरा है। लिहाजा समझौता जरूरी हो गया। उसने मुस्करा कर कहा—'तुम तो पहेलियाँ बुझाती हो। साफ साफ कहती क्यों नहीं ?'

स्वर बिल्कुल साफ था जैसे निमन्त्रण पत्र, जिस पर सिद्धि और वरदायक गणेश का चित्र भी होता है। सरस्वती ने फिर कहना शुरू किया और वह अब ऐसे बोली जैसे भाषण दे रही थी।

इस वर्णन में प्रेम का उत्कर्ष था, आकर्षण, विरह, उच्च आदर्श सब था, सुबोध को लगा बस एक विषय छूट रहा है। और वह विषय है, 'मारण'। अगर यह भी हो जाये तो यहाँ इन प्रेमियों की समाप्ति

बन सकती है। पर सुबोध अगर इस वक्त यह बात कह दे, तो सरस्वती को इसी वक्त दौरा आ जायेगा। लिहाजा यह दिखाने को कि सुबोध सरस्वती के सब कुछ से बहुत ज्यादा दिलचस्पी ले रहा है, बोला—'तुम उससे हमारी मुलाकात करा दो। ऐसे आध्यात्मिक प्रेम करने वाली लड़की से तो जरूर जान पहचान होनी चाहिए।'

पर गलती हो गई। पाँसा उल्टा पड़ा।

'जी नहीं'—सरस्वती ने अपना दामन अलग करते हुए कहा—'यह उसका दूसरा प्रेम है। मैं यह खतरा मोल लेने के लिये तैयार नहीं हूँ।'

खतरा! प्रेम! आध्यात्मिक चेतना! स्त्री की ईर्ष्या! पुरुष को अपनी सम्पत्ति समझना, उस पर विश्वास न करना, जैसे इन स्त्रियों का दिमाग एक से ही हैं जिनके कांटे सदैव खड़े रहते हैं।

'हरे राम'—सुबोध ने कहा—'फिर भी तुम उसके प्रेम को आध्यात्मिक कहती हो?'

सरस्वती ने इस बात को नहीं सुना। वह मुस्कराती रही। अब सुबोध जाने कि उसे और क्या पूछना चाहिये।

'अच्छा'—उसने पूछा—'उनकी घर में आमदरफ्त किस तरह हुई?'

सरस्वती ने कहा—'ऐसे ही। लड़के के बड़े भाई की कन्ट्रोल की की दूकान है, सो उसने लड़की के घरभर को धोती जोड़े पहना दिये।'

यह प्रेम तो घर वाले भी चाहते होंगे। उनका खयाल होगा कि लड़का बेवकूफ बन रहा है। सुबोध सरस्वती के दिमाग से घबराता है। बच्चों का दिमाग पूरा विकसित नहीं होता। उनकी हरकतों को पूर्व-जन्म की याद बताया जाता है। सुबोध की राय में स्त्रियाँ भी कुछ बच्चों ही की तरह रहस्यमयी कहलाती हैं। उसने सोचकर पूछा—'उसके पहले प्रेम करने वाला लड़का क्या था?'

'वह?'—सरस्वती ने कहा—'मार्केटिंग इन्सपेक्टर था।'

'हूँ'—सुबोध ने मुस्करा कर कहा—'मिट्टी का तेल तो थोड़ा सा हम भी दिखा सकते थे।' उसकी आँखों में अजीब चमक खेल रही थी।

'आप अपने को खामख़ा क्यों इस तसवीर में पेश कर रहे हैं?'

'ओह, हाँ, ग़लती हुई।'—सुबोध ने स्वीकार किया।

इसी समय गली में रेडियो की आवाज़ आने लगी। सुबोध के दिमाग़ में तस्वीरें बन और मिट रही हैं। जब वह दिल्ली में क्लर्क था और शाम को दुधारे ब्लेड से दहल्या मार कर दोतहा 'शेव' यानी हजामत बना कर सूट बूट टोप से लैस होकर घूमने निकलता था। तब नया नया कालेज छोड़ा था; नये दिन थे। वे पंजाबी जो ऊपर रहते थे, उनकी दो तीन लड़कियाँ थीं। तब सुबोध का उनसे बहुत दिन तक इकतरफ़ा प्रेम चलता रहा। लड़कियाँ कभी कभी मजाकियाँ होती हैं। वह घूरता था, वे उस पर हँसती थीं, और जिंदगी चल रही थी। फिर कुछ फौजी अफ़सरान उस घर में आने जाने लगे...सुबोध देशभक्त और वे कालेज के दिन के देश के गर्म गर्म भाषण, सब इस मजबूरी से मन में दुहराये गये। उसने निश्चय किया कि अब वह स्त्रियों से कोई वास्ता नहीं रखेगा। पर फिर ब्याह हुआ। सरस्वती उसके अपने वर्ग की स्त्री है। सुबोध देख रहा था। फिर भी उलझन बन चली थी। सुबोध ने झुककर उससे एकाएक कहा—'महीना भर रह गया है। राशनिंग ख़त्म होने वाला है। लोग कहते हैं 'सेल्स टैक्स' लगने वाला है। सरकार हम लोगों को इस विभाग में ले लेगी...'

और उसने उत्तेजित स्वर में कहा—'पहले अंगरेजी राज था तब ए॰ आर॰ पी॰ ख़त्म होने के पहले पूरी राशन की स्कीमें बन गई थीं, औ लोगों को निहायत कायदे से एक नौकरी से दूसरी में लगा दिया गया था। अब कौन जानता है क्या होगा।'

'क्यों?'—सरस्वती ने इस वीभत्स विषय से घबरा कर पूछा। उसे एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता का वाक्य याद आया,—सोचिये, नौकरी के

बिना आप दर दर भटकेंगे, सरकार आप का कोई प्रबन्ध नहीं करना चाहती ...इत्यादि। बात विशेष नहीं थी। पर सरस्वती ने सोचा। सुबोध भीख माँग रहा है, सरस्वती बच्चा लिये पीछे खड़ी है, और घर के अंदर से आवाज आ रही है—'हाथ खाली नहीं है, आगे बढ़ो... भयानक! निर्दय+कठोर×'

सुबोध कहता गया—'कभी सरकार लोगों को सुनती है, कभी कहा जाता है इन्टरव्यू ही नहीं होगा, आप का रुपया वापिस कर दिया जायेगा, कभी कहा जाता है, कुछ लोग नौकरी पर रखे जायेंगे, कभी सब निकाले जायेंगे। हमने यूनियन बनाई तो कहा गया कि राशनिंग वाले रिश्वत बहुत लेते हैं, और ये कांग्रेस वाले क्या नहीं करते!'

दोनों सरकारों की उस तुलना को सुनकर सरस्वती का कलेजा मुँह को आने लगा! उसे लगा उसके मुँह पर वीर भगतसिंह की-सी आभा थी। बच्चा रोने लगा। सरस्वती उठ गयी। बच्चे को गोद में उठा लिया।

सुबोध द्वार पर खड़ा होकर सोचने लगा।

सिन्धी लड़कियाँ बाहर नल पर पानी भर रही थीं। पत्नी दायीं तरफ ही खड़ी है। इस समय उसे उधर नहीं देखना चाहिए। नदी उधर कैसे बहे जिधर ऊँची चट्टान हो! इसलिये सोच कर निर्भय होकर देखा। इसमें कोई हर्ज नहीं।

रेडियो पर नेताओं के भाषणों के रेकार्ड सुनाये जा रहे हैं। इन बातों को कौन नहीं मानता। सब चाहता है। चलती को लोग गाड़ी कहते हैं तब तो कबीरदास रोये थे। स्कूलों के लड़के खेल कर आ रहे थे। कल यह लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में जाते थे, अब गांधी जी के मृत्यु के कारण इन्हें ऐसी घृणा हो गयी है कि जाना बन्द कर दिया है। उनके शोर से गली गूँज रही है।

तभी उसने देखा। एक व्यक्ति नंगे बदन, ऊँची धोती, मुख पर

दयनीयता, आँखों में जीवन और संसार के प्रति अविश्वास, पलकों पर सारे संसार की भीषण चिन्ता का भार।

सुबोध ने सोचा। कोई देखे तो कहेगा—भारतवर्ष में कितनी गरीबी है। और उसके मुकाबले में सुबोध को अमीर कहेगा। जब कि उस आदमी की, एक मुहल्ले से चोरबाजारी पर पलने वाली, बड़ी दूकान है—ब्याज पर रुपये देता है, बिना काम के कभी मुरव्वत दिखाना नहीं भूलता, पर पैसे के मामलों में उतना ही चौकन्ना रहता है, जितना विधवा अपनी पवित्रता और अच्छे काम के मामलों में।

सामने वही 'प्रेमिका' खड़ी है गौरव से। वह प्रेमी भी कहीं चक्कर लगा रहा होगा। किस मजे से दोनों का वक्त कट रहा है!

सुबोध चिप के पीछे चुपचाप खिसक आया। वर्ना वे दूकानदार देखते ही कहेंगे—इन्सपेक्टर साहब! अब क्या होने वाला है?'

गेहूँ, चीनी, मिट्टी का तेल, सोना, चाँदी, पारद, सब ऐसे ही विषय, सट्टा, टैक्स, मकान मालिक और किरायेदार का झगड़ा...... अब पुरुषों में भी चलने लगे हैं। कच्चे माल पर पुरुष बहस करते हैं, पके माल पर औरतें जैसे दाल, साग, भात, मसाला इत्यादि। तो सुबोध को यह बिल्कुल पसंद नहीं था। जो है सो तो है ही। कहाँ तक की बहस ठीक है, क्या है। यह भी ठीक है कि क्या होना और करना चाहिए, पर यह क्या होगा एक भयानक बला है। तभी सरस्वती ने पूछा—'गये नहीं आज घूमने?'

'जाता हूँ। तुम तो ऐसे तैयार हो जैसे शाम को तुम्हें मेरी गैरहाजिरी में कुछ खास काम रहता है। दोस्तों में मैं जाता हूँ लुत्फ़ तुम्हें आता है।' कह कर सुबोध कपड़े बदलने लगा। सरस्वती भीतर चली गयी।

सुबोध ने आवाज दी—'बटन टाँक दिये थे?'

'भूल गयी।' तीखी आवाज आई जिसमें कुछ बगावत का पुट था।

फिर सन्नाटा। झुंझलाहट हुई। सुबोध अपने-आप कभी प्रगतिवादी गीत गाते, कभी छायावादी, और कभी भक्ति की तन्मयता में—प्रभु हौं सब पतितन को टीको......फिर, धोती, कमीज पहन कर भीतर घुसा। वहाँ सुबोध चुपचाप बीड़ी पीने लगा। सरस्वती सचमुच घुइयाँ छील रही थी और आग पर दाल सीझ रही थी। भाफ उड़ रही थी। ढकना काँप रहा था''''उधर आध्यात्मिक सुख था, इधर शारीरिक दुख का आरम्भ हो गया था। शायद दौरा आने वाला था और सरस्वती ने अनजाने ही कहा—'अब भी मूंग की दाल ऐसी है कि''"

मूंग की दाल !...सुबोध उठ कर बाहर चला गया।

# ईमान की फसल

घर को पुलिस ने घेर लिया था। लम्बी-लम्बी तनी हुई मूछों वाले दीवान ने बढ़कर कहा—'आप ही हैं रामनरायन ?'

दुबले पतले से आदमी ने धीरे से कहा—'हाँ, मैं ही हूँ।' कुछ सिपाही भीतर घुस गये थे! कुछ बातें हो रही थीं।

पड़ोस के कुछ लोग दरवाजे पर इकट्ठे हो गये थे। उनमें एक उत्सुकता थी। किसी ने पूछा भी—'क्या बात है ?'

मोटे वाले सफेदपोश सर्दार ने आगे बढ़ कर पूछा—'क्यूँ जी! की गल्ल है ?'

बात साफ थी। किसी को उत्तर देने की जरूरत नहीं थी। रामनरायन को गिरफ्तार किया जा रहा था। रामनरायन खामोश था। उसकी दुबली पतली मरियल सी बहू मालती दरवाजे से सटकर खड़ी हुई थी। वह पर्दा नहीं करती। पुलिस के दरोगा ने उसे तिरछी नजरों से देखा। उसने हमदर्दी से रामनरायन से पूछा—'आपके घर में और कोई नहीं है ?'

रामनरायन ने पलटकर कहा—'आपका मतलब ?' दरोगा ने नीचे का होठ काट लिया। मालती ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप देखती रही। अधेड़ उम्र के पंडित रेवताशरण ने बढ़ कर कहा—'और कौन होगा ? दो भाई थे। एक गाँधी जी के पहले नमक आंदोलन में घोड़ों से कुचलकर मार दिया गया था। दूसरा सन् ४२ में गोली मार दिया गया।'

चारों तरफ सन्नाटा छा गया। पण्डित ने अपनी सुरक्षा के लिये कहा—'तब अंग्रेजों का राज था; विदेशी राज था। रामनरायन छोटा था। अब ये बड़ा हो गया है।'

घर का घर......" सर्दार ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये कहा। सबकी आँखों में एक उदास छाया डोल गई। कुछ-कुछ अँधेरा सा, कुछ-कुछ विषाद सा।

उसके बाद कुछ हलचल सी हुई। रामनरायन आगे बढ़ा। वह सफेद कुर्ता; एक उससे कम उजली धोती; सिर पर सफेद टोपी; पैरों में पुरानी सी चप्पल पहने, जाकर पुलिस की बड़ी मोटर में बैठ गया। मालती ने दोनों हाथ जोड़ कर उठा दिये। रामनरायन मुस्कराया।

गाड़ी चल पड़ी। वह देखता रहा। मालती खड़ी देख रही थी। नहीं, वह कभी नहीं डरेगी, उसने एक लम्बी साँस खींच कर मन ही मन कहा। वह क्यों डरेगी! सिपाही उसे घूर रहा था। वह काफी पुराना लगता था। किन्तु रामनरायन से उसको कुछ कहने की इच्छा नहीं हुई। सड़क पर भीड़ कम होती जा रही थी। बड़ी-बड़ी मोटरें सर्राती हुई बगल से निकल रही थीं। रामनरायन ने पहचाना। लाला श्यामप्रसाद थे। उनकी बड़ी-बड़ी मूछें अब भी उनके ऊपरी होठों को ढककर पड़ी थीं। वह अब खद्दर की धोती, कुर्ता, और टोपी पहनते थे। वह शहर के अव्वल नम्बर के ब्लैक मार्केट करने वाले वीर थे। पहले पुलिस वालों की तनख्वाहें बाँध रखी थीं। अब कांग्रेस वालों के भी चन्दे बाँध रखे थे। मगर अब वे देश के लाभ में दिन दूने रात चौगने मोटे होते जा रहे हैं। रामनरायन को झुंझलाहट हुई। इस बात को बार-बार कहने से क्या फायदा, कौन इसे नहीं जानता! उनका हृदय परिवर्तन हो गया है। सबके दिल में अब अचानक अच्छाइयाँ आ गई हैं। बहुत थोड़े लोग हैं जो असलियत को जानते हैं। जो जानते हैं वह सदा बेवकूफ करार दिये जाते हैं।

वह हँसा। उसकी हँसी को देखकर सिपाही चौंक उठा। उसने अपनी बगल में बैठे दीवान की ओर घूरकर देखा वह अपनी खाकी वर्दी में ऐसा लगता था जैसे पुराने जमाने का कोई आदमी फिर से चिकना

जुगड़ा बना कर बिठा दिया गया हो। वह देखने में कोई पुरबिया मालूम देता था।

रास्ते में देखा। मूँछें बढ़ाये सिर पर पंजाबी साफा बाँधे एक साहब छड़ी हिलाते हुये चले आ रहे थे। रामनरायन ने उन्हें देखकर कुछ जोर से खाँसा! सज्जन ने देखा मोटर आगे बढ़ गई। वह व्यक्ति आज कल एक मुजरिम था।

खुले आम चला जा रहा है। रामनरायन फिर मन ही मन हँसा। पुलिस ने उसका वारंट निकाल रखा है। लगता है अब पुलिस के तरीके सब अच्छे हो गये हैं। जनता की तकलीफ कोई तकलीफ होती है।

गाड़ी और आगे बढ़ी। तेल मिल के मालिक का घर अपनी भव्य अट्टालिका के कारण नगर-प्रसिद्ध था। रामनरायन अक्सर सोचता। वह दिन कैसा होगा जब इस बोदे बेवकूफ को यहाँ से निकाल दिया जायेगा और मजदूर इस बड़े मकान में कमरे बाँट कर रहा करेगा और यह शख्स तब बेकार हो जायेगा क्योंकि इसमें मेहनत करके खाने की आदत नहीं रही है।

पर व्यर्थ की चिन्ता अपने आप दूर होने लगी थी। जैसे-जैसे जेल करीब आने लगा उसे एक प्रकार का विक्षोभ होने लगा। उसे जनता की रक्षा के नाम पर गिरफ्तार किया गया है। मुकदमा भी नहीं चलाया जायेगा। और अब दृश्य बदल गया। मालती क्या कर रही होगी!

खिची हुई भौं जो नाक के ऊपर आकर मिल गई थीं, कुछ चिपटी सी नाक। धुते हुए बाल। पहले आई थी तब चेहरे पर एक ताजगी थी। वह वक्त ने धो दी। जैसे गरीबी में वह ताजगी चेहरे पर एक कालिख जैसी होती है।

रामनरायन को याद आने लगा। गाड़ी आगे बढ़ रही थी। पर उसका दिमाग पीछे की ओर भागने लगा! एक-एक करके अनेक वर्ष लुढ़क चले। उसका मन कुछ उत्तेजित हो उठा। और उसे याद आया।

लोग कुछ कहते हैं और कुछ-कुछ उसे भी याद है। बहुत दिन पहले। तब शायद वह छः या सात साल का था। पढ़ता था प्राइमरी स्कूल में। सुबह बोरका पट्टी लेकर स्कूल जाता। तब बहुत छोटा था वह।

एकदिन घर आते ही देखा। मुहल्ले में हलचल मच गई थी लोग इधर उधर टोल के टोल बनाये घूम रहे थे। सब के चेहरों पर बेबसी का क्रोध था।

जब लाश द्वार पर लाई गई माँ फूट-फूट कर रो उठी थी। वह रामनरायन का सबसे बड़ा भाई था। कुछ दिन से घर में लड़ाई सी रहने लगी थी। माँ अक्सर रोया ही करती जैसे उसे किसी भयानकता की निकट भविष्य में आशा हो गई थी। जब रामनरायन उसके निकट जाता वह अत्यन्त स्नेह से उसे अपनी गोद में खींच लेतीं जैसे वह उस भय का प्रतिरोध करना चाहती थी।

शहर में कर्फ्यू लग गया था। कहा जाता था मजदूरों में गुस्सा भड़क रहा था। बाबू लोग कुछ चौंके हुए से थे।

जहाँ रामनरायन रहता है उसके सामने ही अब एक बड़ा मकान बन गया है। लेकिन एक जमाने में यहाँ एक खंडहर था। वहाँ एक विद्यार्थी रहता था। वह कालेज में पढ़ता था। और तो अब कुछ याद नहीं। उस खंडहर में ही वह रहता था। उसकी एक बूढ़ी माँ। वह चले थे।

और अन्त में एक दिन मालती आई। रामनरायन का ब्याह हुआ। घर की मालकिन आ गई। वह स्वयं जाकर अपने जेठ को बुला कर लाई। माँ ने आशीष दिया। चाचा की आँखों में पानी भर आया। उन्होंने कहा : 'भाभी ! आज कायदे से घर में तीन बहू होतीं।' उन्होंने आँख पोंछ लीं।

बी० ए० का आखिरी साल था। चाचा की हालत पहले से भी

ज्यादा खराब थी। वह कभी माँ की चिन्ता में लगता कभी चाचा की चिन्ता में परेशान रहता।

किन्तु माँ की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही थी। रामनरायन रोज दवाई लाता है। मालती पिलाती।

और एक दिन सब तरफ हलचल मच गई। दुकानें फटाफट बन्द होने लगीं। देश के बड़े बड़े नेता पकड़ लिये गये थे। सब के हृदय में क्रोध उफन रहा था। मानों आज साम्राज्य के भयानक दाँतों की चुभन से व्याकुल होकर भारत उन दाँतों को सदा के लिये तोड़ देना चाहता था। बाजार की ओर से लौटकर रामनरायन ने देखा। घर के सामने भीड़ लगी थी। कारण समझ में नहीं आया। फिर भी सब उत्तेजित थे। हृदय धुक धुक करने लगा।

किसी ने उसे देखकर चिल्ला कर कहा—आ गया रामनरायन! ले तेरा दूसरा भाई भी आज शहीद हो गया।

और रामनरायन को चक्कर सा आया। किसी ने पकड़ लिया। बेहोश सा लौटा। उसने सुना—'अरे बेटा! तू तो सुनकर ही लौट गया माँ की छाती देख। अभी तक नहीं फटी।'

जैसे पथराई हुई माँ को सुलाने को ही कहा गया था।

जय जयकार से आकाश गूँज रहा था। शहीद हो गये थे। मंझले भैय्या शहीद हो गये थे।

शहीद! कितना सुन्दर! कितना भयानक! कितना क्रूर!! वह रोने लगा था। मंझले भैया! गोली लगी थी। वीर आगे था।

'मत कहो पांडे जी! क्यों रुलाते हो?' किसी बूढ़े ने कहा। 'रोने के सिवा अब रहा ही क्या है? अब तो करने के काम करो।'

फिर एक निस्तब्धता छा गई। जैसे उबलते चावलों की खदखदाहट की आवाज। मालती की आँखें सूख गई थीं। रामनरायन ने देखा। उनमें एक भयानकता थी। वह रो नहीं रही थी। रामनरायन ने कहा:

मालती···वह फभक उठा था। पर मालती खड़ी खड़ी देख रही थी। जैसे घर जब रहा था। हठात् एक नया कोलाहल मच उठा।

माँ का हृदय अपनी धड़कन बंद कर चुका था। अब की बार सब का काँपता हृदय भीतर ही भीतर जलने लगा।

'गई?' किसी ने पूछा। 'चलो अच्छा हुआ उनमें जीवन की मर्यादा थी। तभी तो। हमारी तरह वे जिन्दे में नहीं मर गये थे।'

चाचा की मूछें आँसुओं से भीग गई थीं। अब वे चुपचाप नीम के पेड़ के नीचे बैठे हैं। लोग दोनों अर्थियाँ बाँध रहे हैं। शायद अब यह लाशें उनकी अपनी हो चुकी हैं।

घर उदास है। मुहल्ले में सब यही चर्चा कर रहे हैं।

माँ और बेटा संग संग जा रहे हैं।'

'राम राम सत्त है।'

फिर जय जयकार गूँज रहे हैं। इस घर से जुलूस ही जाते हैं।

रामनरायन सुन रहा है।

घर सूना हो गया। मालती ने वह खाट बुनवा दी। जेठ की तस्वीर को साफ करके बड़े भैया की बगल में लगा दिया।

चाचा सचमुच जर्जर हो गये थे। और एक दिन इसी तरह वे भी चले गये। मालती रोई। यानी तकलीफ कम हुई थी।

अब घर खाली हो गया। चाचा और अम्मा की तस्वीर कहीं नहीं है। मालती उन दोनों की याद करती और दोनों जेठों को देख कर कहती: 'ऐसे जाने कितनों के घर खाली हो गये होंगे। अम्मा कहती थी बड़े जेठ जी वीणा बहुत अच्छी बजाते थे।'

रामनरायन चुपचाप सुनता।

और तब से रामनरायन और मालती अकेले रहते। रामनरायन किसी दफ्तर में नौकर हो गया। और उस दिन मालती अचानक ही कहीं से दिये जलाने को उधार तेल लाई। १५ अगस्त थी। देश में लहर दौड़

गई। रामनरायन ने तिरंगा झंडा द्वार पर टाग दिया। मालती ने देखा, सामने के चोर बाजारी सेठ के घर का झंडा बड़ा था। उसने अपना झंडा उतार दिया। कहा : 'हमारे घर में दीपक जलता है। हमें किस का डर है!' दफ्तर से लौट कर जब वह आता, पूछता : 'तुमने पढ़ा?'

मालती कहती : 'पढ़ा, तुम्हारी कोई पूछ नहीं होगी।'

'हाँ!' रामनरायन हँस कर कहता, 'हम मजदूरों का राज चाहते हैं।'

'तुम खुद भी कुछ और हो!' मालती हँसती।

'हाँ, मैं क्लर्क हूँ।'

फिर वे दोनों हँसते।

रामनरायन ने कहा : 'हमारी तलाशी हो सकती है।'

मालती ने कुछ नहीं कहा। उसने दोनों तस्वीरों को देखा। 'देश के लिये' वह मुस्कराई।।

'दो हो चुके हैं।' रामनरायन ने कहा, 'बस हम तुम अभी बाकी हैं।'

'दो हो चुके हैं।' रामनरायन की आवाज भाइयों की तस्वीरों पर गूंजने लगी। मालती मुस्कराई जैसे उसे आदत पड़ गई थी।

और आज रामनरायन जेल जारहा था। क्योंकि उससे जनता की शांति को खतरा था! क्योंकि जनता भूखी थी और वह कहता था कि इस आजादी में जनता भूखी है........

गाड़ी रुक गई। उसे उतारा गया। अन्दर जाने के पहले कुछ जरूरी लिखा-पढ़ी हो रही थी। उसी समय एक अधेड़ सिपाही ने उसे देखा। वह चौंक उठा। फिर कुछ दूर खड़े होकर घूरता रहा। फिर सिपाहियों के साथ जाकर बैठ रहा।

उसने सुना। सिपाही आपस में बातें कर रहे थे।

'यह सरकार तो हमारी दुश्मन है। तुम तो जवान हो। बस तुम्हें ही रखा जायेगा। हमें तो तंग कर करके निकाला जायेगा।'

'कौन निकालेगा हम पुरानों को। सालों का काम कौन चलायेगा ? यह लोग दूकानों पर डंडी मारते हैं। लाठी चला लेंगे। वकील की बहस से राज नहीं चलता।'

'हम तो यह जानते हैं।' किसी ने कहा—'ठाकुर हैं। के तो लठ्ठ रखेंगे, नहीं तो हल चलायेंगे। और ज्यादा चीचपाट की तो बेटा हम डाकू बन सकते हैं।'

वे सब हँसे।

फिर किसी ने कहा—'हुकूमत बदल गई। हम भी बदल गये। हाँ हमने तुम्हें मारा था। पर तब उनका राज था। हम तो मालिक के गुलाम हैं। तुम कहो ! हम आज सिर फोड़ दें। पर तुम कहो; तुम जो कहते थे वह आज कहाँ हो रहा है।'

'चुप चुप।' किसी ने कहा—'इसी से तो वह लौंडा गिरफ्तार कर लिया गया है। वर्ना क्या उसके दो भाई पहले कांग्रेस में शहीद नहीं हो चुके ?'

तुरन्त सबका हृदय परिवर्तन हो गया।

और रामनरायन जब सब लिखा पढ़ी होने पर जेल के भीतर घुसा उसे लगा। शायद वे दोनों भाई कुचले हुए थे। लेकिन तीसरी बार पूरी बात निकली थी। दमनचक्र की दाढ़ में अब असली दाना निकलेगा। उधर मालती, इधर रामनरायन······

अपनी बी० ए० पास कल्पना पर वह झुंझला उठा। किसी ने कड़क कर कर कहा : 'इधर से जाओ··इधर से।'

वह अपमान का घूंट पीकर उधर से ही चलने लगा। सामने देखा। पाँच छः जानपहचान के साथी बैठे थे। उसे लगा पूरी फसल थी।

मालती बैठी होगी। रामनरायन ने सोचा, लेकिन उसे तो अब आदत पड़ जायेगी····भूख ही उसकी जिन्दगी होगी, भूख ही मौत··

पर वह रोयेगी नहीं। काश वह भी अपनी एक तस्वीर छोड़ आता।

# जीवन की घृणा

कई दिन बाद आज जब वह घर आया तब भी किसी के चेहरे पर मुसकराहट दिखाई नहीं दी। सब के चेहरे जैसे खिंचे हुए हैं। तोबड़े की तरह लम्बे। अगर उसे यह आशा होती तो आज शाम को भी वह कभी नहीं आता। पर उसकी कमजोरी है कि वह कभी कभी इन्हें अपना समझ बैठता है और जब यह विचार उसके दिमाग में घुमता है तब वह छटपटाने लगता है और अनजाने ही उसके कदम इस घर की ओर बढ़ने लगते हैं जैसे वह किसी स्वर्ग की ओर चला जा रहा है, जहाँ सब उसे देखकर खिल उठेंगे। उसका यह स्वप्न सदैव देहलीज पर पाँव रखते ही टूट जाता। घर पहुँचते ही कोई न कोई शिकायत आ खड़ी होती है और वह अपने मन को समझाता कि अगर उससे यह भूल न होती तो कभी भी उसे इस रुखाई से व्यवहार में नहीं लाया जाता। मन बहलाने के पच्चीस साधन हैं। बहुत से लोगों की मूर्खता पर जब संसार हँसता है, वे समझते हैं कि बस उनके अतिरिक्त यह सब और किसी से भी कहा गया है।

'आज आये हैं।' बीबी ने अपनी माँ से संक्षिप्त वाक्य कहा जैसे इस तीन शब्दों के जाल में किसी का पूरा व्यक्तित्व, उसके सामाजिक संबंध, उसका जीवन, व्यवहार, चलन, इतिहास, आकृति, भूगोल और भूत, वर्तमान तथा भविष्य घिरा हुआ है। और क्योंकि प्रायः सब ही आवश्यकता से अधिक रूप से ज्ञात है, किसी को भी अब उसमें दिलचस्पी बाकी नहीं रही है।

सास ने सिर उठाकर देखा और बतौर तकल्लुफ कहा—'आओ बैठो।'

वह फिर भी खड़ा रहा। यह सोचकर कि शायद पास बैठा छोटा साला कुछ कहेगा। पर वह नालायक कुछ देर तक उसकी ओर खामोशी से घूरता रहा और फिर मुस्कराया और फिर उसने आँखें हटाकर अपनी गर्दन नीची कर ली। उसकी बीवी ने इस सब को देखा और आँख से इशारा किया कि बैठ जाओ जैसे इससे अधिक तुम्हारे लिये कुछ और नहीं हो सकता। यही क्या कम है!

ससुर भीतर घुसे। उसने उन्हें आदाब बजाई। वे लंबे आदमी थे। अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उन्होंने प्रवेश किया था और अपनी बीवी यानी बीवी की माँ यानी उसकी सास की ओर कुछ मुस्कराते हुए बढ़ रहे थे। तभी सास ने आँख से कुछ इशारा किया और उन्होंने मुड़ कर उसकी ओर अब देखा जैसे पहले उन्होंने उसके उठकर खड़े होने और आदाब बजाने को देखा ही न था। वे मुसकराये। कहा अच्छे हो।

'जी हाँ, काम है...' स्वर खरखराया और वह अपनी झेंप में चुप हो रहा। उसका स्वर कमरे के वातावरण में ऐसा लगा जैसे चमकती मेज पर एक खरोंच लग गई हो, जैसे सफ़ेद कागज पर बेढ़ंगी लकीर खिच गई हो। संभाव्य था कि वह स्वर शांत पानी में पत्थर गिरने पर फैलते हुए भंवरों की तरह बढ़ता जाता, पर बीच में ही ससुर साहब के बादशाह जार्ज के से चेहरे में से फूटते शब्दों में डूब गया। अब वे भूल गये कि वह वहाँ उपस्थित था। अपनी पानदानुमा बीवी से वह कुछ घरेलू बातें करते रहे कि उनके समधी का खत आया है। वे लड़की भेजने से आनाकानी कर रहे हैं। उनका कहना है कि उनकी लड़की अपने खाविंद के साथ अलग रहे तो कहीं अच्छा हो। यह सच है कि लड़के के खाविंद के पास पैसों की कमी नहीं; पर अच्छा यही है कि घर छोटे हों, उनमें एक दूसरे की कम फ़िक्र करनी पड़े।

यह कह कर ससुर साहब ने एक खत अपनी बीबी के सामने फेंक दिया और अपनी बेटी और दामाद की ओर देखा। अपनी ओर ससुर साहब को घूरते हुए देख कर उसे अत्यन्त बेचैनी सी हुई जैसे टिड्डी चिराग के पास उड़ता हुआ दीख रहा था। क्या ठीक वह कब आकर आँख से टकरा जाय।

वह इसी उधेड़ बुन में था कि उसकी सास ने तड़प कर कहा—'लड़की रखें अपने घर। हमें कोई फिक्र नहीं। लड़का अपना हीरा बना रहे। हम उसके लिये दूसरी लौंडी ले आयेंगे। लड़की को आस्मान से टपक कर नहीं मिल जाता। बड़ी मशक्कत से उसे माँ बाप इस दिन के लिये तैयार नहीं करते।'

'लेकिन सोचो तो जरा नसीम की माँ,' जईफ बादशाह जाजं की सूरत के उस जूते के व्यापारी ने कहा—'यह जरा सोचने की बात है। ऐसी नहीं कि खल्लर में डाली और कूट दी कि रस निकलना तो कुदरती काम है, वह तो निकल कर रहेगा।' और उन्होंने मुड़कर अपनी बेटी से कहा—'नसीम!'

'जी अब्बा', उनकी लड़की ने कहा। वह अपने बाप की ही सूरत पर गई थी। लिहाजा, उसे सब अच्छी किस्मतवाली समझते थे। अम्मी की कुछ आदतें उसमें पूरी की पूरी उतर आई थीं। दिमाग में न थी थी। फर्क था कि वह अधेड़ न थी, अभी अल्हड़ जवान थी। लेकिन हुकूमत का मारा उसमें इतना था कि क्या कहना। माँ की हुकूमत तो कुछ नौकरों, कुछ खाविंद और कुछ लड़कों, लड़कियों और बहुओं पर बँट गई थीं, पर उसके पास कोई न था। अतः आज आने वाला यह व्यक्ति देखकर उसे कुछ कुछ रूहानी खुशी हुई। आखिर वह उसका आदमी था। दुनिया में अनेक आदमी हैं, मगर आदमी के नाम उसे यही मांस और हड्डी का नालायक ढेर मयस्सर हुआ है। उसने अब्बा की ओर देखा।

माँ समझ गई थी। उसने कहा—'तुम जरा दूसरे कमरे में जाकर बैठो।' नसीम समझी। कुछ खास बातें करनी हैं जो उसके पति के सामने नहीं की जा सकती। अभी तक वह बेपर्दा थी। लेकिन अब वह जब कमरे से चलने लगी उसने सिर ढँक कर ओढ़नी मुँह पर खींच ली और अपने पति की ओर बढ़ती हुई दरवाजे की ओर चली। मन मार कर गुलाम की तरह वह उठा और उसके पीछे पीछे चल पड़ा।

अम्मी और अब्बा में अपनी खास बातें होने लगीं। साधारण मध्य-वर्ग के लोग थे। मगर खान्दान में नवाबी किस्सों के ढेर थे। और उनसे अगर किसी को चिढ़ थी तो इस दामाद को। वह कभी भी नवाबी हवा में नहीं पला था। शरीर पर खद्दर का कुर्ता और चुस्त पायजामा पहनता, बाल रूखे रहते, पाँवों में धूल भरी चप्पल। और उसके पास पैसा न था, न है, और शायद अब होगा भी क्या!

नसीम ने बगल के कमरे में पहुँचते ही अपना पर्दा हटा दिया और उसका हाथ पकड़कर उसे पलंग पर बिठा कर हँसी, फिर उसने कहा—'हुजूर! इतने दिन तक कहाँ रहे?'

यह तो एक स्वयंसिद्ध सत्य था। उसका पति अपने घर वालों से लड़ चुका है, और क्योंकि ज्यादा पढ़ा लिखा नहीं, ज्यादा कमा नहीं सकता और चूँकि वह उर्दू की शायरी का भी दम भरता है और थोड़ा बहुत आत्मसम्मान भी रखता है, यानी खब्ती भी है वह घर जमाई बनने को भी तैयार नहीं है, अब वह सिवा इसके कि आज इस दोस्त के घर, कल उस दोस्त के घर, और कर भी क्या सकता है? वह सास की हुकूमत नहीं सह सकता। ससुर की व्यापारी बुद्धि ने उससे बचपन में नसीम का ब्याह करके पहली बार नुकसान उठाया है। सालियाँ, सरहजें सब उस पर हँसती हैं। वह आया कि सबके चेहरों पर व्यंग छा गया। वह सब कुछ देखती, सुनती, पर वह खुद कब ऐसा था जिस पर वह नाज करती? तभी उसे माँ के हुक्म बजाने पड़ते हैं और परवाजा से भिड़ा रहना

पड़ता है। वह उसके बाप के घर कभी नहीं जायेगी। वहाँ उससे बहुत काम लिया जाता है। घर की मालकिन बनाकर रखो, सौ बार चलेगी। बाँदी ही अगर रहना है तो अपने मां बाप की ही क्यों न बनी रहे?

बीवी के इस सवाल का कुछ भी जवाब न दे सकने के कारण उसे कुछ खिझलाहट हुई। उसने धीरे से कहा—'उस सबको जाने दो। तुम्हें देखने की ख्वाहिश हुई थी, तभी चला आया।'

पत्नी ने उसके दुख को समझा। अभी आई, कहकर वह चली गई। जब लौटी तो हाथ में खाने का सामान था। दस्तरखान पर रोटियाँ रख दीं और सामने बैठ गई। उसके चेहरे पर प्रसन्नता थी।

'आओ न?' उसने कहा—'मुझसे भी नाराज हो?"

पत्नी की आँखें चमक रही थीं। वह उसको मोहित सा देखता हुआ खाता रहा। फिर कहा—'पहली बार तुमने कहा था, वह सब क्या हुआ?'

पहली बार। पत्नी ने कहा था कि पति ही सब कुछ है। वह उसके साथ भूखी-प्यासी भी रह लेगी पर भाभियों की फटकार अब उससे नहीं सही जाती। दुनिया में क्या गरीब आदमी अपनी बीबियों को नहीं रखते? तांगे में पर्दा बांधकर न गई, लंबा बुर्का ओढ़ कर पैदल चला करेगी। कुछ हो अपना घर होगा, तुम होगे मैं होऊँगी। और शायद अब वह मा बनने वाली थी। अगली बार आओ तो मैं जरूर चलूँगी। बस जरा जल्दी करूँगी तो अम्मी कहेंगी कि मैं न कहती थी ब्याही बेटी असल में बिल्ली होती है। मतलब पूरा हुआ, आँखें फेर लीं। अब मेरे लिये उन्होंने इतना किया है तो क्या और कुछ दिन मुझे उनकी खिदमत नहीं करनी चाहिये? उनसे इजाजत ले लूँ।

जब उसने यह सुना था, उसे जीवन में पहली बार अनुभव हुआ था कि वह पुरुष था, वह मनुष्य था। उसके बाद वे कुछ समय तक पति-पत्नी के रूप में अपने-अपने विचारों को प्रकट करते रहे। एक क्षण उसे अनुभव हुआ था कि वह पत्नी के जीवन में बहुत थोड़े अंश में आवश्यक है, अन्यथा कभी उसे उसकी जरूरत नहीं है। पर उसने

अपने को ऐसे विचारों के कारण कमीना समझा और अपने दुःख-दर्द, मानापमान को भूल जाना चाहा।

पहली बार का यह प्रश्न सुनकर पत्नी जरा भी नहीं घबराई। उसने कहा—'अभी तो इजाजत लेने का मौका ही न मिला। मेरा गलत ख्याल था।' अर्थात् वह गर्भवती नहीं थी। तभी शायद बीबी ने कोई तैयारी नहीं की। सोचते हुए वह खाता रहा। खाना अच्छा नहीं लग रहा था क्योंकि बात अधूरी रह गई थी, पर अच्छा भी लग रहा था क्योंकि वह औरत सामने बैठी साथ खा रही थी जिसे वह अपनी बीबी समझता है, जिसको समाज और धर्म ने आज्ञा दी है कि वह उसके साथ खा सकती है चाहे वह तिरस्कृत है, और वह माँ की लाडली ही है। कभी वह उसे मुसकरा कर देखती और फिर गर्दन नीची करके शर्माती।

जब खाना हो चुका पत्नी ने कहा—'आराम कर लो।'

जूठे बर्तन लेकर भीतर चली गई। और वह पड़ा-पड़ा सोचता रहा। घर किराये पर मिल गया है। मकानदार ने घर को जबर्दस्ती सरकारी कानून के मुताबिक लिया जाता देखकर बिजली जरूर कटवा दी है। नसीम क्या कहेगी जब मै उसे उस घर में ले जाकर खड़ा करूँगा। शुरू में तो बेचारी को कुछ तकलीफ होगी, पर सब के पास तो खाना-पीना भी मुश्किल से जुटता है। उसे अपने बूढ़े माँ-बाप की याद आई। तभी बीबी ने प्रवेश किया और कहा—'अरे सोये नहीं? दरवाजा तो बंद कर लिया होता। इतनी हवा में क्या खाक नींद आयेगी!' हवा ऐसी तेज नहीं थी, पर वह हवा को स्वयं महसूस करने लगा।

दरवाजा उसने निर्भीकता से बंद कर दिया और चटखनी भी चढ़ा दी, जैसे वह भी हवा रोकने का इंतजाम था। वह मुस्कराया। बीबी बिस्तर पर आकर बैठ गई और कह उठी—'यह नहीं कि तुम्हें कभी मेरी याद भी आती हो। बड़े बेरहम हो। सारी सहेलियाँ मुझ पर ताने कसती हैं। कहती हैं तुझमें कुछ खराबी जरूर होगी......।'

फिर गिले शिकवे शुरू हुए। उसे सुन-सुनकर मजा आता रहा।

कुछ भी हो यह प्राणी उससे बँधा हुआ है। कुछ भी हो, इसे तो आज नहीं, कल झुकना पड़ेगा। माँ-बाप कब तक जीयेंगे ? भाभियाँ तो फाड़ कर खा जायेंगी। उसे न अपने माँ बाप का खयाल आया, न उसके बाप माँ का। केवल आँखों में बीबी की ही तस्वीर थी। और कमरे के धुँधलके में बेहोशी की एक हल्की सिहरन अब व्याप्त हो चली। उसने उसे हाथ पकड़ कर सुला लिया और कहा—'तुम सच बड़ी बेरहम हो।'

सड़क रुक गई। अब जैसे इस राह पर सब तरह के भावों को आने जाने का निमंत्रण मिल गया। फिर वे सोने का उपक्रम करने लगे, पर जागते रहे।

सुबह जब आँख खुली वह 'हाय अल्ला इतनी देर हो गई, कोई सुनेगा तो हँसेगा', कह कर कमरे से चली गई। वह उठा। अब कपड़े पहन हाथ मुँह धोकर बैठा, उसका छोटा साला उसे उसी नजर से घूरते हुए सामने से निकल गया। ससुर भी गये, पर उन्होंने भी उसे नहीं देखा। वह बैठा रहा। अंत में बीबी चाय की प्याली में चाय भर कर लाई और उसके सामने रख कर बोली—'पी लो।'

जब वह चाय पीने लगा वह धीरे-धीरे कहने लगी—'अम्मी भाभी से बहुत खफा हैं। वे कभी नहीं झुकेंगी। भइया दूसरी शादी करेंगे तो भाभी की जिंदगी तबाह हो जायेगी। इसलिये अच्छा हो दोनों घर से अलग हो जायें। फिर तुम भी यहीं आ जाना। कोई दिक्कत नहीं रहेगी...।

वह हक्का-बक्का सा देखता रहा। पत्नी खाली प्याली उठा कर चलती हुई कह गई—'ध्यान रखना। राज की बात है, किसी को जाहिर न कर देना। तुम भोले आदमी हो। भलो ! मैंने तुम्हें बता दी है।'

वह चली गई थी। कुछ देर वह बैठा रहा। फिर चलते वक्त उसने प्रतिज्ञा की कि अब वह इस जलील मतलबी लड़की के पास कभी नहीं आयेगा। पर यही प्रतिज्ञा उसने दस दिन पहले की थी और जाने कितनी बार उसे अपने आप तोड़ चुका था।

# तबेले का धुंधलका

जब हमको कहीं भी मकान न मिला, तब सब लाचार होकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

"गये थे ?" मेरी स्त्री पूछती।

"गया था। सब तरह की कोशिश की; लेकिन कोई सुनता ही नहीं। यह लोग अपने को हिन्दू कहते हैं ?" मैंने गुस्से से अपने होंठ काट लिये।

"क्या किया जाये ?" बहिन पूछती।

"जहर खा लें," मैंने तड़प कर उत्तर दिया।

उसके बाद स्टेशन के बाहर जो पेड़ों के नीचे का साया था, हम उसी में अपने चिथड़ों में आकर सो रहते। सोते तो क्या, हाँ, पड़े रहते।

कितने दिन हुए। उस सब को मैं भूल जाना चाहता हूँ। जिसके पास जाता हूँ, वही टाल बताता है। जिसके पास ताकत या पैसा है, उनके पास दिल नहीं है; जिनके पास दिल है, वे हमारी तरह शरणार्थी नहीं होते हुए भी कुछ ताकत नहीं रखते।

घर की परेशानी बढ़ती चली गई। आखिर कब तक इस तरह पेड़ों के नीचे काट सकते हैं ? हमसे तो ये कंजर अच्छे हैं, जिनके पास तंबू तो हैं। हमारे पास तो वे भी नहीं। बच्चा सूखकर काँटा हो गया है। उसकी शायद तिल्ली बढ़ आई है। माँ देखती है तो रोती है।

कुछ ईंटें बटोर कर एक चूल्हा बना लिया है। उसी पर बच्चे की माँ खाना बना लेती है। मैं मेहनत मजदूरी करता हूँ। जो मिलता है उसी से काम चल जाता है।

जहाँ मैं थक कर बैठता हूँ, वहाँ बहुत से मुझ जैसे ही गन्दे मजदूर बैठते हैं। शहर में सनसनी है। हिन्दू मुस्लिम दंगे का खतरा है। मुझसे रोज हमीद पूछता है—"कहाँ जायें?"

"पाकिस्तान जाओ, पाकिस्तान!"

"वहाँ क्या मिलेगा?" उसकी आवाज काँपती है।

"जो हमें यहाँ मिल रहा है।"

हमीद चुप होकर चला गया। मैं सोचता हूँ, क्या यह मैंने ठीक जवाब दिया है। पर मैं ज्यादा नहीं सोच पाता।

घर——।

सिर पर छत——।

एक आसरा——।

बच्चा रो रहा है। कमबख्त को कुछ समझ नहीं। माँ उसे चुपचुपाती है, चुमकारती है। आखिर वह सोने लगता है।

मैंने कहा, "पगड़ी माँगते हैं। जैसे सब के सिर नंगे हो गये हैं!"

"कितनी?"

"पाँच सौ, तीन सौ—।"

बहिन चुप, अब के स्त्री, "वैसे कोई ज्यादा किराये पर दे दे तो—।"

"ऐसा रहम दिल कोई नहीं।"

"पेड़ के नीचे ही रहेंगे," बहिन कह उठी।

स्त्री ने विरोध किया, "जाड़ों में?"

बच्चा फिर रो उठता है। मैं खीझ उठता हूँ। क्यों? यह मेरी मौत देख कर मानेगा।

बहिन उसे चुप करा लेती है। फिर बातें होती हैं।

अगर मालूम होता तो क्यों आते ?

अब तो लौट नहीं सकते। मेरे स्वर की ऊब से वे काँप उठती हैं।

बहिन कहती है आदमी आदमी नहीं रहे। किसी शरणार्थी से ही क्यों नहीं कहते ?

वे अपने बोझ से मर रहे हैं।

नई इमारतें बन रही हैं।

हूँ।

फिर रात की सनसनाहट। स्त्री फैल कर लेट कर बच्चे को दूध पिलाती है। सोचते-सोचते मेरा सिर अब दुखने लगा है।

स्त्री, बहिन, बच्चा सब सो गए हैं। आसमान में तारे बिखर गए हैं—असंख्य। शहर की बत्तियाँ बुझ गईं। केवल कहीं कहीं कुत्ते भौंक उठते हैं। मैं झपकने लगा हूँ।

जब मैं करवट बदल कर उठा, तब चूल्हे में से धुंआ उठ रहा था। मैंने देखा भोर हो गई। रेल की पटरियों के पास पड़ा पिसा सा कोयला और उसमें खड़े काले काले मजदूर दिखाई देने लगे। वे कुदाले लिए कुछ खोद रहे थे।

मैं उठकर पुल के नीचे जा बैठा। यहाँ सदैव इक्के तांगों का आना जाना लगा रहता। पुल के ऊपर से भयानक चिंघाड करती हुई रेल गुजरती थी। पुल पक्की ईंटों का बना था। दोनों दीवारों से सट कर बहुत से फल वाले, और छोटे-मोटे खोम्चों वाले बैठते थे। उनकी 'हाय-हाय' से ऐसा लगता, जैसे वह कोई रेल का स्टेशन हो। उन्हीं दीवारों के पास बाहर जरा सी जमीन खुली पड़ी थी। फकीरों से वह जगह घिरी रहती। फटे, गन्दे भिखारियों की भीड़ को देख कर मेरा भी मन दहल जाता था। कितने गरीब, कितने नंगे और हारे हुये लोग थे। सच, इनके मुकाबिले में हम कितने अच्छे हैं! वे हाथ उठा कर

पड़े रहते। या फिर इधर उधर चलते राहगीरों के पीछे पीछे भागा करते। उन्हीं में एक कंजरिया थी जो रात को वहीं सो जाती एक। बाबा उसे अपने पास से खिलाया करता था। सब उसे छेड़ते थे। पर कोई बात नहीं थी। मैं भी उससे नफरत करता था, क्योंकि इधर कुछ दिन से बाबा किसी भयानक बीमारी के कारण चिल्लाया करता था। पर उस पर अब सब ने ध्यान देना छोड़ दिया था।

बातों ही बातों में जब मैं अपना दुखड़ा ले बैठा, तो एक मक्खन-टिकिया के पेड़े बेचने वाले ने कहा, "क्यों,तुम्हारे पास पैसा नहीं? तुम कांग्रेस में भरती क्यों नहीं हो जाते?"

'हो जाऊँगा। फिर मकान मिल जायेगा?"

मुझे उत्तर नहीं मिला। और फिर मुझे याद आया। शरणार्थियों की कमेटी के मन्त्री हैं। कौन हैं? खैर, मैं उन जूतों की बड़ी दुकान वाले कांग्रेसी नेता से मिला था। उन्होंने कहा था, "तुम शरणार्थी नहीं पुरुषार्थी हो।"

मैं पुरुषार्थी हूँ! जिनके सिर पर छत नहीं पेट में दाना नहीं!

"अमाँ तुम!" एक आवाज सुनाई दी—"समझते हो यहाँ कुछ तसल्ली मिलेगी? नहीं भाई नहीं काम करो खाओ। मुसीबत किस पर नहीं पड़ी?"

"तुम्हारे भी बीस मकान थे?" किसी ने व्यंग किया, "सभी पंजाबी शरणार्थी वहाँ लखपती थे। गरीब तो मिलता ही नहीं।"

"ठीक कहा भाई ठीक कहा। हम तो वहाँ भी गरीब थे। यहाँ बैठे जो चाहे कह लो। क्या है! तुम पर भी जब मुसीबत आती न तब मालूम पड़ती।" ठेले वाला पंजाबी हँसा। उसके स्वर में तिक्त क्रोध था।

"तो फिर भाई", नारंगीवाला बोला—"वहाँ जैसे थे यहाँ भी

रहो। हमें कौन आराम है? महंगाई ने पीस रखा है। हमारा ही दिल जानता है। बच्चे माँगते हैं हम कुछ नहीं दे पाते।"

उसने निराशा से सिर हिलाया। फिर कहा, "गरीब तो भाई गरीब ही रहेगा।"

पंजाबी ठेला एक ओर ठेल कर फिर हँसा। उसने साबुन एक हाथ से जमा करते कहा, "तो फिर मरेंगे।"

मैं सुनता रहा।

"अब मेहनत-मजदूरी के दिन नहीं रहे", किसी ने हँस कर कहा—"ब्लेक का जमाना है।"

"सेठों की चढ़ बनी है। आजाद हो गये हैं।"

मैं सुन रहा हूं। स्वरों में आक्रोश है।

"सालों की चरबी कैसी बढ़ गई है। पुलिस भी उनके ही..."

"रिश्वत का जोर है भाई।"

"आजादी है भाई आजादी!" पंजाबी ने अंतिम चोट की और अब ठेला आगे बढ़ गया था। पंजाबी का लंबा शरीर भीड़ में मिल गया। अब खोम्चे वालों की आवाजें गूंज रही हैं सब तरफ। रोटी बन गई होगी मुझे भूख लग गई है।

मैं चुपचाप लौट कर आ गया।

खाना खाने लगा। बहिन ने कहा, "भइया अब यों कितने दिन चलेगा?"

"मैं ही तो मकान नहीं ढूंढता।"

"तुम तो बस चिढ़ जाते हो।"

"ढोल बजा कर मकान मिल जायेगा?"

मैंने निश्चय कर लिया कल से मैं भी एक ठेला लगाऊँगा।

खाना खा कर मैं फिर चल पड़ा। स्त्री ने टोका, "अब तुम फिर जा रहे हो?"

"कुछ काम देखूंगा।"

"आज दिन ठीक नहीं है दंगा हो सकता है।" उसने डरते हुये कहा।

मैं क्षण भर चुप रहा। फिर कहा, "अब और होना रह गया है?"

वह चुप हो गई। मैं चल दिया।

❀

शहर तिरंगों से लद गया है। चारों ओर सुन्दर सुन्दर झण्डे लटक रहे हैं। बिना भेद भाव के सब जगह छा गये हैं। पन्द्रह अगस्त का दिन आ गया है। सब लोग भाग रहे हैं। एक हिंदुओं की भीड़ टूटकर मुसलमानों पर हमला कर रही है। पुलिस के सिपाही खड़े हैं। मैं चाहता हूँ कि इन लुटेरों में मैं भी मिल जाऊँ। पर अगर मारा गया तो? तो बीबी बच्चा...बहिन? ठीक है पहले लड़ाई हो लेने दो। फिर लूट में जो मिलेगा उसी को लेकर भाग जाऊँगा।

जुलूस निकल रहा है। कितने सफेद टोपी वाले जा रहे हैं। अधिकतर मोटे-मोटे लाला हैं, दूकानदार। इनकी गर्दनें गर्व से कैसी टेढ़ी हो गई हैं। मुझे देखकर घिन हो रही है। मुझे अपने गंदे कपड़ों पर शर्म आ रही है। शहर में लूट हो रही है। मैं भी भाग चला। लेकिन हठात् ठिठक गया। गोली चलने की आवाज आ रही थी। भयानक ठांय। ठ्ठांय! फिर एक गूंज!

मैं डर कर लौट चला। कहीं मुझे भी गोली न मार दी जाये। गोली चल रही है। क्यों? आज आजादी का दिन है न?

मुसलमान परेशान हैं। कहाँ जायें? क्या करें?

मैं जब मुसलमानों के मुहल्ले के चौराहे पर पहुँचा, सारी सड़क सुनसान पड़ी थी। सड़क पर फौजी ही खड़े थे। उनके भारी बूटों की आवाज आ रही थी, और कुछ नहीं। बन्दूकों की नलियाँ चमक रही थीं।

किले के बाहर जो बहुत से तम्बू पड़े थे, उनमें एक सरकस था। उस सरकस की एक मुसलमान औरत को वह भीड़ पकड़ ले गई है क्यों कि, वह मुसलमान थी। वह गजब की औरत थी। शेर की पीठ पर पाँव रख कर खड़ी हो जाती थी और हाथियों पर नाचती थी। लोग कहते हैं उन्होंने उसे बेइज्जत करके मार डाला। मुझे अच्छा लगता है, पर मैं इस ख्याल से काँपता क्यों हूँ? मुझे किस बात का डर लग रहा?

जब मैं हाँफता हुआ पेड़ के नीचे पहुँचा, पत्नी सन्नाटे में डरी हुई बैठी थी। बहिन बच्चे को लिये लेटी थी। दूर से देखा। सरकस को हिन्दू मैनेजर बड़ी कोशिश से भी नहीं बचा सका। वहाँ एक लुटी हुई दुनिया थी। चारों तरफ हवा सनसना रही थी।

बहिन कह उठी, "कहाँ गये थे?"

"लूट में गया था।"

"क्या लाये?"

"क्यों लाये?"

"गोली चल रही थी।"

स्त्री के कान खड़े हो गये।

लेकिन मैं कांप रहा हूँ। वह तीखी आवाज में कह रही है, "तुम गुण्डे हो।"

"मैं?" मैंने अचकचा कर पूछा।

"हाँ। लूट कौन करता है?" वह मेरे निकट आ गई। उसने मेरे को पकड़ कर कहा, "जानते हो, तुम्हारी बहिन को आज हिन्दू उठा ले जाते।"

"क्यों?" मेरी आँखें फटी रह गईं।

"वे इसे मुसलमान समझे। पाजामा पहने थी। फिर मैं चिल्लाने लगी। तब एक ने कहा, छोड़ो, यह तो सिंधी शरणार्थी है।"

तभी एक पुलिस का सिपाही आ खड़ा हुआ। वह बड़ा मजबूत

था। मैं उसे देखकर छोटा हो गया। उसको देख कर एक और आदमी समीप आ गया। उसने कहा, "क्या बात है, जमादार ?"

"देखो सालों को," सिपाही ने कहा, "सब जगह कर्फ्यू लगा है और जनाब को देखो, मजे से औरतें लिये बैठे हैं।" वह हँसा।

मैंने चिल्लाकर कहा, "घर नहीं मिलता।"

"बेचारे शरणार्थी !" दूसरे उस चर्बी चढ़े आदमी ने कहा, "गरीब मालूम देते हैं।"

"अजी, सो न कहो। सब के पास माल है। ले के आये हैं।"

"यों न कहो, जमादार। जो मिला सो ही ले भागे हैं।" फिर वह आदमी मेरे परिवार पर निगाह डाल कर कह उठा, "बस, ये ही लोग हैं तुम्हारे साथ, और कोई नहीं ?"

"नहीं," मेरी स्त्री ने कहा—"बाबू और कोई नहीं। भगवान तुम्हें सब कुछ देगा, हमारी नाव किनारे लगा दो।"

"अरे तो रोती क्यों हो। सब होगा, सब होगा। यहाँ तो अपना राज है, फिर डर किसका ?"

उस आदमी की बात में हमदर्दी थी। वह कह रहा था, "अब तक इतने शरणार्थी आये हैं। उनका कुछ न कुछ इन्तजाम हो गया कि नहीं ? कोई सदा आफत में थोड़े ही रहता है। सब का एक वक्त होता है।" वह बहिन को घूरने लगा। वह सहम गई। वह घूरता रहा। उसकी आँख में जहर था। मुझे ताज्जुब हुआ। कैसा आदमी है जो जरा भी नहीं सकुचाता मैंने देखा, बहिन सहम गई थी। वह आदमी कहने लगा, "तो जमादार बात क्या है ?"

"बात यही है कि यहाँ तो कर्फ्यू लग गया है। कोई रात को दो टुकड़े कर गया तो ? फिर बेटा को सुपने दीखने लगेंगे। यहाँ जम गया है, जैसे यह कोई मकान हो।" आदमी हँस पड़ा और वह सिपाही कह रहा था, "उठो, उठो यहाँ से। चलो उठो भागो।"

"तो कहाँ जायें ?" स्त्री ने चिल्लाकर कहा।

सिपाही ने फोश गाली दी। मुझे लगा मेरी नसें फट जायेंगी।

"ऐ ऐ," मैंने हाथ उठाकर कहा, 'कैसे बोलते हो ?"

सिपाही ने कहा, "साले, चमड़ी उधेड़ दूंगा अभी। ले जा इन कुतियों को। आजकल कुत्ते बहुत हो गये हैं…।"

वह हँसा। उस आदमी ने कहा, "चलो मेरे साथ।"

हम उठ कर उस आदमी के पीछे-पीछे चलने लगे। मेरा मन कह रहा था कि उस सिपाही के सिर पर कसके एक पत्थर मार दू और भाग जाऊँ। पर फिर स्त्री, बहिन, बच्चा…?

और वह आदमी कह रहा था, "सिपाही सब ऐसे ही होते हैं। बात यह है कि सरकार ने इन्हें छूट दे दी है। देनी पड़ती है, भाई, वर्ना लोग क्या मानेंगे ? तुम बुरा न मानना…।'

मैं चुपचाप चलता रहा। किसी ने भी कुछ नहीं कहा। फिर हम सड़क से गलियों में चलने लगे।

किसी ने कहा, "रागो भैये, रंग है।"

हमारे साथ का आदमी दया से कहने लगा, "बेचारे सताये हुए हैं…।"

जिस जगह उसने हमें खड़ा किया, वह एक तंग-सी जगह थी। एक तरफ मकानों की ऊंची-ऊंची दीवारें थीं। छत पर तिरंगे झंडे लटके हुए थे। फिर भी मुझे और कोई चमक दिखाई नहीं दी, जो चेहरे पर होनी चाहिये थी।

"यह तबेला है ?" मैंने पूछा, "यह ?"

"हाँ, हाँ, यही मेरे भाई," उस आदमी ने कहा, "वह देखो, सड़क के पार नल है। वहाँ से पानी मिल जायेगा।" फिर उसने मेरी बहिन की ओर देख कर कहा, "तुम चाहो तो हम अपने भीतर जो नल है न दालान में, वहाँ से इन्तजाम करवा देंगे। उधर मैं ही रहता हूँ।

गोदाम है न ! हाँ । वहाँ से पानी भर लेना, वहाँ भीड़ नहीं होगी ! धक्कम धुक्की भी नहीं होगी ।..."

स्त्री हर्ष से चीख उठी । उसकी आँखें चमक रही थीं । स्त्री घर मिलने से कितनी खुश होती है ! यह न होती तो काहे को मुझे इतनी परेशानी होती । मेरा क्या, चाहे जहाँ रह लेता । इस औरत ने मुझे कितना कमजोर कर दिया है । कोई सहारा नहीं । कोई मददगार नहीं ।

स्त्री ने उल्लास से कहा, "भइया, भगवान तुम्हें देगा ! तुमने जो इतनी हमें मदद दी है, इसे क्या भुलाया जा सकता है ?"

"सेठ के यहाँ नौकरी करोगे ?" उसने मुझसे पूछा ।

मैंने आश्चर्य से आँखें फाड़ कर देखा । फिर कहा, "मैं ठेला लगाऊँगा ।"

तब उस आदमी का स्वर बदल गया । उसने तबेले की ओर देख कर कहा, "कितना रुपया दोगे ?"

"रुपया ? जो किराया हो ?"

वह मुस्कराया । "सेठ को पगड़ी और हमको मेहनताना ।"

"तुम हिन्दू हो ?" मैंने चौंक कर पूछा ।

"तो क्या तुम समझते हो पाकिस्तान में यह नहीं होता । वहाँ से भी तो मुसलमान भाग भाग कर आ रहे हैं," उसने हँसकर कहा । और वह बात भले ही मुझसे करता हो, पर घूर रहा था मेरी बहिन को—बुरी तरह, जैसे खा जायेगा । उसकी आँखें लाल हो चली थीं । बहिन मुँह फेर कर खड़ी थी । मैंने कहा, "इधर देखो ।"

पर उसने वैसे ही कहा, "इतना भी एहसान नहीं मानते ? सेठ को पगड़ी दोगे ? पाँच सौ रुपया लगेगा । समझे ?" वह कठोर हो गया था, "पांच सौ । कल ही एक मुझसे साढ़े चार सौ कह गया था । पर उसके बहिन नहीं थी ।" फिर जैसे कुछ नहीं हुआ, वह मुड़ कर बोला "इसमें हर्ज ही क्या है ? किसी को मालूम भी नहीं होगा ।"

मैं सिर पकड़ कर बैठ गया। मेरी स्त्री और बच्चा सब आँखों में डोल गये। ऐसा तो सुना था कि जगह दे दी, फिर जोर-जबरन किसी तरह बाद में छिपा-चोरी काम निकाल लिया। पर यह जानवर मुझसे साफ़-साफ़ कह रहा था। यह मेरी बहिन जिसे मैं इतना साफ़ और पाक समझता था! आज यह मुझसे कह रहा है! इतनी हिम्मत क्यों की इसने क्योंकि यह मेरी मजबूरी जानता है।

और जैसे-जैसे मेरा गुस्सा बढ़ रहा है, मुझे लगता है; मेरे हाथों की ताकत खोती जा रही है। सारी देह में झनझनाहट हो रही है, और लगता है कि हथेलियों में खून बिल्कुल नहीं रहा है। मैं पथराई आँख से देख रहा हूँ।

हृदय फट रहा था : मेरी बहिन! वह चुपचाप खड़ी उसे देख रही थी। उसकी आँखें फटी सी थीं—सूखी, चमकदार। और वह आदमी निडर-सा उसे देख रहा था, जैसे उसे आँखों से निगल जायेगा।

स्त्री कभी उस आदमी को देखती, कभी अपनी ननद को, कभी मुझे और फिर उसकी दृष्टि तबेले पर जाकर अटक जाती। घृणा, आशंका, भय उसकी आँखों में काँप कर भाग जाते और घर पर दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखों में एक चमक आ जाती। फिर वह बहिन को विवश दृष्टि से देखने लगी, जैसे कुछ भीख माँग रही हो। बहिन ने देखा। उसका सिर झुक गया। वह मेरी स्त्री से आँखें नहीं मिला सकी। पर रोया कोई नहीं। यह मौत नहीं थी। यहाँ कुछ और ही था। पर क्या वह सचमुच कुछ था?

और मैंने कहा, "वह नहीं।" अनजाने ही मेरी दृष्टि बहिन से हट कर अपनी स्त्री पर अटक गई। जैसे मैंने एक बदलाव पेश किया था। मैं समझता था कि स्त्री मेरी स्त्री है। उस पर मेरा अधिकार है। सच यही हुआ। स्त्री ने कोई विरोध नहीं किया। केवल मेरी ओर देखा, फिर बच्चे की ओर।

दुनिया खामोश हो गई थी। मन मिचलाने लगा। जैसे अब मैं सचमुच जमीन तोड़ दूंगा। क्या मैं पागल हो गया हूँ?

मुझे ख्याल आ रहे हैं।

स्त्री ने हठात् उससे पूछा, "तुम अकेले आदमी हो?"

"हाँ, बिल्कुल।"

"तो यहाँ रहेंगे। किराया बताओ।"

"पन्द्रह रुपया तो तुम क्या दोगे। आओ साढ़े सात ही दे देना। इससे कम नहीं होगा। पैसा तो तुम्हारे पास भी होगा?"

और शरणार्थी पैसा लेकर भागे थे लेकिन मैं तो वहाँ भी गरीब था, यहाँ भी गरीब हूँ। मैं क्यों भाग आया?

यह मैं क्या देख रहा हूँ? अब मेरी स्त्री के चेहरे पर वह भय नहीं है। वह सुस्थिर हो गई है। मेरी बहिन उसे देखकर अब ठीक-सी लगती है। उसने आँखों से कुछ कह कर समझा देना चाहा है।

वह भी अपनी बात, असलियत और जिम्मेदारी समझती है। वह क्या तकलीफें पसंद करती है? कब तक चट्टान बनी रहे? या फिर मर जाये। मरना बहुत कठिन है। क्यों मरे?

मरना ही होता तो घर छोड़ कर भागते? जहाँ बचपन से पले थे जहाँ का एक एक रास्ता याद था। यहाँ हम आदमी की शक्ल वाले जानवरों में घूमते हैं, जिनमें किसी को भी हम अपना नहीं कह सकते।

पर वह आदमी हंस रहा था। मैं चाहता हूँ मैं उसका खून कर दूँ। उसका गला घोट दूँ। उन आँखों को उंगली डाल कर बाहर खींच लूं, जिनमें इतना बड़ा पाप जीवित जल रहा था और फिर उस जगह मिट्टी भर दूँ। या सदा के लिए इस आदमी का सीना फाड़ कर हृदय का रक्त पी जाऊं। नहीं मुझे मंजूर नहीं है। मैं कभी भी नहीं सह सकूंगा। जैसे इतने दिन भटके हैं और दो दिन सही।

कल ही से मैं भी ठेला लगाऊँगा। उसी पर सोऊँगा। उसके नीचे

मेरी गिरस्ती रहेगी। पर वह ठेला खड़ा कहाँ होगा? और करफ्यू के जमाने में...?

कांग्रेस के नेता से मिला था। वे बड़े-बड़े सवालों में अटके हैं। काश्मीर की लड़ाई है। मैं पूछने लगा था, "बाबू जी, यहाँ की महंगाई तो मारे डालती है।"

उन्होंने कहा था, "फिर आना।"

मैं चला आया था।

और वह आदमी खड़ा है। बहिन उससे कुछ कह रही है, धीरे-धीरे ही। मैं नहीं जानता, बहिन ने क्या कहा है। वह आदमी चला गया है। चलते वक्त वह खुश था। उसकी आँखें चमक रही थीं। फिर मैंने सुना, "इस तबेले के पीछे उसके सेठ उससे नाराज होंगे। यहाँ कभी-कभी गेहूँ के बोरे छिपाये जाते थे—पहले जब पुलिस का डर था, कण्ट्रोल था। अब तो डर नहीं। फिर भी उनके काम की जगह है। इसके वह चाहे हजार रुपये खड़े कर लें।"

फिर जैसे एक बात बिना कहे ही समझ ली गई। घर में बहिन का भी तो फर्ज था। बहिन कह उठी, "पगड़ी नहीं देनी होगी!"

"कौन जाने!" स्त्री ने भय से कहा कि कहीं मैं बुरा न मान जाऊँ। फिर उसने धीरे से कहा, "आखिर को जगह मिली। तुम इस जगह को सरकार से लिखवा लो!"

स्त्री नादान है। वह क्या आसान काम है? इस सेठ के सामने!

× × ×

मैं उठ कर गली में आ गया। तीन आदमी बातें कर रहे हैं। मैं सुन रहा हूँ। शायद पास-पड़ोस के नौकर-चाकर हैं।

"कई आदमी मारे गये।"

"कोई गिनती नहीं," स्वर भारी था।

"हिन्दू एक नहीं मरा।"

"लेकिन दंगा तो मुसलमानों ने शुरू किया था !"

"यह क्या कोई रोक सकता है ?"

फिर एक खामोशी। सबकी बात चुक गई।

"शरणार्थी हो ?"

"हाँ।" मैंने उत्तर दिया।

"गेहूँ का कण्ट्रोल होगा, भाई।"

"सच ?" कोई स्त्री पूछती है।

"भीतर सरक आओ, भाई। वक्त नाजुक है। जाने किस वक्त क्या हो जाये।"

"हूँ ! क्या हुआ ?"

"घर जाओ, अपने अपने घर। सिपाही आ जायगा।"

तभी कोई वेग से भागा और चिल्लाता हुआ गायब हो गया, "भीतर भाग चलो। पुलिस आ रही है, साथ में फौज है। गोली चला देने का हुक्म हो गया है। बाप रे !"

मैं सुन पड़ गया। आज आजादी का दिन था। कसूर किसी का था, आफत तो हमारी है। चारों ओर देखा, दरवाजे फटाफट बंद हो रहे थे। लोग भाग रहे थे। अंधेरा झुक गया था।

मैं कुछ भी नहीं सोच सका। घर की याद आ गई। आखिर मेरे भी घर था।

भारी भारी गाड़ियाँ शहर में अमन फैलाने के लिए चल पड़ी हैं। उनके पहियों की हल्की घरघराहट काँप रही है। ऊपर बहुत से जवान खाकी वर्दी में चुस्त और तैयार खड़े हैं, चौकन्ने से। वह गुस्से हैं ! एकदम कठोर। हाथों में बंदूकें हैं। मैं जानता हूँ, वह न हमारी बोली समझते हैं, न दिल। बड़ी निर्दयता से गोरों की तरह गोली चला देते हैं। बिल्कुल दिमाग नहीं होता इनके।

घरों के भीतर से आवाजें गूंज उठीं—"आजाद हिन्दुस्तान जिन्दाबाद !"

मैं भाग चला। अंधेरा छा चला है। धुंधली छायाएँ अब काँप उठी हैं। सड़कें सुनसान हैं। कुछ भी आवाज नहीं सुनाई देती। गर्व से तिरंगे सिर उठाये खड़े हैं। मुझे फिर एक विश्वास-सा होता है। उधर किसी मुहल्ले में बंदूकें चलने की आवाज सुनाई दे रही है।

सामने ही मेरा तबेला दीख रहा है।

लेकिन ज्यों ही भीतर घुसने लगा, मेरा शरीर किसी से टकराया। मैं लड़खड़ा कर गिर गया। सामने वाला व्यक्ति भी गिर गया। उसके मुंह से एक हल्की कराह निकली। मैंने धीरे से उठ कर देखा, हाथों का सहारा दिया। गिरने वाला व्यक्ति भी उठा। उसने कहा, "चोट तो नहीं लगी ? अभी से कैसे आ गये ?"

"नहीं। भागा चला आ रहा था।"

यह मेरी स्त्री थी। पूछा, "क्यों क्या हुआ ?"

"कर्फ्यू लग गया है। दरवाजा बन्द कर ले।"

"अभी नहीं ठहर जाओ। यहाँ पुलिस कुछ नहीं कहेगी इस वक्त। थोड़ी देर बाद बंद कर लेंगे।"

"क्यों ?" मैं कुछ नहीं समझा, "भीतर अंधेरा क्यों है ?"

वह कुछ सकते की सी हालत में रही। फिर उसने धीरे से कहा, "चुप, सेठ का आदमी आ गया है। उसके पास कर्फ्यू पास है।"

मैं समझ गया। मैं लेटा हूँ, या गिर गया हूँ। मेरी स्त्री कह रही है, "जानती हूँ। तुम इसे नहीं सह सकते। पर.....पर वह मुझे पसंद जो नहीं करता था...।"

मैं सुन रहा हूँ। मेरा खून पानी हो गया है।

स्त्री कह रही है, "किसी को क्या मालूम ? रहने को तो जगह मिल ही जायगी।" फिर जैसे उसने मुझे सांत्वना दी, "अब पगड़ी नहीं देनी होगी। परदेश में अपनी क्या इज्जत ?"

# रेडियो की दूकान

Not a ... Booth

संगीत की तान उठती हुई झूम रही थी, जैसे उस सजी हुई दूकान में एक करुणा वातावरण छा रहा था। लेकिन लोगों के चेहरों पर उस संगीत की आत्मा का कोई प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा था। सब जैसे अपने अपने में मग्न थे।

दूकान में एक सिख बैठा था। वह कोई बड़ा अफसर था। उसके फौजी कपड़ों में करा कलफ था। वह गोरा आदमी था। उसकी दाढ़ी, उसका डील-डौल—सब कुछ में एक बनावटीपन था।

उसके साथ उसकी गोरी-गोरी पत्नी थी, जो निहायत नाजुक थी और अपने बाज़ों के उसने बेहतरीन नुमाइशी छल्ले सामने की तरफ उठाये हुए थे। उसके सुन्दर रूप में लावण्य नहीं था, क्योंकि हर तरफ उपेक्षा से देखती हुई वह अपनी भौं तान लेती और कभी-कभी जब मुस्कराती, तब लगता वह कोई अहसान कर रही हो। उसके होठों पर इस कदर लाली थी, जैसे कोई चुकन्दर काट कर रख दिया गया हो।

दूकानदार काश्मीरी था, श्यामनाथ दर। ऐसा होगा करीब तेंतीस-चौंतीस साल का गठीला आदमी जो भकाभक कमीज और पतलून पहने था। उसके हाथों पर घने बाल थे और उनमें से एक पर प्लैटिनम की चमकदार जंजीर में सफेद चमचमाती घड़ी बंधी थी। वह अपनी घनी भौंहें उठाकर मुस्कराता।

उसने कहा, "यह सेट ले जाइये। इसके वाल्यूज बहुत अच्छे हैं।

मैं आपको—" और उसकी नजर घूम गई, "इससे भी अच्छी चीज दिखा सकता हूँ।"

चुस्त रेशमी कपड़ों में ढंकी स्त्री हँसी, बहुत अच्छी लगी; पर वह हँसी बनावटी थी। तभी रेडियो पर खबरें आने लगीं। जहाँ पहले 'आदाब अर्ज' होती थी, वहाँ अब 'जयहिंद' से काम शुरू हुआ। सिख अफसर कुछ सोचने लगा। स्त्री अब भी मुस्करा रही थी और दर उसको छिपी आँखों से देख रहा था।

सब खामोश होकर रेडियो सुनने लगे। खबरें अब विस्तार से सुनाई जा रही थीं।

"अच्छा," सिख ने लंबा कदम आगे बढ़ा कर कहा—"मैं फिर आऊँगा।"

और वे चले गये। दर निराशा से मुस्कराया। वह उस स्त्री को तब तक देखता रहा, जब तक वह दिखाई देती रही।

तभी शुक्ला ने प्रवेश करते हुए कहा, "जनाब के मिजाज तो अच्छे हैं! अब तो बड़े बड़े जायकेदार ग्राहक आने लगे·····!"

"चुप रहो, बको मत!" गुमा चिल्लाया, जो अंदर की कुर्सी पर टाँगें ऊपर रखे रेडियो की खबरें सुन रहा था।

सड़क पर सात-आठ मोटरें अपना भोंपू बजाती हुई गुजर रही थीं। शुक्ला ने सिर हिला कर कहा—"अये मियां, सुन रहे हो!"

उसकी बात सुन कर दर चौंक उठा। वह अपने दिमाग में इस वक्त कल्पना कर रहा था—रेडियो बिकेगा। फिर वह उनके घर आने जाने लगेगा। औरत तो मुश्किल नहीं। ये औरतें उसकी नजर में ढीली औरतें थीं। लेकिन दर के सामने वह हट्टा-कट्टा सूंस सिख आ खड़ा हुआ। वह उसकी पिस्तौल की नली घूर रहा था कि शुक्ला ने उसके विचारों को तोड़ दिया। उसने इशारे से शुक्ला को चुप रहने को कहा।

जब खबरें खत्म हो गईं, गुप्ता ने लंबी सांस लेकर कहा, "अब क्या किया जाये ? उधर फिलस्तीन, इधर अमरीका और रूस, चीन की लड़ाई, हैदराबाद की अकड़, काश्मीर की लड़ाई—और भी जाने कितनी परेशानियाँ हैं। मँहगाई भी बढ़ी है। सरकार खुद परेशान है कि ब्लैक-मार्केट दबाये नहीं दबता। जिसे देखो, पैसे के लिये कुत्ता बना बैठा है।"

"बड़ी खुशी की बात है," शुक्ला ने ताना मारते हुए कहा, "अब आपको क्या मिल गया ?"

सवाल बड़ा बेतुका था। मिलने को क्या था ? कुछ नहीं। आदमी का काम है दुनियाँ की हलचलों को समझना, हर चीज की जानकारी रखना।

"आपकी कोई राय लेता है ?" शुक्ला ने फिर पूछा।

सदर की चौड़ी सड़क पर उस समय शाम का अंधियाला होने लगा था। सड़क की बिजलियाँ जलने लगी थीं। सब कुछ साफ सुथरा था। काली सड़क अपना चौड़ा वक्षस्थल फैलाये पड़ी थी। सड़क पर अब अनेक लोग चल रहे थे और सबके कपड़े अत्यंत सुन्दर थे।

एक पंजाबिन को देख कर शुक्ला ने डट कर अंगड़ाई ली और कहा, "कौन कहेगा यह शरणार्थी है ? इसके रेशमी सैटिन के चमकदार कपड़े और कहाँ हमारे······।"

उसने निराशा से सिर हिला, अपनी अमरीकी ढंग से कटी मूंछों की जगह को हिलाया, फिर उसने अपनी नाक सिकोड़ ली और दोनों हाथ फैला दिये, मानों अब शब्द नहीं रहे—क्या कहे, क्या न कहे······।

सामने से फौजी गुजर रहे थे। इस समय वे शाम को टहलने के लि निकले थे। ऊँचे-बड़े सभी किस्म के अफसर थे। आदमी कितना भी मजबूत हो, कठोर हो, वह पानी के नल की तरह होता है; पर फौज

में पहुँचने पर उस पर खाकी रेते के दो चार रंदे लगे नहीं कि फिर उसमें राइफल की नली जैसा सुताव और चमक आ जाती है, वह ज्यादा खतरनाक दिखाई देता है। हाँ, तो उन फौजियों की चाल में मस्ती थी। वे अपने को आजाद महसूस करते थे, क्योंकि दो-चार अंग्रेज जब मिलते, तब बराबरी से, बड़प्पन से नहीं।

गुप्ता को यह सब पसन्द नहीं आया। उसने अपने गाँव की नाइन का जिक्र छेड़ दिया। जमीदार आदमी था। उसके पास ऐसे झूठे-सच्चे किस्सों की भारमार थी। अपने में मस्त रहता था। अक्सर किताबों में जो पढ़ता, उसमें अपने आपको रखकर कहानी सुना देता। अबकी बार एक नया किस्सा शुरू हुआ था। तथ्य और तत्व इस सात सौ पैंसठवें किस्से का वही था, जो आज तक सब सुन चुके थे।

"क्या हुआ! क्या हुआ?" शुक्ला पूछ बैठा। उसको गम था कि वह शहरों की छोटी-बड़ी जिन्दगी देख चुका है, लेकिन गाँवों के बारे में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है—और हिन्दुस्तान की सारी जिन्दगी गाँवों में ही है। लेकिन अभी तक उसके 'जिन्दगी' शब्द का अर्थ 'स्त्री' था, क्योंकि वह कुछ और अपनी बात के लायक ही न समझता था। अब वह किस्सा सुनने लगा। गुप्ता अब चहक रहे थे। पतली कमर शेर की-सी थी, लेकिन सीना उनका अपना था, उसमें कोई शेरपन नहीं था। गोरे आदमी थे। कभी जब मंसूरी गये थे, दिन में दो बार हजामत बनाते थे, इससे मूँछों की चौड़ी जगह तथा कहीं कहीं उगी दाढ़ी की जगह काली पड़ गई थी, और चूँकि वे गोरे थे, इसलिए जैसे उनके गोरेपन ने उनकी बाकी बद-शक्लियत को छिपा लिया था। यह कालापन भी हल्का-स्लेटी सा दिखाई देता था। बहरकैफ, काफी दूर से देखने पर वे सुन्दर लगते थे और इसी से उजाले में करीब आने के दुश्मन थे।

बात बढ़ती जा रही थी। सुनने वाले कब चले थे। पर वह अपना

मलमल का कुर्ता; जिसके भीतर से चमकती जालीदार बनियान, सफेद ढीला लट्ठे का पाजामा पहने बैठा था। उसकी बला से, क्या कुछ हो, बस हाथ की घड़ी चलती रहे। इससे बढ़ कर कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि जिन्दगी चली जा रही है, चली जा रही है, बस ठीक है···

उसकी बात ऐसी थी जैसे बच्चे के हाथ में पेंसिल पड़ गई हो और पहले तो उसे घुमा फिरा कर देखा; फिर कागज पर लकीरें खींचना शुरू किया, तो गोले बने, और एक के भीतर एक, एक को काट कर दूसरा···परिणाम में कोई चित्र नहीं बना, बस काटा-कूटा, उलझन। या नाई का लड़का अब किसी दूसरे की हजामत बना रहा था। अभी उसका हाथ सधा नहीं था और दूसरे आदमी की खाल जगह जगह से कट रही थी, जैसे उस्तरे और हाथ का कसूर नहीं, वह तो खाल ही बतख की तरह पतली है, जिसके भीतर कोई तनाव नहीं, मरियल, फुसफुसी····

आखिर तंग होकर शुक्ला ने कहा, "नहीं सुनेंगे। कोई किस्सा है। हम समझे कि खत्म होने वाला है, पर वह है कि 'खैर साहब' कह कर बढ़ रहे हैं, और किस्सा नतीजे में अभी शुरू ही नहीं हुआ। मेरा रूमाल साफ था। क्यों साफ था? बधोया···यानेधोह बो क्योंकि रूमाल सूती है, भट्टी पर चढ़ सकता है, हिश! यह कोई गाँव है। ठीक से बात करो। देहाती! दहकानी·········!"

मुंह फाड़े गुमा देख रहा था। दर अब हँसा, जिससे नवाबी जिस्म वाला गुमा खिसिया गया। उसने कहा, "तुम सुनोगे, सौ दफा सुनोगे। कोई बात है? ऐसा लुत्फंदाज, ऐसा तीर-सा चुभने वाला किस्सा है कि तुम सुन कर कह उठोगे······"

किन्तु उसकी बात रुक गई।

'अच्छा' करके दर उठा; पर गुमा फिर अब शुक्ला का कंधा पकड़ कर किस्से की जगह अपनी नाइन को खूबसूरती की तारीफ करने लगे।

शुक्ला ऐसे ताज्जुब से देख रहे थे जैसे उन्हें सोने का अंडा देने वाली मुर्गी मिल गई थी जिस पर विश्वास करना कठिन था।

सामने मिस्टर करमरकर खड़े थे। पतले-दुबले आदमी थे। काले-काले से, पर चेहरे पर किरमिच के जूते की-सी चमक थी—यानी कि वे क्रीम और स्नो का प्रयोग करते थे। अभी तक अंग्रेजी बोलने के शौकीन थे। वे चश्मे में से मुस्कराये और जान-बूझ कर कुछ उन्होंने गलत हिंदी में कहा, क्योंकि वे अभी तक अपने को ठीक नहीं कर सके थे। वे टेक-निकल इंजीनियर थे और किसी कच्चे-मच्चे नहीं, फौलादी ब्लैक मार्केट करने वाले मिल-मालिक के यहाँ इंजीनियर के पद पर नियुक्त थे।

गुप्ता ने देखा तो बात बंद की, जैसे रेडियो बंद कर दिया, या पहले वह कोई किताब पढ़ रहा था, जिसके पन्ने हवा से उड़ गये।

उँगलियाँ चटकाते हुए दर ने कहा—"वाह, क्या कहने हैं, करमरकर साहब आये हैं! मिस्त्री!"

मिस्त्री भीतर से निकल कर आया। उसके हाथ में अब भी कोई औजार था। शायद वह बीड़ी पी रहा था; आवाज सुन कर फौरन उसे उठा लाया कि काम में लगा था, जैसे बड़े भाई के आवाज देने पर छोटा भाई झट मुंह में रोटी रख कर भरे-मुंह कह उठता है—"आया भाई साहब, खाना खा रहा हूँ।" मतलब यह कि खुद काम कर लो। मिस्त्री और करमरकर भीतर चले गये।

वे सब हँसे। करमकर अपने आपको जोश में कभी कभी 'कारमेकर' कह जाते, यानी मोटर बनाने वाला और जब सब उन पर प्रसन्न होते, वे कल्पना में अपने को फोर्ड जैसे अमरीकी करोड़पतियों की गणना में देखने लगते।

गुप्ता गीत सुनने लगा।

अब रात होने लगी थी। सड़क पर अंधेरा हवा के झोंकों पर बहने लगा था—वे झोंके जो स्त्रियों के शरीर, केश में लगे चूर्ण और

द्रव्यों की गन्ध से भारी हो गये थे, जो पुरुषों के भारी जूतों की पगध्वनि सुन कर ऊपर ही ऊपर काँपते और भागती मोटरों से छितर-छितर कर फिर किनारों पर फैल जाते।

पड़ोस के जीने पर कुछ खिलखिलाहट की आवाज आई। गुप्ता ने शुक्ला का पाँव दाबा, यानी सुनो। तीनों जानते थे। तभी करमकर लौट आये। दर ने कुछ पूछा, जिसके जवाब में एक अस्फुट ध्वनि 'ट्' जैसी मुँह से निकली। वह उनका महाराष्ट्री नकार था। फिर 'हाँ' करने में दोनों तरफ सिर हिलाया, जैसे लेफ्ट, राइट......

"अबे, अब हिन्दुस्तान आजाद हो गया है", शुक्ला ने कहा। उसका मतलब करमकर से नहीं था, बल्कि उस खिलखिलाहट के प्रति इशारा था। वह एक पुरानी जानी-पहचानी जगह थी। वहाँ ऐंग्लोइंडियन लड़कियाँ रहती थीं, पेशेवर......।

तभी मिस्त्री ने बीच का पर्दा हटा दिया। अंदर अनेक रेडियो रखे थे; इनकी टेक्नीशियन लोग मरम्मतें कर रहे थे। बहुत बड़ी दूकान थी। करमकर ने जो भीतर राय दी थी, उसी के विषय में दर से बातचीत हो रही थी। दोस्त थे, कभी कभी राय देते थे। बाहर से दिखाई दिया।

टेक्नीशियन कादिरी भीतर बैठा पुर्जों से दिमाग लड़ा रहा था। वह काला था—चिकना काला था। उसकी खाल ऐसी लगती थी, जैसे वह सारी कलौंच एक शीशे के पीछे हिल रही हो इस समय किसी रेडियो के अंजर-पंजर ढीले किये उस पर जुट रहा था। करमकर चले गये थे। कादिरी ने थक कर अपनी नीली पतलून से हाथ पोंछे और कुहनियों के ऊपर लिपटी चढ़ी कमीज की आस्तीन से माथा। उसके दाँत चमकने लगे। उसने बढ़कर पर्दा गिरा दिया, पर असलियत यह थी कि बीड़ी पीने में दिक्कत हो रही थी।

गुप्ता बोले—"यही हरामखोरी किसानों में आ गई है। जमाना है !"

वे 'यही' का अर्थ समझे। दर ने धीरे से कहा—"देखा, कितना चालाक है ! वैसे इसने जाहिर किया है कि दूकान का 'शो' खराब हो रहा है, और मैं कुछ कह भी नहीं सकता। आजादी क्या मिली, हर राह चलता बराबर हो गया और नहीं हुआ वो होना चाहता है। जिसे देखो अखबार पढ़ता है !"

बाहर पल्लेदार आ बैठे थे। एक कह रहा था, "सैंया भये कुतवाल अब डर काहे का। दरोगा जी तो बस ओलम टीटी, घर में जाय गवैया पीटी......!"

उसके शिकवे लंबे थे।

शर्मा थका-माँदा भीतर घुसा। उसने आते ही अपनी बात छेड़ दी। वह परेशान था—"कचहरी में फँस गया था। एक कारखाना खोलना चाहता था। एक बुड्ढे माली को थोड़ी-सी जमीन थी; साला देने से इन्कार करता है। देशी आदमी कभी काम के लिए कुर्बानी नहीं दे सकता। कहता है, खाऊँगा क्या ! मैंने भी एक ही चाल चली है। दरोगा को मिलाकर पकड़वा दिया उसे। वह हैं न लाला खुशखतराय, बस लीडर आदमी हैं। उनकी सिफारिश है। दुनिया चिल्ला रही है, पैदावार बढ़ाओ; पर यह लोग सुनते हैं ! लेकिन एक चोट हो गई।"

"क्या हुआ ?" गुप्ता ने कहा—"अब वह जमाने नहीं रहे, बड़े भाई; वर्ना मजाल थी। हाँ, क्या हुआ ?"

"यार", शर्मा ने अपनी रेशमी अचकन की जेब में से रूमाल निकालते हुए कहा, "खुशखतराय साला तीन हजार रुपया खा गया। नेता आदमी है, भाई। तपस्या का फल पा रहा है। अमां, हम तो डरते हैं, उसने मजदूरों पर अपने कारखाने में लाठी चलवा दी। समझे ! जेल जाता था, जनाब......!"

शर्मा बहुत कुछ कहना चाहता था।

"कसम से?" शुक्ला चिल्लाया, "वाह मेरी सरकार! धीरे धीरे सब हो जायगा!" और बहुत गुनगुनाने लगा—"साजन का थाना बलम धीरे बोल, कोई सुन लेगा!" फिर हँसा, कह उठा, "प्यारेलाल, पूत के पाँव पालने में दिखाई देते हैं...!"

वह कहते कहते रुक गया। सड़क पर सिपाही खड़ा था, पूत का पाँव दिखाई दे रहा था......

गुप्ता भी मुस्कराया। कहा, "बस?"

लेकिन दर उस वक्त किसी अफसर की बड़ी मोटी रकम की गाड़ी देख रहा था' जो चमक रही थी।

"बेहतरीन!" दर ने कहा, "वाह, क्या चीज है!"

तभी अफसर की बजाय सिर पर भकाभक गांधी टोपी लगाये एक सेठ उतरे, अकड़ते हुए, गम्भीर। टोपी को देख कर सब चौंके और चुप हो गये, जैसे सिर पर मशीनगन रखी थी।

जब वे सामने के अंग्रेजी ढंग के रेस्ता में घुस गये, यहाँ अब फिर कांग्रेस का जिक्र होने लगा। शर्मा सुनाने लगा, "कचहरी में अब 'जय हिन्द' का इस्तेमाल होता है। पहले 'आदाब अर्ज' होती थी, अब 'जय हिन्द' कह कर रिश्वत ली जाती है। तुम्हारा भाई छूट गया। क्यों गुप्ता! आर० एस० एस० के बहुत से लोगों की कांग्रेसी सिफारिश कर रहे हैं, किसी से करवा लो। क्या मुश्किल है?"

फिर बहस छिड़ गई। अब आन्दोलन क्यों होते हैं? गरीब अब भी गरीब है।

"जनाब", शुक्ला ने काट कर कहा, "हाथी बहुत बड़ा जानवर होता है पर उसको चलाने के लिए छोटा-सा अंकुश काफी होता है। ऊँट उससे छोटा होता है, उसके लिए नकेल काफी होती है। घोड़ा और छोटा होता है, तो उसके मुंह में लोहा अड़ा देते हैं; पर कुत्ता सब

से छोटा होता है। उसके लोहे की जंजीर गले में बाँधी जाती है। क्यों? जितना छोटा हो, उसे उतना ही दबाओ। यही जमाने की रीत है। बड़ी दूकानों में कभी सौदा होता है? फल वाले से, तांगे वाले से हमेशा बहस होती है। ये लोग हमेशा मुह फाड़ते हैं। सफेद कपड़े देखे और चाहते हैं, बस, निगल जायें। मजदूर, मजदूर......"

"लेकिन अब कोई खतरा नहीं। अपना राज है," शर्मा ने कहा—"सालों को कुचल कर धर देंगे, चटनी करके धर देंगे...।"

पर यह कहते कहते वह हिचका, कुछ डरा, जैसे उसे स्वयं विश्वास नहीं हुआ।

सब लोग हँसने लगे। गुप्ता ने कहा, "देखा, इस पूँजी वाले को? और लोग कहते हैं कि जमीदार बुरे हैं। कभी गाँव गये हो? कोई सुनता है हमारी? सरकार लगान नहीं लेगी? अरे, हम वैसे ही पिसे जा रहे हैं। वह प्रेमचन्द की झूँठे पढ़ लीं और कहने लगे जमींदारी मिटा दो..."

"वह तो ठीक है", शर्मा ने कहा, "मगर देश को इस वक्त पैदावार की जरूरत है, ऐसे कि हिन्दुस्तान खुद सब माल बनाने लगे..."

"तो क्या जरूरी है कि", गुप्ता ने कहा, "आपका रोजा तोड़ने के लिये बकरी की मां कुर्बान की जाये?"

"यार हम तो दर से कह चुके हैं," शुक्ला ने कहा, "किसी सिंधी को दूकान बेच और ठाठ से कोई नया काम शुरू कर। वह देखो, एक एक कर सब मुँह माँगे मोल पा रहे हैं। इन शरणार्थी सिंधियों के पास, बाप रे, कितना रुपया है! पगड़ी दे देकर दूकान खरीदते हैं। अपनी तो यार किसी ऐसी से शादी हो जाती, जो मजे से खिलाती-पिलाती, पालती ...तब मजा आता..."

सब ठठाकर हँसे।

"एक बात है," शुक्ला ने फिर कहा, "ये शरणार्थी हैं अंग्रेज। वहाँ भी कुछ दिन में 'अनारकली' हो जायेगा।"

"छोड़ो भी शुक्ला," शर्मा ने कहा—"बेचारे मुसीबतज़दा हैं। कुछ दुनियाँ को आँख खोलकर देखो।"

इसके बाद हर तरह की बातें होने लगीं, जिनमें मनुष्य की अतृप्ति, वेदना और अपने भीतर हाहाकार का दाह, सब टुकड़े टुकड़े होकर बाहर बिखरने लगीं, जो दूसरों को जलाना चाहती थीं; किन्तु उनका कोई आधार न था। वे स्वार्थ की कठिन झाड़ियों में उलझे इंसान के वस्त्र थे, जो कदम-कदम पर फ़टते थे और हर जगह वही बे-हिसाब दिली गुरबत और बेहरमीनानी थी कि उनको लगा, वे सब व्यर्थ हैं।

और अन्त में पैसा बोलने लगा।

सब चले गये थे। दूकान में बस रेडियो बजने की आवाज आ रही थी। कोई विलायती आर्केस्ट्रा बज रहा था, जिसमें करुण-ध्वनि नहीं, जीवन की धड़कन थी, जो यौवन की शिराओं में वासना का उद्रेक करती है। दर सुनता रहा। उसने एक सिगरेट सुलगाई। दूकान के भीतर से मिस्त्री चले गये हैं। वह अकेला है। रात का पहला 'शो' खतम हो चुका है। अभी अभी भीड़ गुजर गई है। यह हिस्सा हिन्दुस्तान में घुसी विलायत की लाश है, जो अभी तक इस पुराने मकान में सड़ रही है, गल रही है······

दर चौंक उठा। उसने देखा, द्वार पर एक आकृति दिखाई दी। और एक ऐंग्लो-इण्डियन लड़की लड़खड़ाती-सी आकर कुर्सी पर बैठ गई। वह सुन्दर थी, युवती थी। वह शराब पिये हुई थी। उसकी आँखों में अब गुलाबी छा गई थी। कभी-कभी उसके होठों के कोने अपने आप मुड़ जाते थे।

लड़की बकने लगी। उसकी आवाज सुस्थिर नहीं थी। स्पष्ट ही वह नशे में थी। वह आज का किस्सा सुना रही थी। वह दफ्तर में कहीं

टाइपिस्ट है। और सिनेमा से आ रही है। वह शराब नहीं पिये है, ईमानदार लड़की है, शादी करना चाहती है, हर उससे विवाह क्यों नहीं कर लेता…?

हर देखता रहा, सुनता रहा। जिन्दगी में जब बहुत जोर लगाया, तब वह टाइपिस्ट बनी; किन्तु यों वह लाइसेंस रखने वाली तवायफ, जैसे कोई बन्दूक हो, या मोटर। इस समय उसकी झूठ सुनकर हर को नफरत हुई। वह तवायफ है। सामने बैठी है। और सड़क के उस पार कुछ बड़ी बड़ी मोटरें खड़ी हैं, चमकदार, रोबदार, जिनके मालिक 'बार' में बैठकर पी रहे होंगे…हर और कुछ नहीं सोच सका। साल भर पहले यह दोगली लड़की हिन्दुस्तानियों से नफरत करती थी…

गीत उमड़ रहा था। वही विदेशी स्फूर्ति वाला ऑर्केस्ट्रा, और लड़की अब उस पर झूम रही थी, जैसे उसके अन्दर के तार बज रहे थे, निरन्तर हाहाकार करता निर्धूम ज्वलन अब सिसक कर झुक गया था, कुत्ते की जीभ की तरह आग की लपट काँप रही थी…

हर स्वयं एक रेडियो हो चुका था। कितना विराट प्रसार है इस जीवन का, कितने विविध हैं इसके कार्य-व्यापार, कितना अद्भुत है इसका असामंजस्य! फिर भी अनवरत एक चक्र-सा घूम रहा है—और वह लड़की उसकी आँख में ऐसे अटक गई जैसे आटे की गोली के लिये लपकती मछली के गले में काँटा अटक गया हो……। हर सहम उठा।

उसने सहारा देकर लड़की को उठाया और उसको जीने की ओर ले चला। वह चुपचाप चलती रही। ऊपर उसकी साथिनें रहती हैं। हर उससे छूटना चाहता था।

किन्तु भीतर कोई था, क्योंकि भीतर से ही चिटखनी चढ़ी थी। द्वार बन्द था। लड़की ने प्यार से कहा—'चलो, गार्डेन चलें!"

हर विक्षुब्ध हो गया। यह लड़की क्या समझती है? क्या वह उसे मामूली आदमी समझती है……? तवायफ! और यह क्या समझ

सकती है ? जिन्दगी इसने अभी पाँच-दस रुपये की समझी है। लुत्फ...आग...जलन...मशाल की-सी कहर...और कुछ नहीं...।

फिर रेडियो पर खबरें आ रही थीं—फिलस्तीन...हैदराबाद...काश्मीर...मजदूर...किसान...रूस...अमरीका...गरीबी...अमीरी.....मौत...जिन्दगी......

दूकान खाली पड़ी थी। और अब खबरों के बीच में वही संगीत की द्रिम-द्रिम करती ध्वनि, जो घूंसा बनकर सीने पर बज उठी। दर काँप उठा। कोई कुछ उठाकर न ले जाये। उसने लड़की से कहा, "चलो, नीचे बैठेंगे। दरवाजा खुलने पर लौट आयेंगे।

लड़की हँस रही थी। दर ने देखा, वह होश में नहीं थी। उसको देखकर दर को एक भीषण साम्राज्य की समाप्ति का करुण दृश्य दिखा, जैसे एक अमानत थी। लेकिन शराब के नशे में झूमती लड़की ने उसे पकड़ रखा था।

# कार्तिकेय

धीरे-धीरे अंगिरा का प्रभाव बहुत बढ़ चला। देवों में उसकी प्रसिद्धि अंधकार-नाशक प्रथम अग्नि के रूप में हो गयी। उसके सात पुत्र और सात कन्या थीं। उनका सातवाँ पुत्र, बृहस्पति, और तीसरी कन्या, सिनीवाली अपने अपने क्रम से ज्ञान तथा कुशता के कारण अपनी माता शुभा के प्रति अत्यन्त अनुरक्त थे।

जब बृहस्पति के चान्द्रमसी के गर्भ से छः पुत्र और एक पुत्री ने जन्म लिया, तब तक वे काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। निरंतर अग्नि की पूजा और अग्नि में ही यज्ञ करते रहने के कारण, बृहस्पति का वंश 'अग्नि वंश' के नाम से प्रसिद्ध होने लगा।

उधर प्राचीन अग्नि के पुरोहित अपनी हीनता से काफी निष्प्रभ हो चले। उस समय अग्नि के प्रति देवों में दिन पर दिन श्रद्धा बढ़ती चली जा रही थी। दूसरी ओर असुरों का घोर उत्पात देवों को विचलित किए रखता था। उनके हृदय में नाना प्रकार का आतंक दिन-रात अपनी छाया डालकर, उन्हें डराया करता था। देवाधिदेव ब्रह्मा से सब प्रकार की प्रार्थनायें प्रायः निष्फल हो चली थीं। उन्हें अब विश्वास हो चला था कि यदि असुरों को स्वयं विधाता ने इतनी सहायता न दी होती, तो वे लोग कभी इतने सशक्त न होते। असुरों का प्राबल्य धीरे धीरे इतना अधिक होने लगा कि उनके मदोन्मत्त युवक देवों में श्रेष्ठ प्रजापति का अपमान करने से भी न चूकते। इद्र पद पर

एक महावीर के बैठे रहने पर भी, देवों में एक प्रकार का मन ही मन भस्म कर देने वाला दाह भरता जा रहा था। कहीं कोई राह दिखाई न देती थी। पर्वत प्रान्तों में देवता एक दूसरे से पूछते 'क्या सचमुच असुर, दैत्य और दानव घुलमिल कर एक हो गये हैं?' किंतु उत्तर देने वाला कोई न था। देवों का आनन्दवाद अब भी स्वाभाविक और प्राकृतिक ही था। किंतु यक्षों के विलास और गन्धर्वों के संगीत की धारा ने जैसे सब को डुबा दिया था। केवल अग्नि के नये उपासकों में धैर्य की असीम मात्रा निरंतर देदीप्यमान होती चली जा रही थी। बृहस्पति का ज्ञान देवों में उनकी अखंड श्रद्धा को प्रदीप्त करने में समर्थ होने लगा था। वे कहते, "देवों की पुरानी अग्नियाँ बुझ चली हैं। महाबली इंद्र के हाथ में आज भी महा मेधावी दधीचि के अस्थियों का वज्र है। देवो, एक दिन जब देव अपनी जाति के लिए अपनी बलि देने के लिए प्रस्तुत रहते थे, तब वृत्र जैसे महान असुर का भी इंद्र ने ध्वंस कर दिया था। हम देव असुरों की भाँति जीवन को दुःख नहीं समझते। हम जीवन को निरर्थक और दाह भरी तृष्णा नहीं मानते। मृत्यु हमारे गौरव और शक्ति के कारण हमारे पैरों को चूमती है। हम कभी नष्ट नहीं हो सकते।"

देवता सुनते। गन्धर्वों के संगीत की अजस्र धारा जैसे कुछ भी सुनने के लिये तैयार नहीं थी। कुबेर पद पर बैठा हुआ यक्षराज सब को भूलकर, केवल अपने विलास और वैभव में मस्त रहता। केवल यक्ष जाति सुनती, और समझती। यक्ष विलास और वैभव की पूजा करते, किन्तु रक्ष जीवन के प्रति अधिक से अधिक कटु होते चले जा रहे थे। वे कहते, "महादेव सब की रक्षा करने में समर्थ हैं।"

भिन्न जातियों में भिन्न प्रकार की कुछ यंत्रणायें होतीं। प्रजापति दक्ष के यज्ञ-विध्वंस के बाद उनके देवता महादेव, के उपासकों का सम्मान पहिले से कहीं अधिक बढ़ गया था। किन्तु फिर भी अभी तक देव तथा

अन्य जातियाँ उनसे कुछ अलग अलग सी रहतीं। पर्वत-मालाओं को किरात इत्यादि जातियाँ उन्हीं के साथ रहतीं, और जृम्भक, वसु, तथा रुद्र इत्यादि गण, अपने प्राचीन विश्वासों को लिए हुए, कट्टरता से उन्हीं के साथ रहते। उनकी प्रबल शक्ति को देखकर भी देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, दक्षिण पूर्व के नाग, सभी उनसे अलग रहते। उनके जीवन की नीरसता, उनकी अपनी प्राचीनता का अहं, अपने देवता को दुर्दमनीय समझने का दम्भ, भीतरी तौर से सब के स्वीकार करने पर भी, मन को शीघ्र ही रुचिकर नहीं होता था।

( १ )

साँझ हो चली थी। देवों की निरंतर व्याकुल अवस्था को देख कर महाबली इंद्र नित्य सोचते, कि किस प्रकार असुर, दानव और दैत्यों को पराजित किया जाय, और अपने विलास की बहती हुई धारा को अक्षुण्ण रखा जाय। मानस पर्वत पर उतरते हुए अंधकार की झीनी चादर धीरे-धीरे आकाश के रंगीन वर्णों को ढकने लगी। महाबली इंद्र ने व्याकुल होकर, अपने आप कहा' 'कहाँ है वह पराक्रम, कहाँ है वह स्फूर्ति शिराओं में ऊधम मचा देने वाला ऊर्ध्वासित वीर्य्य, जो इस शोकाकुल देव-जाति को फिर से उभार सकने में समर्थ हो सकेगा?' वे सिहर उठे। क्या उन्हें रुद्र गण से सहायता लेनी पड़ेगी! क्या उन्हें उन बर्बर विश्वासों में डूबी हुई जातियों के सामने हाथ फैलाना पड़ेगा! 'नहीं, नहीं!' उनकी आत्मा अब समस्त शक्ति के साथ पुकार उठी, 'देवों का गौरव अपनी भुजाओं के बल पर आज तक पला है। और आज यदि देव-जाति निर्वीय हो गई है, तो उसे जीवित रहने का भी अधिकार नहीं है। इसी इन्द्र पद पर बैठे हुये वीरों ने अनेक बार अतुल पराक्रमी असुरों की असीम वाहिनी को खंड-खंड कर के विध्वंस किया है। फिर मैं ही इस पद का गौरव इस प्रकार नष्ट कर दूँ!'

देर तक वे सोचते रहे। पार्वत्य प्रदेश पर समीरण अब गुफाओं में

भर कर, उन्हें झंकृत करने लगा था। हठात् उस नीरवता में किसी स्त्री का कोमल, करुण कण्ठ चीत्कार कर उठा।

इंद्र चौंक उठे। "बचाओ बचाओ" की प्रतिध्वनित पुकार उनके कानों में गूंजने लगी। और विषैले काँटों की भाँति वह स्वर इन शब्दों में बिखर गया—"या तो कोई मुझे पति दे, या स्वयं मेरे पति हो जाओ! किसी प्रकार मुझे इस असुर से बचाओ! किसी प्रकार इस असुर से मेरी रक्षा करो!"

इंद्र का पौरुष इस चुनौती से चुटीले साँप की तरह फुंकार उठा। वे बड़ी-बड़ी चट्टानों को लाँघ कर, उस ध्वनि की ओर भागने लगे। ध्वनि पास आने लगी थी। इंद्र ने देखा, एक भीमकाय असुर एक देव-कन्या को बलात् अपनी ओर खींच रहा था, जिसके आर्त्तनाद से गिरि-कन्दरायें गूँज रही थीं। इंद्र ने कड़क कर कहा—"सावधान मूर्ख! इस देव-कन्या को छोड़ दे! मैं स्वयं वज्रधारी इंद्र हूँ!"

किन्तु असुर ठठाकर हँसा। जिस समय उसकी अट्टहास की प्रबल ध्वनि पर्वतों से टकरा कर, निनादित हो उठी, इंद्र ने देखा, कि उसने गर्व से अपना सिर उठाया, और उसका स्वर्ण किरीट पीछे की ओर उठ गया। उसने अपने बलिष्ठ हाथ में गदा को उठाते हुये, उपहास के स्वर में कहा—"इंद्र!" उसके स्वर में तीखा व्यंग था। "केशी की पराक्रम आज तुम्हें यह गदा दिखाएगी, यह कन्या मेरी है। यदि तुम्हें अपने कन्धों पर अपना सिर प्रिय है, तो जाओ मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ!"

क्रोध से इंद्र के नथुने फूल गये।

हठात् केशी की गदा आकाश में घूम गई, और उसने विस्मय से देखा, कि महाबली इंद्र के वज्र से टकरा कर, टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर गई। क्रोध से केशी काँप उठा। कन्या उसके हाथ से निकल कर दूर जा गिरी। उसने अपने दोनों हाथों से उठा कर, एक बड़े

शिलाखंड को इंद्र के ऊपर फेंकने का प्रयत्न किया। किन्तु तब तक इंद्र ने वेग से झपट कर, उसे धक्का दिया, और शिलाखंड की चपेट में पड़ कर कुछ दूर लुढ़क चला, और इसके बाद भय से भाग चला। उसकी पग-ध्वनि से कुछ देर तक नीरव पार्वत्य प्रदेश गूँजता रहा।

इंद्र ने देखा, देव-कन्या के नयनों में विश्वास लौट आया था। किन्तु वह अभी भूमि पर अस्त-व्यस्त और कातर-सी पड़ी हुई थी। इंद्र के उस भयानक रूप को देख कर, तरुणी के नयनों में धीरे-धीरे जीवन-शक्ति लौटने लगी। उसने झपट कर इंद्र के पैरों को पकड़ लिया, और करुण स्वर में कहा—"महाबली, महापराक्रमी, हे महावीर इंद्र! युगों तक तुम्हारी कीर्ति के गीत गाये जायेंगे। युगों तक तुम्हारी शक्ति......"

"ठहरो सुन्दरी!" इंद्र ने बात काट कर कहा—"तुम कौन हो?"

तरुणी के नयन झुक गये। उसने काँपते हुये स्वर में कहा—"हे देवराज, मैं प्रजापति की कन्या देवसेना हूँ। मेरे देखते ही देखते मेरी बहिन दैत्यसेना को यही बर्बर केशी उठा ले गया।"

"फिर, सुन्दरी?" इंद्र ने अचानक चौंक कर पूछा।

देवसेना ने तीखे स्वर से कहा—"प्रजापति की आज्ञा लेकर हम दोनों, सखियों के साथ, इसी मानस पर्वत पर क्रीड़ा करने के लिए आया करती थीं। महाअसुर केशी हमें नित्य ही हरने की घात में लगा रहता था। दैत्यसेना अन्त में उसके बहकाने में आ गई। इंद्र, तुम मेरी मौसी के पुत्र हो। आज तुम्हारे कारण मेरी रक्षा हो गई। मैं नहीं जानती, कि मैं क्या करूँ। आज देव-जाति में पौरुष नहीं रहा। आज उसकी कन्यायें असुरों पर मोहित हो-होकर भाग रही हैं।"

इन्द्र ने देखा, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बोले—"जानता हूँ, बहिन, जानता हूँ! किन्तु देव-ललनायें भी तो आज श्री हीन हो चली हैं।"

"मैं प्रतिज्ञा करती हूँ," देवसेना ने तुरन्त फुत्कार किया—"कि चाहे

वह कोई भी हो, देवसेना उसी की पत्नी होगी, जो इन्द्र के साथ देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस, दैत्य, असुर और अन्य प्राणियों को जीतेगा !" उसका स्वर उठता गया, और आकाश तक गूँजने लगा। उस समय इन्द्र को आकाश मेघ, पर्वत, वसुन्धरा और जल की लहरों पर लाल-ही-लाल रक्त दिखाई दिया। जैसे रक्त की भीषण प्रतिच्छाया दशों दिशाओं में काँप उठी। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ इन्द्र को लगा, कि सूर्य्य उदयाचल पर चढ़ रहे हैं, और चन्द्र उनके शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। तब उस रौद्र मुहूर्त्त में अमावस्या छाने लगी। उन्हें याद आया, कि देव विभाजित पड़े हुए थे। इस समय भृगु और अंगिरा की सन्तान अलग-अलग मंत्रों से अग्नि का आह्वान कर रही होगी। उनको लगा, मानो अग्नि आहुति और हव्य लेकर सूर्य में प्रवेश करने लगी। उन्हें लगा, जैसे महायुद्ध समीप था। नदियाँ उलटी बहने लगी थीं। उनमें जल की जगह रक्त बहने लगा था। सियारी सूर्य्य की ओर मुँह करके बोलने लगी थी, 'अग्नि ! चन्द्रमा ! सूर्य ! देवाधिदेव ब्रह्मा ! कहाँ हो तुम ! बोलते क्यों नहीं ! कहाँ है इसके लिये ऐसा पति !' उनका सिर झुक गया। Love Bimla

जिस समय वे ब्रह्मर्षियों की यज्ञशाला में उस कन्या को लिये हुए आये, उन्होंने देखा, कि अनेक देवता वहाँ सोमरस पीने के लोभ से इकट्ठे हो गये थे। ब्रह्मर्षियों ने यथा-विधि इष्टि करके, प्रज्ज्वलित अग्नि में आहुति देना प्रारम्भ किया। इन्द्र ने देखा, कि समस्त त्रिभुवन का दाह उस अद्भुत अग्नि में केन्द्रित हो उठा। जैसे स्वयं सूर्य में से प्रभूत तेज-पुंज आकर जल उठा। अग्नि की उस शिखा देख कर, बृहस्पति की भीम मेधा, गम्भीर निर्घोष कर उठी, "जीवन, जीवन की दाह ! देवो, जीवन की गरिमा वर्षों तक इसी प्रकार शाश्वत होकर जला करेगी।"

इन्द्र को लगा, जैसे महाप्राण अग्नि की शिखायें हिल नहीं रही थीं, वरन् वे अपनी-अपनी पलकें खोल कर उस हतोत्साह देव-जाति में

अपनी शक्ति भरने की चेष्टा कर रहीं थी। एक दिन पूर्वजों ने इसी अग्नि को लेकर असुरों के घरों को भस्मसात् कर दिया था। उस दिन यही अग्नि इन्द्र के साथ अपनी भीम-विकराल जिह्वा से नगर-ग्रामों को चाटता हुआ, देवों की अपार शक्ति की विजय-पताका बन कर, आगे-आगे फहर उठा था। आज उसी अग्नि को प्यास लग उठी है। आज वही अग्नि भूखा है। ब्रह्मर्षियों की मंत्र-ध्वनि गूँजती रही।

देवसेना ने काँपती हुई आवाज में इन्द्र से कहा—"महाबली इंद्र, इसी...इसी अग्नि का पुत्र...ऐसा देदीप्यमान...मेरा पति..."

इंद्र उस फूत्कार को सुन कर काँप उठे। उन्होंने अविश्वास से उसकी ओर देखा। उस समय देवता सोम पी-पी कर, अपने आप को भूल चले थे। अंगिरा के वंश का मन्त्रोच्चार गूँज रहा था। देव-ललना स्वाहा सतृष्ण आँखो से उस अद्भुत अग्नि को देख रही थी। इन्द्र सिर नीचा करके, लौट चले।

( २ )

इन्हीं दिनों अनेक प्रकार के अपवाद यज्ञशालाओं में फैल गये। प्रजापति दक्ष की पुत्री स्वाहा सुनती, और हँसती। सप्त-ऋषियों में से छः ने अपनी पत्नियों को लोकापवाद के भय से छोड़ दिया। केवल अरुन्धती के ऊपर किसी ने व्यंग्य नहीं किया। कोई कहता, "स्वयं अंगिरा की पत्नी शिवा भी इस व्यभिचार में सम्मिलित थी।" कार्तिकेय का नाम चारों ओर अपूर्व विस्मय का कारण बन गया था। लोग कहते थे, कि "उस तेजस्वी कुमार से हाथ में स्वयं त्रिपुरदहन महादेव का दानव-दलन, विशाल, भयानक धनुष रह-रह कर टंकार उठता है।" सबसे बड़ी बात यह थी, अंगिरा और भृगु के वंश में आजकल अखंड मित्रता हो गई थी। अग्नि-सम्प्रदाय वालों का प्राबल्य दिन-दूना, रात चौगुना बढ़ता जा रहा था। अग्नि के प्रति नित्य नये मंत्र बनते, और सब तरफ अग्नि ही अग्नि का जय-घोष सुनाई देता। कुछ देव कहते,

कि "अग्नि का यह पुत्र कार्त्तिकेय उस भयानक वन में पाला गया है, जिसकी रक्षा नाग, राक्षस, पिशाच, भूत रात-रात भर जाग कर किया करते हैं।" कोई कहता, "नहीं, यह महादेव का पुत्र है। यह किसी किरात का पुत्र है।" किन्तु सत्य किसी को भी नहीं मालुम था। स्वाहा चुपचाप सुनती। उधर क्रौन्च पर्वत पर कार्त्तिकेय अगाध-वाहिनी बना रहा था। इन लोकापवादों में सुपर्णों का नाम भी जुड़ा हुआ था। अंत में इन्हीं से बात फैलनी आरम्भ हुई। जब देवशक्ति निर्बल होने लगी थी, तब भृगु और अंगिरा के वंश अंगिरा के सम्प्रदाय में मिल गये। उधर स्वाहा ने अपने जिस गर्भ के बालक को लोक-लाज के कारण सुपर्णों को दे दिया था, वह पिशाच और राक्षस आदि जातियों में जाकर पलने लगा।

जिस समय इन्द्र द्वारा भेजी हुई मातृकायें कार्त्तिकेय के सम्मुख पहुँची, और उन्होंने कहा, "देवजाति के कलंक, हम तुझे सदा के लिए समाप्त कर देना चाहती हैं," तो कार्त्तिकेय ने हँस कर कहा, "मैं यक्षों में रहा हूँ। मैंने उनका कुक्कुट-साधन सीखा है! मैंने सिद्धों से शक्ति साधन सीखा है। मैं राक्षसों, पिशाचों और किरातों में घूमा हूँ। स्वयं भगवान महादेव को ही मै आज तक अपना पिता समझता रहा हूँ। मैं नहीं जानता, कि मै किसका कलंक हूँ।"

उस समय कानन में प्रतिध्वनित हो उठा—"पुत्र! पुत्र!"

सबने चौंक कर देखा, स्वाहा बढ़ी चली आ रही थी। उसने वेग से कार्त्तिकेय के गले में हाथ डाल कर, कहा—"तू मेरा पुत्र है, बालक! तू मेरा पुत्र है!"

चौंक कर युवक पीछे हट गया। उसने कहा—"तुम?"

"हाँ, स्कन्द!" हाँफते हुए स्वाहा ने कहा—"तेरी धमनियों में देव-जाति का पवित्र रक्त है!" और फिर उसने मातृकाओं की ओर हाथ उठाकर कहा—"निर्वीर्य देवों से जाकर कह दो, स्कन्द कार्त्तिकेय स्वाहा

का पुत्र है। यह अग्नि-वंश संभूत ऐसा भीषण तेज है, जिसे संसार का समस्त जल भी नहीं बुझा सकता। गहन कानन उस ज्वाला को नहीं छिपा पाये। जिन जातियों से आज तक देव घृणा करते रहे, उन्हीं में पल कर आज मेरा पुत्र इतना बड़ा हुआ है। तुम्हारा इन्द्र असुरों, दैत्यों और दानवों के अपार बल को देख कर निःशक्त-सा काँप रहा है किस बात का अभिमान है तुमको! क्यों नहीं इन्द्र स्वयं युद्ध करने आता!"

युद्ध का नाम सुनते ही तेजस्वी कार्तिकेय को चारों ओर से सुपर्णों, नागों, पिशाचों और राक्षसों ने घेर लिया। स्वाहा ने हँस कर कहा—"स्कन्द अपराजित है! मातृकाओ, लौट जाओ! स्कन्द अकेला नहीं। इसके साथ छः जातियाँ खड़ी हैं। वह छहों अपने मुख से अग्नि उगलने के लिये तत्पर हैं। जाति-दम्भ की दुहाई देने वाली स्त्रियों, इन्द्र से जाकर कहो, कि मातृत्व की ममता दिखा कर, स्कन्द की बलि नहीं ली जा सकती। अग्नि-वंश देवों की निर्वीयता और लोलुप, विलासी यक्षों की कायरता से ऊब चुका है। यदि आज इंद्र को अपने ऊपर अभिमान हो, तो वह भी युद्ध भूमि में आकर..."

स्कन्द ने हठात् चिल्ला कर कहा—"ठहरो, माँ! तुम गृहदाह का बीज बो रही हो। अंगिरा का वंश एक ओर जीवन का वस्तुवाद प्रचारित कर रहा है, और दूसरी ओर भृगु का वंश जीवन को शाश्वत् कल्याण कामना में निरत है। उधर इन्द्र और महर्षि यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों और सिद्धों के साथ मिलकर, अपने उसी प्राचीन दम्भ में रत हैं। वे नहीं जानते, कि असुरों का पराक्रम आज कितना भीषण हो चला है। किंतु वे आज भी पिशाच, नाग, राक्षस, सुपर्ण, और किरात जातियों की कोई सहायता नहीं चाहते। मैं नहीं समझता, कि वे लोग अपनी प्राचीन रूढ़ियों में कब तक बद्ध रहेंगे। दक्ष-यज्ञ में जिनके सामने स्वयं प्रजापति बकरे से रूप में जीवन दान के लिए प्रार्थना कर चुके हैं, उन्हीं से आज

भी इतना द्वेष ! मातृकाओ, स्कन्द इन्द्र पद नहीं चाहता। वह केवल असुरों का नाश चाहता है। इसलिये उसे किसी से भी सन्धि करने में कोई लज्जा नहीं है। मैं दक्ष की पुत्री का पुत्र हूँ। मेरी मौसी सती इसी जाति-विद्वेष को मिटाने के लिए अपनी बलि दे चुकी है। जिस समय मुझे बाल्यावस्था में वंशगत लड़ाइयों के कारण, स्वयं मेरी माता भी मेरी रक्षा करने के लिये तत्पर नहीं थीं उस समय इन्हीं बलिष्ठ हाथों की छाया में मैं इतना बड़ा हुआ। इन्द्र और देव-जाति से जाकर कह दो, स्कन्द का उससे कोई विद्वेष नहीं है। किन्तु यदि इन्द्र को दम्भ हो, अभिमान हो, तो वह आकर शस्त्र परीक्षा कर लें। समस्त देव-जाति में घोषित कर दो, कि जिस समय स्कन्द अपनी प्रबल वाहिनी के साथ बढ़ता है, तो पर्वत तिनकों की भाँति उड़ने लगते हैं।"

इन शब्दों को सुन कर, आकाश स्थिर हो गया-सा लगा।

मातृकाओं ने स्नेह से अपने हाथ फैला कर कहा—"स्कन्द, तू हमारा पुत्र है।"

आनन्द से सदाशिव के गण उस समय विभोर होकर नृत्य करने लगे, जिनकी गुंजार मानसरोवर की ओर उड़ते हुए पक्षियों के कलरव में मिल कर, आकाश में व्याप्त हो गई।

मातृकायें लौट चलीं।

जब देव सेना ने सुना, तो उसने अस्फुट शब्दों में धीरे से कहा—"वही !...वही !" और वह इन्द्र के भवन की ओर चल पड़ी।

( २ )

देवदारु की झूमती हुई लम्बी-लम्बी शाखाओं से समीरण अठखेलियाँ कर रहा था। आकाश में सूर्य डूबने लगा था। मानों इन पर्वत-मालाओं के पीछे कहीं वह देवरमणी का रत्न अब जाकर अंधकार के पिटक में बंद हो जायगा। पार्वत्य प्रदेश की उस शीतल नीरवता में में देव सेना ने अपने कन्धों पर मेष चर्म को कस लिया। उसने झुक

कर, देखा, दर्पण-से स्वच्छ जल में असंख्य नीले और पीले कमल मोहान्ध से छोने के लिये झुक पड़े थे। रंगीन आकाश की छाया में उड़ते हुए वे पक्षी धीरे-धीरे अपने नीड़ों की ओर लौट चले। शिला खंडों पर अपने पाँव जमाती हुई, देवसेना चली जा रही थी। मानों कठोर पत्थरों से नपुर-ध्वनि सुन कर रूप और यौवन की अग्नि-शिखा फूट रही हो।

धीरे-धीरे मकरंद खा-खा कर तृप्त हुए हँसों का कलनिनाद पीछे छूट गया, और सन्ध्या के झिलमिल अंधकार कर सुवासित धूमं पर हुई संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी। देवसेना ने सोचा, 'इन्द्र सुनकर प्रसन्न होंगे।'

इन्द्र के विशाल प्रासाद में सान्ध्य दीप-मालिकायें जलने लगी थीं। जैसे अन्धकार की अधोवस्त्र ओढ़े हुई धरित्री की कवट पर रत्न-मेखला जगमगा उठी हो, वही जैसा कि यक्ष-स्त्रियाँ तथा अप्सरायें पहिना करती थीं।

उसने द्वार-रक्षक से कहा—"मैं प्रजापति दक्ष की कन्या देवसेना हूँ। इन्द्र मेरी मौसी के पुत्र हैं। मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।"

द्वार-रक्षक ने सिर झुका कर अभिवादन किया।

देवसेना ने भीतर पहुँच कर देखा, गन्धर्वों का स्वामी चित्रसेन मत्त होकर सोम-पान कर रहा था। विघूर्णितलोचन इन्द्र स्वर्ण चशक हाथ में लिये अनावृत अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे। हठात् द्वार पर कोलाहल सुनाई दिया। देवसेना एक स्तम्भ के पीछे छिप रही। उसने देखा, मातृकाओं को आगे किये, महर्षि क्रोध से काँपते आगे चले आ रहे थे।

अप्सराओं का नृत्य बंद हो गया। चित्रसेन ने भौंहें सिकोड़ कर, कहा—"देवराज, कैसा असमय का कोलाहल है?"

इन्द्र उठकर बाहर आये। महर्षि उनको देखते ही, चिल्ला उठे—

"मातृकाओं ने धोखा दिया है, इन्द्र। वे स्कन्द को अपना पुत्र स्वीकार करके लौटी है।"

इन्द्र ने चकित होकर कहा—"यह मैं क्या सुन रहा हूँ, मातृकाओं?"

मातृकायें मुस्कराईं, एक ने धीरे से कहा—"स्कन्द देवों का शत्रु नहीं, असुरों का शत्रु है।"

"असम्भव!" महर्षि चिल्ला उठे। फिर उन्होंने इन्द्र की ओर देखकर कहा—"वज्रधर इसका बदला लेना होगा! असुरों से पहिले स्कन्द का ध्वंस करना होगा!"

और देवों ने हुँकार कर उसी स्वर में अनुमोदन किया।

देवराज इन्द्र क्षण भर चुपचाप खड़े रहे। फिर उन्होंने धीरे से कहा—"देवगण, आप उत्तेजित न हों। अपमान का उत्तर शत्रु का रक्त है।"

देवगण ने इन्द्र की जयध्वनि की, और तिलोत्तमा का फूँका हुआ श्वास तुरही में भर कर देव सौधों में गूँजने लगा। युद्ध के आवेश से देवों की भुजायें फड़कने लगी। जब वे सब लोग चले गये, तो देवसेना करुण रागिनी के समान पाषाण स्तम्भों के पीछे से निकल कर महा पराक्रमी इन्द्र के चरणों में बैठ गई। उसने व्यथित स्वर से कहा—देव-राज, आप भी?"

इन्द्र का सिर झुक गया।

दोनों देर तक निस्तब्ध रहे। चित्रसेन का अट्टहास अप्सराओं की नूपुर ध्वनि को मचलते हुए पकड़ने का प्रयत्न कर रहा था।

देवसेना लौट चली। उसका हृदय भारी हो रहा था। क्या-क्या नहीं कहना चाहती थी वह, किन्तु क्या एक भी शब्द उसके होठों से बाहर फूट सका?

देव युद्ध के लिये पागल हो रहे थे:

केवल अग्नि-वंश गम्भीर और सतर्क था।

देवसेना ने स्वाहा के हाथ पकड़ कर कहा—"भगिनी, क्या युद्ध अनिवार्य है?" उसका गला रुंध गया।

स्वाहा ने जलती हुई आँखों से देखकर, कहा—"इसके सिर पर मृत्यु नाच रही है!"

देवसेना सिसकते हुये पुकार उठी—"माँ!"

स्वाहा चौंक उठी। उसने धीरे से कहा—"क्या तू कुमार कार्तिकेय···"

देवसेना ने सिर झुका लिया।

स्वाहा विस्मय से देखती रही। दक्ष की सब कन्यायें देव-जाति में इतनी अद्भुत क्यों है? उसने दृढ़ स्वर में कहा—"भय न कर, देवसेना मेरा पुत्र अजेय है!" और प्रौढ़ा स्वाहा ने अपनी बहिन उस तरुणी बहिन को अपने अंक में खींच कर उसके मस्तक को ऐसे वात्सल्य से सूँघा जैसे वह स्वयं उसकी माँ हो।

( ४ )

सब-कुछ था, किन्तु स्वाहा का मान नहीं बढ़ा। युवक अग्नि भृगु के वंश में इतने निकट आकर भी उससे खिचा-खिचा रहता। अंगिरा के वंश में यद्यपि बाकी छः महर्षियों ने अपनी पत्नियों को सुवर्णा के कहने से पुनः स्वीकार कर लिया था, फिर भी थोड़ा-सा मनमुटाव बाकी रह ही गया था। देवसेना की विचित्र दशा थी। वह इन्द्र के घर गई थी, कि आज अचानक ऐसा सुयोग उपस्थित हुआ है, और तभी उसने देखा कि इन्द्र स्वयं महर्षियों और देवों के विक्षोभ में बह गये। वह सोचती, 'दक्ष के समय में देवों में महादेव के इन उपासकों से इतनी भयानक घृणा क्या हो गई? इसलिए कि वे ब्राह्मणों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते? इसलिये कि वे महर्षियों के ज्ञान को कुछ भी नहीं समझते? गन्धर्वों और यक्षों के देवता विलास-प्रिय हैं। देव अपने

सामने किसी को कुछ नहीं समझते। वे स्वयं अपने-आपको सबका नियन्ता मानते हैं। असुर भयानक दुखवाद में डूबे हुए हैं। दक्ष यद्यपि यक्षों के इतने निकट हैं, फिर भी वे जीवन की एक रहस्यमयी नीरवता के प्रति इतने अनुरक्त क्यों हैं? सभी के तो देवता अलग-अलग हैं। कुछ भी परिणाम नहीं निकलता।' फिर वह सोचने लगती, 'दक्ष की कन्या क्यों उसी महादेव के उपासक किरात की ओर आकर्षित हुई? इसलिये कि उसमें जीवन की गरिमा थी। बृहस्पति भी तो कहते हैं, कि 'देवो, परलोक कुछ नहीं है। तुम स्वयं देवता हो। मस्त रहो। आसव पियो। विलास करो, किन्तु उसके दास न बन जाओ।' देवताओं में से अनेक उन्हें अपना गुरु मानते हैं। फिर भी सब तो उनके बताये पथ पर चलने को उद्यत नहीं हैं। बृहस्पति कहते हैं, कि 'देवों को इ गे अग्नि की उपासना करनी चाहिये, इसी के समान बनना चाहिये।" और अंगिरा-वंश के अग्नि-संप्रदाय के नये केन्द्र में दक्ष-सुता स्वाहा ही ऐसी निकली; जिसने भृगु-वंश में जाकर गर्भ धारण किया, और वह भी ऐसे पुरुष से, जो स्वयं उसकी ओर आकर्षित न था। स्वाहा ने स्त्री-रूप में काम-पीड़ित होकर उससे गर्भ-याचना की। पुरुष ने पौरुष की रक्षा की। और उसका पुत्र ऐसे अद्भुत रूप से जब पल कर बड़ा हुआ, तो वह इतना पराक्रमी हुआ। 'क्या मैं उसको वरण कर सकूंगी? महादेव के के उपासक भी अपनी पहली भयानक नीरसता छोड़ते जा रहे हैं। सती के मरने पर जब महादेव समाधि में बैठ गया, तब हिमवान और मेना की पुत्री उमा ने उसकी समाधि तुड़वा दी, और उसने उससे विवाह कर लिया। कैसा भव्य है वह! भस्म रमाता है, भोग में मस्त रहता है। वह किसी जाति से घृणा नहीं करता, किन्तु किसी को अपने से ऊँचा भी नहीं समझता।' देवसेना सिहर उठी। क्या वह इस सबको सरलता से समझ पायेगी?

जब से इन्द्र आदि ने कार्त्तिकेय के विरुद्ध युद्ध करने का विचार

किया है; घर-घर में एक नई हलचल व्याप्त हो गई है। कौन जाने इस गृह-युद्ध का परिणाम क्या होगा? तरुण कार्तिकेय महापराक्रमी इन्द्र से जीत सकेगा? पर लोग कहते हैं कि उसकी भी अपार वाहिनी है। वह स्वयं अत्यंत पराक्रमी और वीर है। और सबसे बड़ी बात यह है, कि अब भी वह देवों का शत्रु नहीं है। कहता, "महर्षि और इन्द्र भूलकर रहे हैं। शीघ्र ही सत्य उनकी समझ में आ जायगा।"

देवसेना फिर उसके सुदृढ़ और फैले हुए वक्ष पर कल्पना में अपना शीश रखकर, मन-ही-मन सुख अनुभव करती। उसे क्या कमी थी? देवों के विलासी युवकों के साथ वह सोम पीकर, अप्सराओं की भांति अनेक तारों-भरी रातें कुंजों में बिता सकती थी। अन्यथा किसी से भी विवाह कर सकती थी। देव विवाह न करती, गंधर्व विवाह कर लेती। पर साधरण पुरुष के चरणों में अपने आपको नहीं समर्पित कर सकती। स्वयं इन्द्र भी उसके योग्य नहीं है। 'वे पिशाच अच्छे हैं,' वह मन-ही मन कहती, 'जिनको स्त्री के प्रति इतनी दुर्दम्य वासना है।' वह पैशाचिक विवाह की कल्पना करती, जिसमें स्त्री उसी पुरुष की हो जाती थी, जो उससे बलात्कार कर लिया करता था, और उसे कच्चा मांस खिलाता था।

देव अखंड विलास करते। देव-स्त्रियाँ भी उन्हीं के पीछे चलती। किन्तु उन्हें यक्षों और अप्सराओं का-सा स्वातंत्र्य क्यों नहीं? देव शासन करना जानते हैं। वे कुछ और नहीं कर सकते। यक्ष धन एकत्र करना जानते हैं। चाहे मैदानों में पड़े लोग उनके लिये श्रम करते-करते मर जायें, पर वे परवाह नहीं करते। महादेव के उपासक उन्हें नहीं मानते। वे शिकार करते हैं, कि दक्षिण-पूर्व की ओर नागों की अनेक बस्तियाँ हैं।

किन्तु परिणाम क्या निकला? कुछ नहीं।

देवसेना उठी। उसने सुना, कि बृहस्पति का वंश स्वाहा के प्रति उपेक्षा छोड़ रहा था। उनका कहना था कि कार्तिकेय ने कोई अपराध

नहीं किया। मातृकरण और अन्य जातियों के अतिरिक्त, अग्नि के उपासक भी कार्त्तिकेय की ओर हो गये थे। युद्ध की विभीषिका समीप थी। उधर इन्द्र तथा उनके अनुयायी भी तत्पर हो रहे थे। कहा जाता था कि असुर इस गृह-युद्ध से अत्यंत प्रसन्न थे। उनका विचार था कि जब सब लोग लड़ कर श्रीहीन हो जायेंगे, तब वे सबको दबा लेंगे, और फिर अखंड शासन करेंगे।

देवसेना सिर हिलाती। ऐसा कभी नहीं हो सकता। रात का संवाद था, कि कुछ अग्निवंशीय युवकों का कुछ देवों से युद्ध हो गया था, जिससे बहुत सनसनी फैल गई थी। युद्ध के संवाद से अप्सरायें और यक्ष सब क्षुब्ध हो गये थे। वे इस सबको पसंद नहीं करते थे।

"लोलुप!" देवसेना ने तिक्त स्वर में कहा। और फिर उसकी आँखों के आगे कार्तिकेय कुमार स्कन्द का भव्य स्वरूप नाचने लगा। उसने दोनों हाथों को अपने हृदय भींच लिया, और व्याकुल हो, दीर्घ श्वास छोड़ने लगी।

देव अपने को ब्रह्मा का प्रिय मानते हैं। वे समझते हैं।

जो कुछ हैं, वे स्वयं हैं। कार्तिकेय अग्नि-वंश-परंपरा तोड़ रहा है। पर कहाँ जा रहे हैं ये लोग? क्या देव अब दूसरों की उपासना किया करेंगे? इसे देवसेना के मन ने स्वीकार नहीं किया।

फिर चक्र चलने लगा। सब का नेतृत्व फिर भी देवगण के ही हाथ में है। कार्त्तिकेय? वह यक्षों की जर्जर विलासिता के विरुद्ध है। वह अपार पौरुष!

देवसेना सोचने लगी, 'देव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, नाग, राक्षस, पिशाच, किरात, जृम्भक, वसु, गरुड़, सभी उनके चरणों में बैठे होंगे। वह सबके ऊपर होगा। फिर सब मिल कर असुरों, दैत्यों और दानवों के दंभ को चूर-चूर कर देंगे।'

किन्तु स्वप्न-स्वप्न ही था। जीवन की कठोर वास्तविकता यह थी, कि देवों के घर में भीतर-ही-भीतर आग लग रही थी।

देवसेना सोचती रही। रात उतरती आ रही थी। उसने देखा दूर से, यज्ञशाला की अग्नि धधक रही थी। स्वाहा सामने खड़ी उस अग्नि को घूर कर देख रही थी। मानो आँखों से वह उसका समस्त तेज पी जाना चाहती थी।

देवसेना सिहर उठी। कैसी है यह स्त्री। कैसा कठोर है इसका हृदय। वह रात कैसी रही होगी, जब वन में इसने भृगु-वंश के उस युवक से याचना की होगी! और लोग कहते हैं, कि एक नहीं छः रातें उसने उसके हाथ यहीं बिताईं। फिर सुपर्णी की सहायता, और फिर उन जातियों में जाकर स्कन्द का पलना, और इतने दिन तक स्वाहा का चुपचाप पुरुष की उपेक्षा और पुत्र का दुःख स्वीकार करना! बर्षों चुपचाप सब-कुछ सहते रहना! और अंत में एक दिन उस पुराने ज्वालामुखी का फूट निकलना!

लोग कहते हैं, कि 'स्वाहा ने अपने सिर पर व्यर्थ सब ले लिया है। वास्तव में कार्त्तिकेय महादेव और उमा का पुत्र है।' देवसेना हँसी। उसे स्वाहा का कथन याद आया। उसने कहा था, "देवसेना, दक्षसुता होकर यह क्या कहती है! मैं भी तो दक्षसुता हूँ। तू नहीं जानती? तब शायद तेरा जन्म भी नहीं हुआ। बहिन सती इन्हीं रूढ़िवादियों के कारण बलि दे दी गई। हिमवान की कन्या उमा को मैं जानती हूँ। जब उनके पास संवाद पहुँचा कि कुमार मेरा और अग्नि का पुत्र है, तभी से उन्होंने उसे पुत्रवत् स्नेह से पाला। यदि उसे महादेव-जैसा श्रेष्ठ पिता न मिलता, तो क्या वह इतना पराक्रमी होता? सुनती है? वीरभद्र ने उसे मल्लयुद्ध सिखाया है।"

देवसेना की इच्छा हुई कि कह दे कि वह कुमार पर अनुरक्त है, पर लाज ने रोक लिया। किन्तु स्वाहा ने हँस कर कहा था—"मैं सम-

भरती हूँ, देवसेना। वह तुझे देख भर ले एक बार। आज-तुझ जैसी सुन्दरी समस्त देवों में क्या, यक्षों गन्धर्वों और अप्सराओं में भी नहीं मिलेगी।"

देवसेना ने उसके वक्ष पर हाँफते हुए सिर टेक दिया था, और कहा था—"मेरा ऐसा भाग्य कहाँ, भगिनी!"

तब स्वाहा ने उसके बालों पर हाथ फेरते हुए, तीव्र स्वर में कहा था—"लोग स्वाहा को कुलटा कहते हैं, देवसेना। वे समझते हैं कि मैंने सती के पति का गर्भ धारण किया था। किन्तु वे उसकी महानता को नहीं जानते। वे कहते हैं, कि मैंने अपवाद को छिपाने के लिये अग्नि का नाम ले दिया। कहने दो। जिसके जो जी में आये कहे। जब तक कुमार देव-जाति के उद्धार में लगा है, तब तक उन्हें कुछ भी कहने दो। पूछो इन मूर्खों से, 'तुम्हारे-देखते दैत्यसेना को केशी उठा ले गया। तुमने क्या किया! यही है तुम्हारे यहाँ स्त्री की मर्यादा! जो तुम्हारी चिन्ता नहीं करता, उससे तुम डरते हो। जो तुम से मिल कर रहना चाहता है, उससे तुम घृणा करते हो!"

स्वाहा हाँफ रही थी। क्षण भर रुक कर, उसने फिर कहा—"इन्द्र का पौरुष कहाँ है? अप्सराओं का भोग करने में? पहले के पराक्रमी इन्द्र! वे दिन ही और थे। किन्तु..." फिर उसने दृढ़ स्वर में कहा—"मेरा वे कितना ही अपमान क्यों न करें, किन्तु मैं जानती हूँ, कि मैंने कोई पाप नहीं किया महादेव ने कोई पाप नहीं किया। उमा ने कोई अपराध नहीं किया। शिवोपासक जातियों में कोई पाप नहीं है यदि देव अपना दम्भ नहीं छोड़ेंगे, तो उन्हें असुरों का दास होना पड़ेगा। असुर दुर्दमनीय हैं। वे कितने चतुर और कुशल हैं। उनके एक बार दास हो जाने पर, फिर मुक्ति असंभव है। देवसेना, तब हम तुम उनकी दासियाँ होकर, उन्हीं की स्त्रियों की भाँति अवरुद्ध जीवन व्यतीत किया करेंगी, जिसमें भयानक बंधन है!"

देवसेना काँप उठी। उसने स्वाहा के मुँह पर हाथ रख दिया।

( ५ )

देवों के मुख्य नगर स्वर्ग, और चारों ओर के कितने ही लोग कार्तिकेय के सहायक हो चले। सब पूछते, "क्या कारण है? कुमार का विरोध किसलिये किया जाय?"

देवसेना ने देखा, स्वाहा के होंठ फड़क रहे थे। भयानक संग्राम हो रहा था। एक ओर थे इन्द्र, देव और महर्षि। और दूसरी ओर थे कार्तिकेय और उसके पारिषदगण।

अपने बलिष्ठ ऐरावत को जब इन्द्र ने अंकुश मार कर, उसे कुमार की ओर बढ़ाया; और खींच कर वज्र मारा, तब कुमार की दाहिनी ओर से विशाख ने आगे बढ़ कर, उसे अपने ऊपर ले लिया।

देवसेना मुग्ध-सी देखती रही। कुमार के पराक्रम से देवों का साहस छूट रहा था। स्वयं इन्द्र का मुख निष्प्रभ हो चला था। कुमार के पारिषदगण, महासागर की उत्तुंग लहरों की भाँति, गरज रहे थे। अग्नि-वंश के योद्धा मानों समर-क्षेत्र में भीषण आग उगल रहे थे। किसी का सिर, किसी का शरीर, किसी का वाहन जल गया।

उस भीषण युद्ध में धीरे-धीरे देवों का पक्ष निर्बल होने लगा। क्रोध से इन्द्र का मुख विकराल हो गया था। भृगु-वंश के अग्नि, स्वाहा के पति, स्वयं रुद्र की भाँति युद्ध कर रहे थे। काकी, हलिमा, मालिनी, बृहिता, आर्या, पलाला और वैमित्रा स्कन्द की ओर से शस्त्र-वितरण कर रही थीं। भद्रशाख अपनी अपार शक्तियों के साथ स्कन्द का पारिषद था। शुक्लपक्ष की पंचमी को पारिषदों की सृष्टि हुई थी, और आज छठ को ही भीषण संग्राम हो रहा था।

देखते-ही-देखते इन्द्र को छोड़ कर, समस्त देवताओं ने अस्त्र फेंक दिये, और 'कुमार कार्तिकेय की जय' का आर्त्त क्रंदन करते हुए, पुकारा—"शरण, महापराक्रमी, शरण!"

पारिषदों के उठे हुए शस्त्र झुक गये।

क्रोध से व्याकुल इन्द्र चिल्ला उठे—"कायरो! तुम्हारे ही लिये मैंने शस्त्र उठाया था! तुम्हीं मुझे अकेला छोड़कर, शत्रु की शरण में चले गये! मैं जानता था! देवसेना मेरे पास आई थी! मैं जानता कि मैं युद्ध रोक सकता था। मैं कुमार की शक्ति जानता था! किन्तु तुम लोग अंधे हो रहे थे!"

फिर क्षण भर रुक कर इन्द्र ने गरज कर कहा—"किन्तु इन्द्र पद पर बैठ कर मैं पीछे नहीं हट सकता! कार्त्तिकेय, मैं द्वंद्व-युद्ध के लिये तुम्हें निमंत्रित करता हूँ!"

चारों ओर निस्तब्धता छा रही थी। सब भयानक परिणाम की आशा कर रहे थे।

किन्तु तभी कुमार ने बढ़ कर कहा—"महाबली इन्द्र! मैं तुमसे युद्ध नहीं करना चाहता! मैं जानना चाहता हूँ, कि तुम्हारा मुझसे क्या वैमनस्य है?"

इन्द्र ने अपमान से झुलस कर कहा—"इन्द्र कभी पराजित होकर नहीं रह सकता!"

उस समय अचानक एक स्त्री-स्वर सुनाई दिया। लोगों ने देखा देवसेना पुकार-पुकार कर कह रही थी—"किस लिये हो रहा है यह युद्ध? किस लिये घायलों की कराहें आज कानों में पहुँच रही हैं! महाबली इन्द्र मेरी मौसी के पुत्र हो। ऐरावत से उतर आओ। कुमार कार्त्तिकेय देवों का शत्रु नहीं है। किस लिये हम परस्पर युद्ध करके अपनी शक्ति क्षीण करें?"

"युद्ध बन्द कर दो," "युद्ध बन्द कर दो!" स्त्री और पुरुष चिल्लाने लगे।

इन्द्र का मुख उतर गया। वे ऐरावत से उतर आये। और उन्होंने हाथ फैला कर कहा—"कुमार, तुम विजयी हो गये!"

किन्तु कुमार ने झुक कर प्रणाम किया, और कहा—"इन्द्र कभी पराजित नहीं होंगे। मैं इन्द्र का दास हूँ!"

जहाँ कुछ देर पहले भयानक रक्तपात हो रहा था, वहाँ अब मंगल ध्वनियाँ होने लगीं। शंख बजने लगे। स्वाहा आगे बढ़ी! कुमार कार्तिकेय ने एक बार देवसेना के मुख की ओर देखा, जो हठात् ही लाल हो गया। स्वाहा मुस्करा कर हट गई। देवसेना पृथ्वी की ओर देखने लगी। रक्त-बिन्दुओं से सजा हुआ कुमार कार्तिकेय का सौंदर्य इस समय कामजित्-सा लग रहा था।

कुमार ने धीरे से कहा—"तुम कौन हो, सुन्दरी?"

देवसेना ने, बिना सिर उठाये ही, कहा—"सेनापति, मुझे देवसेना कहते हैं।"

उसी समय इन्द्र कह उठे—"महापराक्रमी कुमार, आज से देवसेना तुम्हारी है!"

देवसेना ने लज्जा से सिर छिपा लिया।

कुमार ने कहा—"क्षमा करें, महाबली इन्द्र! मैं आज आपको से देवसेना न चाह कर, युद्ध करने वाली देवसेना चाहता हूँ!"

"होगा, होगा! वह भी होगा!" इन्द्र ने मुस्करा कर कहा।

सब चले गये।

देवसेना चुपचाप रो उठी। किसी ने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेर कर, कहा—"रोती है, पगली?"

देवसेना ने सिर उठाकर देखा, स्वाहा खड़ी थी उसकी वेदना को समझती हुई। देवसेना ने उसके कंधे पर सिर रख दिया, और सिसकने लगी। स्वाहा उसे ले चली।

देवों में सब जगह स्वाहा और देवसेना की ही चर्चा थी।

उधर संवाद आया, कि असुरों ने उत्तर-पश्चिम में देव-नगरों और देव-ग्रामों को लूटना प्रारम्भ कर दिया था।

संध्या ने शैल-मालाओं पर अपना स्वर्ण छिड़क दिया। हिममंडित शिखर ऐसे प्रतीत हुए, जैसे सोते हुए पुण्डरीकों पर पराग फैल गया हो। गंधर्वों की वाद्य-ध्वनि और गाँव से जागरण का अजय मंत्र पवन पर आरूढ़ हो गया।

देवों की लक्ष्मी कार्तिकेय के पक्ष में आ गई थी।

देवों ने स्तुति की—"हे महाबली स्कन्द! तुम त्रिभुवन को अभय देने वाले इन्द्र का पद ग्रहण करो!"

किन्तु कुमार गम्भीर था। उसने कहा—"मैं नहीं जानता, कि इन्द्र का क्या उत्तरदायित्व है। इन्द्र इन्द्र रहें। मैं इन्द्र-पद नहीं चाहता। मैं इन्द्र का अनुचर होकर, असुरों का नाश करना चाहता हूँ!"

इन्द्र ने गद्‌गद होकर कहा—"महापराक्रमी स्कन्द की जय! आज ही से स्कन्द को मैं स्वयं इन्द्र बनाता हूँ। इन्द्र से बढ़ कर कोई भी पराक्रम नहीं होता! यदि तुम में मुझसे अधिक शक्ति है, तो मैं किसलिये इन्द्र बना रहूँ!"

सबने इन्द्र का साधुवाद किया। वे पुलकित थे। उन्होंने पुकार कर कहा—"स्कन्द! यदि मैं इन्द्र बना रहा, तो सब मेरा निरादर करेंगे, और हम दोनों में भेद डालने के विशेष यत्न करेंगे। यदि उनका यत्न सफल हो गया! तो लोगों के दो दल हो जायँगे। एक दल तुम्हारे पक्ष में होगा, और दूसरा दल मेरे पक्ष में। उस समय मुझमें और तुममें झगड़ा हो जायगा। तब युद्ध में तुम अपनी इच्छा के अनुसार अपने बल से मुझे जीत लोगे। इसलिये तुम इन्द्र का पद ग्रहण करो!"

स्कन्द ने कहा—"हे इन्द्र! तुम श्रेष्ठ हो। तुम त्रिलोक के और मेरे भी स्वामी हो!"

देवताओं और उपस्थित लोगों ने दोनों का जयजयकार किया।

इन्द्र ने कहा—"तब तुम्हें मेरी आज्ञा माननी चाहिये। तुम देवताओं के सेनापति का पद ग्रहण करो। यह देखो, यह सब देवसेना तुम्हारी है!"

स्कन्द के पारिषदगणों के रण-वाक्यों की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। कार्त्तिकेय के पास उनका ध्वजा लाल-लाल-सा दीख रहा था।

स्कन्द ने कहा—"हे इन्द्र, दास को स्वीकार है!"

इन्द्र ने पुकार कर कहा—"दानवों के विनाश के लिये देवताओं के प्रयोजन की सिद्धि और गो-हित के लिये .."

देव-कवियों ने स्तुति करना प्रारम्भ किया—"सेनापति कार्त्तिकेय! स्वयं अग्नि ने समस्त अग्नि-वंश के साथ तुम्हारी रक्षा की है। तुम आज से सूर्य, चन्द्र, पवन, पृथ्वी और जल के शासक हो! त्रिभुवन तुम्हारी रक्षा में सतर्क है, तुम्हारी शरण में है!"

उस समय त्रिपुरदहन, किरातराज महादेव पार्वती के साथ आ गये। उन्होंने विश्वकर्मा की बनाई कंचनमाला स्कन्द के गले में पहना कर जयकार किया।

महर्षियों ने स्तुति की—"तुम अग्नि के पुत्र हो। अग्नि रुद्र है। तुम रुद्रसुत हो। कृत्तिकायें तुम्हारी माता हैं। वे पूजनीय हैं। इस समय इन्द्र का कवच पहन कर, तुम्हारा रूप अद्‌भुत हो उठा है। तुम सूर्य के समान हो। आज का दिन तुम्हारी विजय का दिन है। देवों की लक्ष्मी तोकल ही तुम्हारी ओर चली गई। आज मिलन का अवसर है। यह महातिथि है। युगों तक लोक तुम्हारा यश गाये!"

उस समय स्वाध्याय-पाठ का शब्द, देवताओं के नगाड़ों का शब्द और देवताओं की स्तुति तथा गंधर्वों के मंगलगान का शब्द चारों ओर गूँज उठा। अप्सरा, पिशाच, देवता और बहुत-सी प्रजा, सभी कुमार के इन्द्र के सेनापति होने पर, आनन्दित हो रहे थे। इन्द्र का सम्मान

करते, प्रफुल्लित हो सबने देखा, कि सहस्रों कुमार के पारिषद् और देवताओं की सेना ने एक स्वर से कार्त्तिकेय का जयनिनाद किया।

कवियों ने फिर जय गान किया—"सप्तर्षियों की छः पत्नियाँ और अरुन्धती लोकपूज्य हैं। वे तुम्हारी माता के समान हैं। हे स्कन्द, तुम्हारे विधान में, इन्द्र के विचारानुसार अभिजित् नक्षत्र के स्थान पर धनिष्ठता प्रतिष्ठापित हुआ। आज चंद्रमा, सूर्य और बृहस्पति एक हो गये हैं। आज नवयुग का आदि हुआ। कृत्तिका तुम्हारी माता है। गरुड़ों की माता, वृद्धा विनता, ने तुम्हें वन के पार किया था। वे लोकपूज्य हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि लोकमाता पूज्य थी, पर आज उनका गौरव नष्ट हो! वे देवताओं की विनाशिनी सिद्ध हुईं। बच्चों को खा जानेवाली जातियाँ तुम्हारी अनुचर हैं। बालघातिनी पूतना, पिशाची निशाचरी शीत-पूतना, बालक-मांस-प्रिय मुख-मंडिका, करंजनिया, लोहितायनि, सबके उपासकों ने तुम्हें सहायता दी है। उनकी कीर्त्ति आकाश के नक्षत्रों के समान बनी रहेगी।"

तब स्वाहा ने आगे बढ़ कर, कहा—'पुत्र मैं तुम्हारी माता हूँ।... क्या तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे? अग्निवंश में उद्भूत तुम्हारे पिता ने वंशगत संकोच से मुझे आज तक स्वीकार नहीं किया। मैं अपमानित हो, भटकती रही हूँ। कोई मुझे नहीं चाहता। अग्नि के आंगिरा-वंश ने युद्ध तुम्हारी ओर से किया। परन्तु मुझे कोई सम्मान नहीं मिला। तुम्हें महादेव और उमा ने पाला है। पर तुम्हारी माँ मैं हूँ। तुमने मेरे गर्भ से जन्म लिया है। जिस गर्भ को भय से मैंने उन जातियों में छिपा दिया, भगिनी के पति के संरक्षण में रखा, जिनसे यह रूढ़िवादी देव घृणा करते थे, आज उसी गर्भ का बालक तू इस उच्च पद पर आसीन है। क्या तू भी मुझे छोड़ देगा?' उसका स्वर काँप रहा था।

स्कन्द ने बढ़कर कहा—'माँ!"

स्वाहा ने उसे गोद में भर लिया, और आनन्द से रो पड़ी।

स्कन्द ने देखा, एक व्यक्ति आगे बढ़ आया। उसने काँपते स्वर में कहा—"मैं आगया, स्वाहा! मैं तेरा पति, आ गया।"

स्वाहा चौंक कर हट गई। उसने हर्ष से देखा, स्कन्द को अग्नि-वंशीय गोद अपने चरणों से उठा रहा था। उसने धीरे से कहा—"स्कन्द, मुझे क्षमा कर! कुछ भी हो, अब अग्नि और स्वाहा का नहीं, संसार तुझे शिव और उमा का पुत्र कहेगा।"

स्कन्द ने कहा—"संसार की सब स्त्रियाँ मेरी माता हैं!"

रात हो चली थी। हठात् इन्द्र ने पुकार कर कहा—"देव, राक्षस यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग, किरात, वसु, जृम्भक, पिशाच, सिद्ध, ऋषि उपस्थित वाहिनी, सब सुनो!"

चारों ओर नीरवता छा गई। इन्द्र ने कहा—"इस समय सब आनंद में प्रफुल्लित हैं। किन्तु आज इन्द्र अपनी एक प्रतिज्ञा पूरी करना चाहता है। आप सब इस गृह युद्ध की अग्नि को शान्त करनेवाली एक शक्ति को भूल गये हैं। मैं चाहता हूँ, कि यह महातिथि पूर्णता सार्थक हो।"

चारों ओर से ध्वनि उठी—"अवश्य, अवश्य!"

जब कोलाहल शान्त हुआ, तब इन्द्र ने कहा—"देव सेना! प्रजापति दक्ष की कन्या देवसेना! आगे आओ!"

देवसेना आँख फाड़, अपने आपको भूली हुई उल्का के काँपते प्रकाश में खड़ी-खड़ी चकित-सी सब देख रही थी। अपना नाम सुनकर वह चौंक उठी। वह स्कन्द की महानता और वैभव से पराजित-सी अपने आपको अत्यन्त हीन समझती, किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी देख रही थी।

इन्द्र ने फिर कहा—"देवसेना से बढ़ कर देवों के पास आज कोई सुन्दरी नहीं है।"

देवसेना संकुचित हो रही थी। स्वाहा ने उसे हाथ पकड़ कर आगे खींच लिया, और चिल्लाकर कहा—"एक दिन दक्ष की कन्या ने महादेव

के उपासकों को देवों से मिला देना चाहा था। वह असफल हो गई! दक्ष की स्वाहा के कर्म का यह फल है, कि आज दक्ष की तीसरी कन्या उस कलंक को मिटा देगी!" फिर उसने कुमार स्कन्द महासेन से मुड़ कर कहा—"पुत्र, यह तेरी है!"

देवसेना लाज से गड़ी जा रही थी। मंत्रज्ञाता, अग्निरूप बृहस्पति जप करने लगे। होम का आयोजन होने लगा। अपने ऐरावत हाथी के घंटे इन्द्र ने स्कन्द को उपहार में दिये, जिसमें से एक स्कन्द ने विशाख को दे दिया।

उस सुवर्ण पर्वत पर कार्त्तिकेय देवताओं और पिशाचों के बीच में भव्य दीप्ति से अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उन्होंने देवसेना का स्वेदयुक्त हाथ पकड़ लिया।

वह कांचन-पर्वत पहले से ही फूले हुए सन्तानक, करवीर, पारिजात, जया, अशोक, कदम्ब आदि वृक्षों के वनों से और मृग तथा पक्षियों से सुहावना लगता था, उस पर अब देवता, देवर्षि, नाचती-गाती हुई अप्सरायें तथा गंधर्व आदि के झुण्डों से और भी सुन्दर लगने लगा। गम्भीर निर्घोष से नगाड़ों का तुमुल निनाद आनन्द कोलाहल में मिल कर, गूँज उठा। इन्द्र अत्यधिक प्रमुदित थे। समस्त जातियों में अपूर्व उत्साह छा रहा था।

स्वाहा तथा अग्नि के निकट कार्त्तिकेय देवसेना का हाथ पकड़े खड़े थे।

आज सब विद्वेषों का अन्त हो गया था।

( ६ )

जब पार्वती और शंकर रथ पर जाकर बैठ गये तब कुबेर, यक्ष गुह्यकों के साथ उनके साथ-साथ चले। इन्द्र ऐरावत पर साथ साथ चल पड़ा। अनेक यक्ष राक्षस, जृम्भकगण के साथ अमोघ नामक महा-यक्ष दाहिनी ओर था। वसुगण, रुद्रगण तथा यमराज भी साथ ही

चले। रुद्र का विजय नामक त्रिशूल उठाये, अनुचर पीछे जा रहे थे। गदा, मूसल, शक्ति, पट्टिश इत्यादि शस्त्रों से सज्जित, भृगु और अङ्गिरा के बीच में रुद्र चलने लगे। देवता, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, गौरी, विद्या, गान्धारी, केशिनी, मित्रसा तथा सावित्री भी पीछे-पीछे चलती रहीं।

राक्षसगण पताका लिये आगे-आगे जा रहे थे। श्मशान में रहने वाला यक्षराज हिङ्गुल भी उन्हीं के साथ था।

कार्तिकेय उन सबसे घिर कर अत्यन्त शोभित हुए।

महादेव ने कहा—"स्कन्द, तुम सदा मारुतस्कन्द नामक देवताओं के सातवें व्यूह की रक्षा करो।"

और इसके बाद महादेव रुद्र ने भद्रवट की ओर प्रस्थान किया।

सब विश्राम करने लगे।

रात हो गई थी। सब सोने का उपक्रम करने लगे थे असुरों की विजयों का आतंक उनकी प्रबल वाहिनी के साथ चढ़ा चला आरहा था। कहीं-कहीं योद्धाओं के बीच उल्काये जल रही थीं, जिनके प्रकाश में सुन्दर यक्षिणि या नृत्य कर रही थीं, और वे आसव पी-पी कर विह्वल हो रहे थे। बहुत दिनों से युद्ध न होने के कारण पुरुषों का पौरुष स्त्रियों के साथ विलास में ही निहित हो गया था। और फिर यक्षों की अपार धन-संपत्ति तथा गंधर्वों की निरन्तर संगीत-नृत्य में लगी रहने की लालसा उनके युवकों का मुख जीवन के दूसरे क्षेत्रों की ओर मोड़ दिया था। देव समझते थे, कि अब देवताओं ने असुरों को सदा के लिये पराजित कर दिया है।

पिशाच और अन्य जातियाँ अब काफी सशक्त थीं। स्कन्द के विशेष पारिषदगण उन्हीं में चुने गये थे।

आकाश में तारे छिटक रहे थे। उधर एक ताल उनकी झिलमिल, धुँधली-धुँधली चमक में स्तब्ध पड़ा था। सुगन्धित समीर बहने लगा।

निकटस्थ नगर से उत्तमोत्तम भोजन मँगाये गये थे। आज नगरों से आ-आ कर युक्त सैन्यशक्ति बढ़ा चुके थे।

देवसेना चुपचाप एक शिलाखण्ड के सहारे टिकी हुई, खड़ी-खड़ी सोच रही थी। विभिन्न दिशाओं को विभिन्न सेनापति जा चुके थे।

अचानक किसी तुरही का शब्द उठा, और फिर वह लय हो गया। देवसेना मुड़ी, और हठात् चौंक उठी। उसके पीछे न जाने कब से महा पराक्रमी, महासेन, कार्त्तिकेय कुमार, स्कन्द, समस्त देवसेना के सेनापति, महादेव के समस्त गणों के नायक, अग्नि-वंश विद्वेष-विनाशक पुत्र चुपचाप खड़े, अतृप्त आँखों से उसकी ओर निहार रहे थे।

कुमार ने अपनी भुजायें फैला दीं। कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता न रही। देवसेना उनमें समा गई।

कुमार ने धीरे से कहा—"भय तो नहीं लगता?"

देवसेना ने कुछ नहीं कहा। केवल एक बार आँख भर कर उसकी ओर देखा। जैसे कानों ने कुछ नहीं सुनना चाहा। मन कह रहा था, तुम्हारे रहते?'

"तुम," कुमार ने कहा—"अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर हो! त्रिभुवन में तुम्हारे समान कोई नहीं है! वह देव-सेना मुझे छोड़ सकती है, पर तुम मुझे कभी नहीं छोड़ोगी। तुमने देवजाति के कल्याण के लिये ही जन्म लिया है!'

देवसेना ने हँस कर कहा—"यदि इन्द्र न होते, तो मुझे केशी उठा ले गया होता!"

कार्त्तिकेय ने उसे अपने अङ्क में दबाते हुए, कहा—"पर अब कोई तुम्हें नहीं ले जा सकता, देवसेना! स्वयं इन्द्र, महादेव और ब्रह्मा भी तुम्हें मुझसे नहीं छीन सकते!"

देव सेना को यह विद्रोह बुरा नहीं लगा। वह आत्म-विभोर हो सुन रही थी।

आनेवाले युद्ध की आशा से भूमि काँप रही थी। देवसेना ने जलती आँखों से कार्तिकेय की ओर देख कर, कहा—"पराक्रमी!"

कुमार के हाथ ढीले हो गये। उसने सावधान होते हुए कहा—"सुन्दरी, जिस दिन मैं तुम्हारे अपमान का बदला ले लूँगा, जिस दिन मैं असुरों के रक्त से तुम्हारे पाँवों में महावर लगाऊँगा, उस दिन..."

देवसेना का ऊष्ण श्वास कुमार के कन्धे को छूने लगा। उसने धीरे से कहा—"मैं भी युद्ध में चलूँगी।"

कुमार हँसा। उसने कहा—"क्या तुम्हें मेरे पौरुष पर विश्वास नहीं है? क्या तुम मेरी रक्षा के लिये चलना चाहती हो?"

"नहीं," देवसेना ने कहा—"तुम्हारे पौरुष का कार्य बढ़ाने के लिये..."

दोनों हँस पड़े। रात घनी हो चली थी। देवसेना कुमार से सटी खड़ी रही।

( ७ )

विपत्ति के बादल सघनतम हो चले। असुरों का प्रहार अपनी संख्या बढ़ने में लगा रहा। उसका वेग बढ़ने लगा। उन्होंने उत्तर-पश्चिम की भूमि को श्मशान बना दिया। देवों के वे उच्च सौध धूलि में मिल गये। देवगण में उस भयानकता के कारण ऐसा आतंक व्याप्त हो गया, जिसकी चर्चा सुन कर नागों तक की छाती दहल उठी। किन्तु वे अपने युवकों को निरन्तर युद्ध-भूमि की ओर भेजते रहे। पराक्रमी रक्ष-जाति ने असुरों से भीषण युद्ध किया, जिससे असुरों के दो-एक स्थान पर पाँव भी उखड़े, किन्तु उनकी अधिक क्षति नहीं हुई। स्वयं महादेव उनकी ओर उनके गणों में एक व्याकुलता छा गई। असुरों की सेना मेघ और पर्वत के समान भीषण आक्रमण करने लगी। कुमार का समय दिन-रात युद्ध-भूमियों में ही बीतता, किन्तु वे जिधर से हटते उधर ही से चतुर दानव प्रास, गदा, खड्ग, परिघ, इत्यादि लेकर

टूट पड़ते। पाषाण-वर्षा का प्राचीन-युद्ध भी उनकी रण योजना में एक विशेष स्थान रखता था। देव-सेना भयभीत होकर भागने लगी। असुर स्वयं भी अग्नि-पूजक थे। वे आग लगा कर, समझते कि उनका देवता अट्टहास कर रहा है। देव-पत्नियाँ पकड़ ली जातीं। महा-असुर केशी के प्रचंड भुजदण्डों में विजित देव-सुन्दरियाँ फूलों की भाँति मसली जाने लगीं। दानवों ने इनके वनों में आग लगा दी, जिसके इनके ग्राम जल उठे, और अनेक पशुओं का विध्वंस हो गया। देवता इतनी बुरी तरह पिटे, कि वे त्राहि-त्राहि करते हुए भागने लगे।

इंद्र ने उन्हें सांत्वना देते हुये कहा—"वीरो, शत्रु का दृढ़ता से सामना करो! याद करो, तुम्हारे पूर्वज जब शस्त्र लेकर चढ़ते थे, तब असुरों की भीमवाहिनी पुरानी लकड़ी की भाँति भर्रा कर टूट जाती थी। एक दिन इन्हीं नदियों में, मैदानों में देव-जाति के प्रचंड हुंकारों से पृथ्वी को कँपा देने वाली शक्ति व्याप्त हो गई थी। देवताओ, बढ़ो! तुमने मृत्यु को कुछ नहीं समझा! तुम अमरों की सन्तान! तुम अमर हो!"

तब महाबली वसुदेवता और साँध्यगण भी देवताओं से मिल कर दानवों से युद्ध करने लगे। इस प्रचंड प्रहार से देवों में अद्भुत बल आ गया। असुरों का घोर संहार होने लगा। रणवाद्यों के तुमुल निनाद में देवों के शस्त्रों ने कच्चे घड़ों की भाँति असुरों की सैन्य शक्ति को फोड़ दिया, और देखते देखते असुर, दैत्य, दानव सेना युद्ध भूमि से डर कर भाग खड़ी हुई।

जब यह संवाद पराक्रमी कार्त्तिकेय के पास पहुँचा, तो उसने कहा—इंद्र हमारे पूज्य हैं। उनका गौरव पृथ्वी पर अक्षुण्ण रहेगा।"

देवसेना विभोर हो उठी। उसने गद्‌गद्‌ स्वर में कहा— देवेन्द्र से कहना, कि देवसेना केशी के रक्त की प्रतीक्षा कर रही है!"और जब

उसने ये कठोर शब्द कहे तो उसकी आँखों में पागलपन सा छा गया।

उस रात को देवों ने हर जगह सम्मिलित गान किया। गन्धर्वों ने रण राग गाये। यक्षों, सिद्धों ने युद्ध की हुंकारें उठाईं। राक्षस, नाग, किन्नर, पिशाच, इत्यादि टोह लेते रहे।

देवसेना बैठ कर आसव पिया करती या स्कन्द के साथ साथ रणभूमि में घूमती।

इस प्रकार देवताओं और दानवों का युद्ध होता रहा। चारों ओर रक्त और मांस की कीच लग गई।

दानवों में एक बार फिर भयानक उत्साह छा गया। तुरही नगाड़े आदि बजा कर, घोर सिंहनाद करते हुए, जब उन्होंने भीषण आक्रमण किया, तो देवसेना दबने लगी। और तब यह नाद गूंज उठा, "महाबली दैत्य वीर महिष की जय!" महासामरिक असुरों ने वज्रगर्जन किया।

उस महा असुर का नाम सुन कर, वीर देवताओं के छक्के छूट गए, और वे भागने लगे। भागते हुये देवों पर असुर ऐसे झपट कर उन्हें मारने लगे, जैसे सिंह मृगों के झुंड पर आक्रमण करके, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है। और देवों को भागते देख कर, उसने देखा कि युद्ध-भूमि में कोई सेनापति नहीं है। तब उसने प्रचंड अट्टहास किया। स्वयं देवराज इंद्र युद्ध भूमि से भय के कारण भाग गये थे।

दूसरे दिन ही महाअसुर महिष का कठोर स्वर गूंज उठा—'भद्र-वट की ओर! सामरिको, आज रुद्र का संहार करना है!"

उस समय मेघवर्ण महाकाय दैत्य अपनी विजय के निश्चय में घोर कोलाहल और सिंहनाद करते हुए, पाषाणवर्षा में निरत, इधर-उधर पृथ्वी को संतप्त करते हुये, दारुण वेग से रुद्र की ओर चल पड़े। किन्तु मार्ग में ही रुद्र की सेना ने टक्कर ले ली। भीषण युद्ध होने लगा।

इस भयानक रूप से हत्याकांड हुआ कि महिषासुर का क्रोध उन्मत्त हो उठा। वह देव रुद्र के रथ पर क्रोध से हुंकार कर, सिंहनाद करता आक्रमण करने लगा। देव रुद्र का रथ पीछे हटने लगा। क्षण भर में लगा, कि उत्तर प्रांत असुरों के हाथ में चला जायगा। उसी समय एक तीखी आवाज गूंज उठी—"महा पराक्रमी कुमार स्कन्द कार्त्तिकेय की जय!"

देवरुद्र ने चिल्ला कर कहा"—सैनिको! यक्षो! राक्षसो! कुमार कार्त्तिकेय की..."

और तब पहाड़ों की छाती फाड़ने वाला स्वर उठा, और गूंजा "जय!"

महाबाहु कार्त्तिकेय को देखते ही, दैत्य सेना काँप उठी। क्षण भर महिषासुर देखता रहा। फिर वह कार्त्तिकेय की ओर चला। देव-सेना ने देखा, उसका पति विकराल अट्टहास करके आगे बढ़ा। दोनों में भीषण, प्रचंड युद्ध होने लगा। अचानक कार्त्तिकेय की शक्ति प्रज्वलित सी दिखाई दी, और दूसरे क्षण वीर महिषासुर का सिर कट कर धूलि में लोटने लगा।

क्रुद्ध कुमार ने चिल्ला कर कहा—"महाबली महिषासुर का सिर ले जाकर उत्तर कुरु के प्रवेश द्वार पर लटका दो; जिससे भय उनके पौरुष को नष्ट कर दे, और उनमें फिर इतना साहस न रहे, कि उत्तर कुरु पर वे अपने हाथ चलायें!"

देवताओं ने भीषण जयनाद किया, और भागते हुये दानवों का इतना भयानक संहार किया गया, कि लगता था, कि अब असुर देश में निस्संदेह एक-एक दस-दस साल के बालक के बीस-बीस युवतियाँ विवाह करेंगी। सभी शत्रु मार डाले गये। जो बचे, उन्हें स्कन्द के पारिषद-गण मार कर, प्रसन्नतापूर्वक, मांस खाने और रक्त पीने लगे।

उस समय त्रिभुवन में कार्त्तिकेय की विजय-गाथा प्रतिध्वनित होने

लगी। तब कविगण उनकी स्तुति करने लगे—"हे आग्नेय, स्कन्द, दीप्तकीर्ति, अनामय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेशु, महिषार्दन, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिशु, शीघ्र, शुचि, चण्ड, दीप्तवर्ण, शुभा न, भतकृत, कूटमोहन, षष्ठीप्रिय, विभक्त, स्वाहेय, रेवतीसुत प्रभु नेता नैगमेय खेचारी विश्वामित्रप्रिय देवसेनाप्रिय षडानन गुह! तुम सहस्र तुष्टि, सहस्रभुक्, सहस्रशिशु, सहस्रचरण हो! स्वाहा पृथ्वी और कृत्तिकाओं ने तुम्हें उत्पन्न किया है! हे षडानन! मुर्ग तुम्हारा खिलौना है। तुम पर्वतराज हो! तुम उग्रधन्वा हो! युगों तक तुम्हारी कीर्ति गाई जायगी! युगों तक तुम अमर हो!"

और त्रिभुवन जयजयकार और आनन्द-कोलाहल नृत्य वादन गायन से गूंज उठा। युद्धकालीन संयम अब भी विलासिनियों की शय्या पर अंगराग की भाँति कुचल कुचल कर चूर्ण हो रहा था।

स्कन्द ने देवसेना से कहा—"सुन्दरी हमारा कार्य समाप्त हो गया। ब्रह्मा की बनाई सब से बड़ी शक्ति महिषासुर को खंड-खंड कर दिया गया है। अब चलो!"

देवसेना ने चकित होकर पूछा—"कहाँ कुमार!"

वहीं कुमार ने हँस कर कहा—"जहाँ मैं पला था, जहाँ संसार की उपेक्षित जातियाँ रहती हैं। वहीं महादेव के गणों के बीच; जहाँ मेरा पालित मयूर पुच्छ खोल कर नृत्य करता है।"

देवसेना मुग्ध सी सुनती रही। कार्तिकेय का पौरुष सौम्य था, सुन्दर, सजीव, दीप्त। वह देख रही थी कितना महान् कितना गरिमामय फिर भी कितना सरल......

किन्तु देवताओं को ज्ञात होते ही चारों ओर हलचल मच गई। असुरों का भय अभी तक उनके उपचेतन में समाया हुआ था। उन्होंने सम्मिलित स्वर में निश्चित किया कि असुरों के पुरों का जब तक दहन

नहीं होगा तब तक वे शान्त नहीं होंगे। प्रतिहिंसा का भीषण शब्द उनके कानों में रक्त-दान के बिना सदा ही गूंजा करेगा। अभी असुरों का क्या बिगड़ा है? वे महिषासुर की मृत्यु की बात सुनकर दुगने वेग से प्रहार करेंगे।

कुमार स्कन्द हँसे। उन्होंने कहा—"देवगण निर्भय रहें। बाहर का युद्ध चलाने को देवों की शक्ति यक्ष,गन्धर्वों, विद्याधरों, और किन्नरों, का धन और जन बल है। देवगुरु बृहस्पति की प्रज्ज्वलित अग्नि महा-वीर्यवान इंद्र, विष्णु, चन्द्रमा, विधाता, वायु, पूषा, भग, अर्यम्ना, अंश विवस्वान, मित्र, वरुण सन्नद्ध रहें। पुलह, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, प्रचेता, दक्ष की संतान, पुरों और ग्रामों को तत्पर रखे। सिनीवाली, आठों वसु, ग्यारह रुद्र वनों की रक्षा करें। एकाएक प्रचुत् काफी है। मैं महापारिषद, वनन्दिसेन, लोहिताक्ष, घण्टाकर्ण और कुमुदमाली के नेतृत्व के निमित्त सेना को देता हूँ। यम के दिये उन्माथ और प्रमाथ मेरे साथ रहें। सुभ्राज, भास्वर, मणि और सुमणि, ज्वालाजिह्व, ज्योति, चक्र, विक्रम, संक्रम, उत्क्रोश, पञ्चक, कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर अपने पहले स्वामियों को भूल कर, एक होकर, नगर दुर्ग की रक्षा करें। मेरे १५२ पारिषद समस्त उत्तर कुरु, और अन्य भू-प्रान्तों में फैल जायें। १९२ मातृकायें अपना जातीय और देवतोपासन भेद भूल कर अपने अनुचरों के साथ युद्ध के पार्श्व को संयोजित करें। बाकी मातृकायें, भूतगण, कुक्कुट, उलूक गरुड़ तथा महादेव के समस्त गण, बेताल, पिशाच, इत्यादि मेरे साथ रहें। मैं अभी कुछ दिन यहीं रहूँगा।"

देवसेना क्षण भर के लिये मन ही मन संकुचित हो गई। जब सब उस स्थान से हट गये, तो उसने कार्त्तिकेय से कहा—"कुमार स्कन्द !"

कुमार ने कहा—"क्या है, देवसेना ! कुछ चिंतित हो ?"

देवसेना सकपका गई। उसने कहा—"पराक्रमी, तुम्हारी शक्ति और

पारिषदों को देख कर, आज सब भयभीत हैं। किन्तु मैं देवों को जानती हूँ। तुमने जो रक्षक अपने पास नियुक्त किये हैं, इससे उनमें कुछ असंतोष अवश्य हुआ होगा। तुमने उन्हें नहीं चुना। क्या वे वीर न थे?"

स्कन्द ने किंचित मुस्करा कर, उत्तर दिया—"सुन्दरी, कुमार स्कंद ऊपर की झिलमिल से भ्रम में नहीं पड़ सकता। ये लोग मेरे विश्वास-पात्र हैं।"

"किन्तु," देवसेना ने कहा—"इन लोगों के विचित्र मुख हैं। जैसे जंगली पशु हों ये।"

"यह तो प्रकृति के निर्णय की बात है। इसमें इनका क्या दोष? इनका विश्वास, इनका रहन-सहन, सब कुछ प्राकृतिक है। देव अपने को प्रकृति का नियन्ता समझने लगे हैं। पर ये ऐसा नहीं समझते। ये सब महादेव के उपासक हैं। भिन्न-भिन्न छोटी-छोटी जातियाँ सब तरह से स्वतन्त्र हैं। उनके यहाँ कोई अपनी संपत्ति नहीं। रुद्र यद्यपि यक्षों के काफी प्रभाव में आ चुके हैं, परन्तु अब भी उन पर इन सरल जातियों का बहुत प्रभाव है। इनमें एक ही दोष है, कि ये नये व्यक्ति पर सरलता से विश्वास नहीं करते। इनमें यहाँ बड़े नगर नहीं हैं। मैं तुम्हें इनके बीच ले चलूंगा। तब तुम स्वयं देख लोगी।"

"किन्तु," देवसेना ने कहा—"ये मातृकायें कामचारिणी हैं।"

स्कन्द हँसे। उन्होंने कहा—"किस जाति की स्त्रियाँ कामचारिणी नहीं हैं? जिसे संयम कहा जाता था, कहते हैं, कि वह पहले इन्हीं कुछ जातियों में था। किन्तु वह भी व्यक्ति का गुण था। समाज में उसका आडम्बर नहीं था।"

देवसेना ने अंतिम प्रहार किया—"उनके पिता के विषय में कोई नहीं जानता। लोग कहते हैं, कि वे देवों के द्वारा उद्भूत हैं। उनकी माताओं के विषय में भी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।"

अब की बार स्कन्द को एक अत्यन्त आनन्दपूर्ण चमक ने घेर लिया। उसने कहा—"स्कन्द किसका पुत्र है? अग्नि, रुद्र, महादेव इसके पिता हैं। कृतिका, मातृका, सवर्णा, स्वाहा, पृथ्वी इसकी माता हैं। किन्तु स्कन्द एक है। अच्छा है, यदि पुरुष सबका पुत्र है, स्त्री सबकी पुत्री है। पहले देवों में भी कोई इस कार्य के विषय को नहीं उठाता था। सुन्दरी, प्रजनन संभोग से होता है। संभोग किसी भी पुरुष या स्त्री में न्याय्य है। वीर्य-नाश अनुचित है। तुम जानती हो, देवसेना, मैं किसका पुत्र हूँ?"

देवसेना चुप खड़ी रही।

तारों की छाया में हठात् कुमार ने हँस कर कहा—"संसार की स्त्रियाँ आज देवसेना को कामचारिणी दिखाई देती हैं। अतः वह आज कामचारिणी नहीं बन सकती।"

देवसेना लाज से गड़ गई।

रात गहरी हो चली थी।

कुमार की भुजायें, उसने अनुभव किया, जितनी कठोर थीं, उतनी ही कोमल भी थीं। उसके लम्बे-लम्बे सुनहले केश समीरण पर झूमने लगे।

( ८ )

इन्द्र युद्ध के बाद अत्यन्त खिन्न रहने लगे। उनको कोई राह नहीं दिखाई देती थी। उधर महादानव नमुचि का आक्रमण होने लगा था। इन्द्र को उससे अंत में युद्ध करना पड़ा। नमुचि भाग खड़ा हुआ। किंतु इन्द्र को इसी से चैन नहीं आया। उन्होंने दूत भेज कर संधि-पत्र भेजा। वे अपने पराक्रम पर नितांत विश्वास करने को तत्पर नहीं थे। फिर भी महर्षि और देवों का एक वर्ग उन्हें चुपचाप उकसाता रहता। अतः उन्होंने सामंजस्य स्थापित करने के लिये संधि ही श्रेष्ठ समझी। उन्होंने

नमुचि को संवाद भेजा—'हे असुरश्रेष्ठ ! मैं शपथ करके कहता हूँ, कि रात को या दिन को, गीले या सूखे पदार्थ से तुम्हें नहीं मारूँगा।'

चारों ओर आनन्द छा गया। सबको प्रतीत हुआ, कि अब युद्ध सदा के लिए समाप्त होगये।

देवसेना का यौवन-कमल, सौभाग्य-किरण स्पर्श से पुलकित, होकर, खिलने लगा। वह कभी झरनों को देखती रहती, कभी कुमार स्वामी की अभ्यर्थना में खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा किया करती।

कार्त्तिकेय उसे खड़ी देख कर परम स्नेह से कहते—"अप्सरे, तुम सोई नहीं ?"

देवसेना प्रफुल्लित हो जाती। किन्तु युद्ध के कारण चिंतिति कार्त्ति-केय का सब समय उसका नहीं था। यह कभी-कभी उसके यौवन के के एकान्त कोने में कचोटने लगता। किन्तु उसके बाद ही एक भयानक संवाद फैल गया। इन्द्र ने कुछ महर्षियों के कहने से एक दिन जब न दिन था, न रात थी, कुहासा छा रहा था, जल के फेन से न जाने किसी प्रकार अपने नमुचि-जैसे प्रिय-मित्र का सिर काट डाला। चारों ओर ऐसा भयानक विक्षोभ फैल गया, कि इन्द्र को इस विश्वासघात के कारण कहीं मुँह दिखाना कठिन हो गया।

दूतों ने आकर बताया, कि वे अरुण नदी की ओर जाकर कहीं छिप गये हैं। कथा फैल रही थी, कि इन्द्र के कानों में निरन्तर उसके अंतिम शब्द गूंजा करते हैं—"पापी ! तूने मित्र की हत्या की ! धिक्कार है तुझे !"

सोमतीर्थ में चन्द्रदेव का यज्ञ समाप्त हो चला था। ठीक उसी समय अचानक तारकासुर की प्रबल सेना ने देवों पर भयानक आक्रमण किया। बलि का पुत्र बाणासुर पहाड़ों-ही-पहाड़ों में छिप कर क्रौञ्चपर्वत पहुँच गया, और वहाँ देवों से गुप्त दुर्ग छीन कर, उसने बीच में अवरोध खड़ा कर दिया। तैजसतीर्थ में भी, जहाँ पहले देवताओं ने

लोकपाल वरुण का राज्याभिषेक किया था, दैत्यों का प्रबल कोलाहल व्याप्त हो चला। सर्वभक्षी अग्नि की विकराल लपटों से वन जलने लगे। विशाल शालों में आग लग गई। दिन पर दिन परिस्थिति भीषण हो चली। कुछ महर्षि इन्द्र को खोजने के लिये अरुण नदी की ओर चल पड़े। महिषासुर की आठ पद्म सेना नष्ट हो चुकी थी। अब की बार त्रिपाद दानव हृदोदर दैत्य की सेना ने घेरा डाल दिया।

देवसेना ने देखा, सु ा, और न जाने क्यों वह एक बार काँप गई। किन्तु कुमार कार्त्तिकेय ने जब वीरवेश में आकर कहा, "सुन्दरी, युद्धभूमि में जाने की आज्ञा दो," तो देवसेना उस समय स्वयं रण-वेश में आकर सामने खड़ी हो गई थी, किन्तु अबकी बार कुमार उसे छोड़ गये। उन्होंने कहा—"तुम नहीं, देवसेना! अबकी बार युद्ध अत्यन्त विकराल रूप धारण कर उठेगा। शत्रु भीतर घुस आया है।"

देवसेना ने हठ नहीं किया। उसने गंभीरता से कहा—"मैं दैत्यसेना का वैधव्य चाहती हूँ।"

कुमार ने कहा—"और?"

"मैं असुरों के आभूषण चाहती हूँ!"

कुमार ने फिर कहा—"और?"

"मैं इन्द्र के लिये क्षमा चाहती हूँ। असुर फिर भी असुर ही था।"

"बस, सुन्दरी! और कुछ?"—कुमार ने हर्ष से पूछा।

देवसेना कुमार के वक्ष पर सिर रख कर, दीर्घ श्वास लेने लगी। उसने कुछ नहीं कहा।

तभी बाहर कुछ शब्द हुआ। दूत ने आज्ञा पाकर प्रवेश किया।

उसने सिर झुका कर कहा—"देवताओं के समझाने से महाबली इन्द्र लौट आये हैं। अब वे नमुचि के वध को हत्या और पाप नहीं समझते। सुना है, कि असुर इससे और भी अधिक क्रुद्ध हो उठे हैं।"

दूत चला गया। बाहर योद्धाओं के शस्त्रों की झंकार उठ रही थी।

कहीं कोई स्त्री भवन में कोई गीत गा रही थी, जिसमें एक स्त्री अपने पति को विदा दे रही थी। उसका करुण स्वर संध्या के आहत आलोक पर धीरे-धीरे सरकता हुआ, दीपधारों से टकराता हुआ बाहर निकलकर भाग रहा था।

कुमार की ऊँची, लम्बी नाक, उनका भव्य ललाट, जिस पर स्वर्ण किरीट चमक रहा था, उनके प्रचंड भुजदंड, आज देवसेना सबको आँख भर-भर कर देख रही थी। कुमार ने उसकी मूक अभिव्यक्ति को समझा।

बाहर अब शंख बजने लगे थे। भूतगण और किरातों के अद्भुत वाद्यों से तरह-तरह की ध्वनियाँ उठने लगी थीं।

पिंजरे में बैठा हुआ सुग्गा अचानक अपनी मोटी आवाज में कुछ कह उठा। द्वार तक आकर, एक मुर्ग अपनी कलँगी हिलाता हुआ लौट गया।

कुमार ने आग्रह होकर कहा—"देवसेना, मैं जाने की आज्ञा चाहता हूँ!"

देवसेना की आँखें भीग गईं। उसने कहा—"तुम समस्त भूलोक के स्वामी हो, तुम इन्द्र के सेनापति हो। फिर एक स्त्री से आज्ञा लेने आये हो, वह भी ऐसी निरीह स्त्री, जिसे साथ ले जाने में तुम समझते हो कि युद्ध में हानि होगी?"

कुमार हँस पड़े। उन्होंने कहा—"नहीं सुन्दरी।"

तभी बाहर से मातृगण, नागगण, दानवगण और अग्निष्वाता पुकार उठे—"असुरों की वाहिनी बढ़ी आ रही है, कुमार स्वामी! विलंब हो रहा है! देवसेना, तुम्हारा पति संसार का रक्षक है! तुम्हें भय नहीं होना चाहिये। निर्द्वन्द रहो। हमारे रहते तुम्हें कोई शंका करने की आवश्यकता नहीं है। हम स्वामी कुमार के अनुचर है!"

देवसेना को लगा, कि जैसे वह कोई आकाशवाणी हो।

इसी समय भीतर वेदिका पर किसी ने अग्नि में घी डाला, जिससे अग्नि धधक उठा। भीतों पर वह काँपता हुआ प्रकाश हिलने लगा। बाहर काले, मोटे होंठ वाले अथवा छोटी जाँघ वाले, अनेक प्रकार की खालें ओढ़े हुए, परस्पर भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं में बातें करते हुए सैनिकों का स्वर सुनाई दिया। वे सब महागण प्रसन्नता पूर्वक उस स्थान पर आ-आ कर जमा हो रहे थे।

रणप्रिय, महावेगशाली, महाबली, महापारिषदों के समूह कुमार की प्रतीक्षा में बाहर से ही जय जयकार से भूमि और आकाश को प्रतिध्वनित करने लगे।

कुमार ने पूछा—"देवसेना, तुम डरती हो?"

उसने दृढ़ स्वर में कहा..."नहीं!"

"फिर?" कुमार को विस्मय हुआ।

देवसेना भीतर चली गई। उसने वातायन से देखा, स्तंभ की आड़ में कोई आसव पिये हुये पिशाच किसी कृत्तिका से यौवन की भीख माँग था, और वह चुपचाप उसके हिस्से का माँस खाती चली जा रही थी। देवसेना को अच्छा लगा। उसने देखा, धनञ्जय की सेना भी आ चुकी थी।

देवसेना ने जाकर कुमार के गले में विष्णु की दी हुई वैजयन्ती माला डाल कर, झुक कर प्रणाम किया। कुमार ने उसे विजय के गर्व से उठाकर, अपने वक्ष से लगा लिया, और कहा—"मैं तुम्हारे पास अप्सुजाता, उत्तेजनी, शतोलूखलमेखला, शतानन्दा, समेडी, जलेला, धमधमा, खण्ड-खण्डा, अगदा, इनमें से किसी मातृका को भेजकर, तुम्हें युद्ध का संवाद देने को आज्ञा देता रहूँगा। यदि समय व्यतीत करने में कठिनाई अनुभव हो, तो मुझे सूचना देना। मैं जलन्धम, हसन, नाख, जाठर, गध्रपत्र, जम्बुक, कज्जल, इनमें से किसी पार्षद को भेज दूँगा। तुम उसी के साथ आ जाना। ब्रह्मा के आशीर्वाद से सब कुशल होगा

डरने का कोई कारण नहीं है। प्रजापति दक्ष की पुत्री, स्वयं इन्द्र की बहिन, अग्निवंश के समान तेजस्वी, जिससे समस्त संसार आलोकित रहा है।

देवसेना एक दम ही व्याकुल, होकर, फफक उठी। उसने अवरुद्ध कंठ से कहा—"कितना अच्छा होता, यदि मैं भी पुरुष होती!"

कुमार उसके बालों पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कह उठा—"तब क्या तुम मेरी प्रिया हो पाती?"

कितना सरल उपहास था। देवसेना हँस दी।

कुमार ने पुकार कर कहा—"युद्ध के लिये प्रस्थान करो!"

और देखते-देखते अपार वाहिनी की पग-ध्वनि धीरे-धीरे पार्वत्य प्रदेश में लय हो गई।

देवसेना अपना दीपक जलाकर, सांध्यवेला में गाया करती। वह कुमार की पत्नी थी, अतः अनेक स्त्रियाँ उसकी सेवा में आया करतीं, किन्तु वह किसी बात में अधिक ध्यान न देती। उसने एक अनुचरी से कहा—"क्यों, री, इस पर्वत पर मयूर होते हैं?"

"क्यों नहीं, देवी? जितने कहें, लाऊँ।"

और देवसेना फिर मयूरों से खेलने लगी। एक उसे अत्यंत प्रिय था। उसने उसका नाम स्वामीवाहन रख दिया। दिन होता, रात होती। देवसेना चुपचाप सुना करती—आज कुमार ने त्रिपाद का संहार कर दिया। आज कुमार ने ह्रदोदर को घेर कर मार डाला। उनके प्रहारों से सहस्रों दैत्य और असुरों का नाश हो रहा है। उनकी प्रचंड हुँकारों से दैत्य-सेना में भगदड़ मच गई है। जब विचित्र आभूषण, कवच धारण किये, सिंह की तरह गरज कर,उनकी भयानक सेना त्रिशूल, मुद्‌गर, जलती लकड़ी,गदा, मूसल, शक्ति, तोमर आदि लेकर बढ़ती है, तब स्कन्द सबके आगे गरजते हुए बढ़ते हैं। उनके अस्त्रों से पृथ्वीतल गूँज उठता है। वे युद्ध करते हुए ऐसे शोभित होते हैं, जैसे अग्नि में

घी डाले जाने पर उठती हुई शिखायें। उन्होंने अत्यंत पराक्रम से तारकासुर को टुकडे-टुकड़े करके आकाश में फेंक दिया।

इसके बाद और भी लोमहर्षक संवाद आने लगे। क्रौञ्च पर्वत पर दानवों ने अपनी शक्ति से उत्पात मचा दिया था। उधर कुमार आक्रमण कर रहे थे। कई दिन युद्ध होता रहा। दोनों ओर के महावीर मरते रहे। परन्तु अन्त में दानवों का भोजन दुर्ग में समाप्त हो चला। कुमार के पारिषदों ने आग लगा लगा कर, खोद-खोद, पर्वत को फोड़ दिया, और दुर्ग की ओर बढ़ने लगे।

देवसेना सुनती। कभी हर्ष से पुलक उठती, कभी भयानक वृतान्त सुनकर काँप उठती।

संवाद फिर आया, दैत्यों ने अवरोध पर अनेक बार प्रबल भीषण अभियान किये। हजारों दैत्यों, दानवों से पर्वत छा गया। भीषणतम युद्ध हो रहा।

देवसेना सुन कर सिहर उठी। उसने अकेले में जाकर देखा, मयूर पुच्छ खोल कर नृत्य कर रहा था। रात को देखा, चकवा-चकवी करुण क्रंदन कर रहे थे। प्रभात की मनोरम बेला में उसने भूतगणों के प्राचीन भगवान को सिर झुका कर प्रणाम किया।

आज सचमुच देव-जाति झुक गई। देवसेना बैठी रही।

( ६ )

युद्ध समाप्त हो गया। कुमार विजयी होकर लौट आये। दिगंत में उनकी धवल कीर्त्ति व्याप्त हो गई। जब वे भवन में घुसे, तो उन्होंने देखा कि देवसेना शृंगारहीन बैठी है। उन्होंने विस्मय से कहा—"देव सेना, इन्द्र को क्षमा मिल गई!"

देवसेना ने उठ कर स्वागत किया।

कुमार ने फिर कहा—"दासियाँ राक्षसों पर असुरों तथा दानवों के आभूषण लदवा कर ला रही हैं।"

देवसेना ने जैसे नहीं सुना। उसने धीरे से कहा—"सेनापति, कुशल से तो हैं!"

कुमार ने अबकी दृढ़ता से कहा—"देवसेना, दैत्यसेना को अबके मैं विधवा बना हूँ। लालो मेरा पुरस्कार!"

देवसेना भीतर गई। लौट कर बोली—"हठीला कहीं खेल रहा है।"

कुमार ने अत्यंत आश्चर्य से पूछा—"कौन?"

उसने वैसे ही कहा—"मेरा मयूर!"

कुमार ने उसे भुजाओं में बाँध लिया, और आँखों में झाँक कर देखा। वह आनन्द से पागल हो रही थी, विभोर हो रही थी।

कुमार के स्पर्श से जैसे उसकी चेतना लौट आई। उसने चौंककर कहा—"कौन!···स्वामी!"

कुमार ने उसके खुले बालों में अपना मुँह छिपा लिया।

कुमार स्कन्द के जाने पर भी बहुत दिन तक असुर स्त्रियाँ अपने बच्चों को कार्त्तिकेय के नाम से डराती रहीं।

इन्द्र फिर अपने स्थान पर आ गये। विलास फिर उसी तरह होने लगा। देवों में पहले से भी अधिक दम्भ आ गया। परन्तु महादेव के प्रति उनमें उतना विद्वेष नहीं रहा। धीरे-धीरे इन्द्र और शिव के भयानक रूप की समता एक-सी बताई जाने लगी। वयोवृद्ध अंगिरा और भृगु के वंश मिल गये।

कभी-कभी स्वाहा अग्नि से कह उठती—"कैसा है वह मेरा पुत्र!···देवसेना का जीवन सफल हो गया!"

और यदि कोई पूछता, "कहाँ है कार्त्तिकेय, तो वह तुरन्त सरलता से उत्तर दे बैठती, "वहाँ पर्वत पर मयूरों से खेलता है एकान्त में!"

सुनने वाले उसकी मातृ ममता को देख हँस पड़ते। और फिर यज्ञशालाओं में महर्षियों की गम्भीर मंत्रध्वनि-गूँजने लगती।

# इन्सान पैदा हुआ

इन्सान पैदा हुआ

घर की हाय हाय बनी रही। इधर बहिन के सिर का दर्द अपनी हदें पार कर रहा है उधर सालाजान की चखचख का कोई अंत नहीं। खुदा जाने बुढ़ियों के दिमाग को क्यों रेत देता है जो उसमें ऐसी चिकनाहट छा जाती है कि फिर उस पर कोई बात ही नहीं चढ़ती।

चचा मियाँ दाढ़ी पर हाथ फिराते। वह दाढ़ी परंपरा के इतिहास सी आगे लटका करती जिसके बाल करीने से कढ़े होते। सिर पर कसी टोपी लगाते और जब अपने भारी चेहरे को उठाकर आँखें गड़ा देते तब लगता वे उस चीज को नजरों से खींच लेंगे।

पड़ोस के खान बहादुर जो कल तक कट्टर मुस्लिम लीगी थे, जिनके असर से कितने ही मुसलमान जिहाद करने को तैयार थे, वे आज नई सरकार के निहायत वफादार बने और अपने द्वार पर बहुत बड़ा तिरंगा लटकाये कांग्रेस वालों के पीछे-पीछे लगे डोलते थे। उनकी गाड़ियाँ आज देश के काम में आ रही थीं। १५ अगस्त को आधीरात को अचानक ऐसा हृदय-परिवर्तन हुआ कि भौं का तनाव होठों पर मुस्काहट बनकर छा गया।

हर तरह से कोशिश करके भी मोहसिन का हृदय उन पर अविश्वास ही करता। वह उन्हें केवल तोताचश्म समझता। खान बहादुर हुकूमत के वफादार थे। वे अगर यहाँ जापानी राज हो जाता तो उसके सामने भी सिर झुका देते। मोहसिन का जी उचाट खाने लगता। सिद्धान्तों के पीछे चला जाये या पुलिस और फौज के जोर के पीछे। राज्य क्या

है ? उनकी तो बपौती निस्संदेह नहीं है जो गद्दियों पर बैठे रहते हैं।

वह सोचता। फिर चुस्त मोहरी का पाजामा तथा लम्बा कुर्ता और जवाहर वास्कट पहन कर जब वह अपनी नई डिजाइन की चप्पलों में पाँव घुमाता, तब वह यदि अच्छा नहीं लगता तो उसे बुरा भी कोई नहीं कह सकता था। घर की जिन्दगी और थी, बाहर की और। एक में उस डाक्टर की परेशानी थी जिसे घर वालों का इलाज करना पड़ता, दूसरी में बाहर वालों को चाहे जो दवा बता दो।

मुहल्ले के इतने आदमी पाकिस्तान चले गए थे। उन घरों में कमरे भी खाली नहीं रहे थे। कई में तो हिन्दू मुहल्लों से भागे हुए मुसलमान आ टिके थे, और कई में पंजाबी और सिंधी शरणार्थी आ घुसे थे, जिनको देखकर दूर से पहिचानना कठिन था कि वे हिंदू हैं या मुसलमान क्योंकि उनका रहन सहन हिन्दुओं से काफी भिन्न हो चुका था।

और फिर दंगे, मुसलमानों की गरीबी, कट्टरता, बेवकूफी, हुकूमत करने का अहंकार जो हिन्दुओं की छुआछूत, अंग्रेजों के प्यादे की राह से घड़े के बाहर तक उफन आया था, सब कुछ एक एक करके मोहसिन की आँखों से गुजर गया था। एक दिन वह था जब वह शायरी में लगा रहता था। हुस्न के रंगीन सपनों में ऐसे झूलता था जैसे किसी परी के मुलायम शरीर पर उसकी हथेली।

और चचा-मियाँ तभी दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहते। बेटे—एक जमाना था...

मोहसिन देखता। मनुष्य की आत्मा किसी अचेतन में आहत-सी तड़प रही है। क्या याद दिलाना चाहते हैं चचा मियाँ ? ताजमहल या किला, अकबर या ईरान ? क्या इनमें से किसी की भी याद से आज कोई फायदा है ? किन्तु अपनी संस्कृति का मोह उसके मन को चारों ओर से बाँध कर कसने लगता। शाही हरम की स्त्रियाँ उसकी आँखों के

सामने से गुजरतीं या फिर वह धूल उड़ाती भयानक फौजों की ललकारें सुनता और काँप उठता। भाग्य का चक्र कितना भयानक है! लेकिन क्या वह साम्राज्य आज तक के साम्राज्यों से कुछ अच्छा था···।

और वह दुःख भरी कहानी मुहल्ले के उन पुराने पर्दा वाले घरों में अब घुसने से इनकार करने लगती, क्योंकि वहाँ अब वह सब नहीं रहा था। अब वहाँ एक खौफ छाया हुआ था और अपने कसूरों की छाया में वह सब बहुत भयानक दिखाई देता था। उसके गौरव को नष्ट हुए डेढ़ सौ साल हो चुके थे, लेकिन अंग्रेजों ने उसकी चकमक और झिल-मिल फैलाए रखी, उन्हें कुल्हाड़ी की बेंट की जगह लगा कर जड़ें काट देने की कोशिश की। आज सभी अविश्वास और भय, मुफलिसी और मायूसी चारों तरफ से काटने को दौड़ती है।

उस वक्त बूढ़े फकीर की सदा घहरती और फिर संसार की क्षणभंगुता की याद दिलाती हुई काँपने लगती थी। वह अन्धा फकीर अल्लाह के नाम पर दर दर हाथ पसारता हुआ अदनी जिंदगी की कीमत गा गाकर उगाहता और फिर किसी गलीज दूकान की छाया में बैठ कर माँगी हुई दो रोटियाँ खाता और वहीं कुत्ते की बगल में सो जाता। पास में जो चने की रोटी खाने वाले हिन्दू-मुसलमान पल्लेदार बैठे रहते और कोई लड़का अपनी डलिया में ही साँप की तरह गोल होकर सो रहता।

—२—

पुरखों की जिन्दगी में कितनी भी आन और शान रही हो, अब उसका अभिमान भी नहीं रहा। मोहसिन एक कारखाने में नौकर था और अपनी सारी तनख्वाह जब घर ले आकर दे देता, तो चचा और उसकी आमदनी मिल कर किसी तरह मँहगाई की बाढ़ रोकने को मेंड लगाती, जिससे घर के ये निरीह पौधों से प्राणी मौत के पानी में गोते खाने से बचे रहते।

शाम को जब हमीद होटल में बैठता और खान बहादुर के द्वार पर

भिखारियों का जमघट लगता तब मोहसिन का मन भारी हो जाता, गंदे, मैले, कुचैले, अर्ध नग्न भिखारी कुत्तों की तरह आँखें उठाए खड़े रहते और वैसे वे सभी मुसलमान थे।

बगदाद की वह कहानी याद आने लगती जिसमें ऐसे ही एक हसीन औरत के पीछे पागल एक सुन्दर युवक बैठा बैठा गाता था और एक दिन वह बढ़ते बढ़ते वजीर बन गया और उस लड़की को उसने बुलवा भेजा, जिस पर लड़की ने उसमें घमंड की बू देख खुदकुशी कर ली।

पर वह सब अब कहाँ ? भिखारी शोर मचा रहे हैं। खान बहादुर का इस मामले में दबदबा था। सब जानते थे। खैरात में, ताजियों में, रोजे-नमाज में इस कदर पाबन्द थे कि लोग उन्हें धर्म की साक्षात मूर्ति समझते।

चाय की चाईयत का मजा लेते वक्त किसी ने पीछे से कंधे पर हाथ रखकर धीरे से दबाया।

मोहसिन चौंक उठा। पलट कर देखा तो आसानी से पहँचान नहीं सका। मैले कपड़े, घुटनों पर कुब्बड़ निकला पाजामा, दाढ़ी कुछ कुछ बढ़ी हुई और चेहरे पर एक अपरिचय का भाव; किंतु गौर से देखने पर वह मुस्कराता मुँह पहचान लेना कठिन नहीं लगा।

'अरे तुम !' उसने चौंक कर पूछा।

'हाँ' उसने धीरे से कहा, 'पुलिस, मेरा पीछा कर रही है।'

मोहसिन अवाक्-सा देखता रहा। यह क्या हुआ ? और हजरत खुले आम कंधे पर हाथ रखे खड़े हैं। आजिज आये भाई इस दोस्ती से कि आप तो माशा-अल्लाह चक्की पीसेंगे ही, यारों से भी पिसवा के मानेंगे। पर इतना साहस नहीं हुआ कि उसका हाथ झिटक दे और उससे पूछे कि तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?

मोहसिन काँप उठा, अगर किसी ने उसके साथ उसे देख लिया

दो ! सीधे जेल में वैसे ही पहुँचा दिए जाँयगे जैसे बेटिकट का लिफाफा मुर्दा डाकघर में।

'चाय पीलो', आगंतुक ने कहा—'जल्दी करो। मेरे साथ जरा उधर निकल चल, तुमसे कुछ बातें करनी है। यहाँ ठीक नहीं है।'

रेडियो का बजना फायदेमन्द साबित हुआ क्योंकि आवाज उससे फैली नहीं, नुकीली सींक की तरह कानों का पर्दा फाड़ती हुई भीतर घुस गई। मोहसिन पर एक आवेश-सा छा गया। उसने जल्दी जल्दी चाय पीकर पैसे चुकाये और उसकी ओर बढ़ आया, किन्तु उस समय वह उसे नहीं दिखा। बाहर आकर एक आराम की साँस ली और पान वाले के यहाँ से लेकर एक सिगरेट सुलगाई, तभी वह व्यक्ति फिर अंधेरे में से निकल कर सामने आ गया। मोहसिन की आत्मा ने अबकी बार उसे निर्विकार रह कर स्वीकार कर लिया।

अब वे चलने लगे। आगंतुक कहता रहा, वह छिपा हुआ है, मजदूर बस्ती में अब उसके लिए कुछ दिन रहना कठिन है, क्योंकि मजदूरों पर भयानक दमन किया जा रहा है। औरतों और बच्चों को पुलिस पीटती है कि उन राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं का पता बताए, जो पूंजीवादी संस्था के विरुद्ध हैं।

राह में हिंदू बाजार पड़ा, निकल गया। वह कहता रहा, जब कोई नहीं बताता तो हवा में गोली चलाकर दहशत पैदा करते हैं। मोहसिन सुनता रहा, खामोश। क्या यह ठीक था ?

तवायफों का बाजार आया, गुजर गया, वह कहता ही रहा, औरतों की बेइज्जती करते हैं, जबर्दस्ती, मजदूरों को पूँजीवादी स्वार्थों की रक्षक राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन में भर्ती किया जा रहा है...।

और जब वे उस छोटे से दाबे के सामने पहुँचे वह आदमी कह उठा कुछ पैसे हों तो, मेरे लिए कुछ रोटियां ले लो। मैं अंधेरे में हो जाता हूं।

मोहसिन ने देखा, वह चेहरे से भूला लगता था। ढाबे के सामने कुछ लोग पहले से मौजूद थे। वह वहीं जा खड़ा हुआ। सामने पंजाबी रोटियाँ गिनगिन कर बेच रहा था।

मोहसिन के कंधे पर एक मोटा हाथ टिक गया। उसने मुड़कर देखा तो एक नितांत अपरिचित व्यक्ति को पाया। मोहसिन ने तीव्र स्वर में कहा—'ऐ भाईजान, आपका कंधा वह है, यह तो इस गरीब का है।'

किन्तु वह नया आदमी तनिक भी विचलित नहीं हुआ। न उसने हाथ ही हटाया। वह केवल व्यंग से मुस्कराया। उसकी बेगानी सी आँखें चमकने लगीं। मोहसिन को गुस्सा-सा आने लगा। किन्तु तभी उसने देखा उसकी दोनों ओर दो लाल पगड़ी वाले सिपाही आ खड़े हुए थे। दूकान पर बहुत से लोग चौंक कर उसे घूर रहे थे।

एक व्यक्ति ने बढ़ कर पूछा भी—'क्या बात है, दारोगा जी?'

किन्तु वह व्यक्ति कुछ नहीं बोला। एक सिपाही ने धीरे से मोहसिन से कहा—'आपको कोतवाली चलना होगा।'

'कोतवाली? मैं?' मोहसिन ने चौंक कर कहा—'वजह? मतलब? आपका मकसद?'

किन्तु सारे प्रश्न व्यर्थ हो गए। अपरिचित व्यक्ति आगे आगे चलने लगा था। पीछे से सिपाही घेरे खड़े थे। मोहसिन बाजार में सबकी आँखों का तारा बना सिर झुकाए बढ़ चला।

—२—

कोतवाल के सामने बैठे हुए मोहसिन के चेहरे पर एक अद्भुत दृढ़ता थी। वह फोन करके कुछ तलाश कर रहा था।

सड़क का शोर भीतर आ रहा था। शायद सिनेमा का शो समाप्त हो गया है, तभी इतना कोलाहल सुनाई दे रहा है। बाहर सिपाही संगीनें लिए पहरा दे रहे हैं। दो चार घुड़सवार भी घूम रहे हैं, जिनके सीने निकले हुए हैं और चेहरे पर एक बर्बरता है जो दिल में दहशत बढ़ाती है

जैसे यह लोग मनुष्य नहीं हैं, नितांत लोहे के हैं, या पशु हैं, जो आसानी से हत्या कर सकते हैं।

और अन्त में कोतवाल ने कहा—'आप जा सकते हैं।'

उस छोटे से वाक्य में जो आज्ञा का भाव था वह मोहसिन को अच्छा नहीं लगा। जब मोहसिन बाहर निकला उसका मन यदि एक ओर भीतर ही भीतर प्रसन्न था कि जान बची लाखों पाए, दूसरी ओर उसे भयानक विक्षोभ था कि वह नितांत निरीह था, उसका कोई महत्व नहीं था।

छोटी गली पार करते ही मोहसिन ने देखा नीलचंद अँधेरे में से फिर निकल आया।

'अमां क्या इरादे हैं?' मोहसिन ने घबरा कर पूछा। 'अभी अभी छूट कर आ रहा हूँ।'

'क्यों क्या, बात क्या हुई?' नीलचंद ने अपने सिर पर सफेद खादी की टोपी लगाते हुए कहा। इस परिवर्तन पर मोहसिन को आनन्द हुआ। स्वाभाविक ही वह हँसा। वह सुनाने लगा—'पकड़ा था कि तुम नीलचंद हो।' इन्सपेक्टर ने पूछा—'आप नीलचंद हैं?' मैंने कहा—'आप बेवकूफ हैं।' उसने मुझसे तीन बार पूछा, मैंने तीनों बार यही जवाब दिया। तब मुझे कोतवाल के सामने पेश किया गया।'

'फिर क्या हुआ?' नीलचंद ने उत्सुकता से पूछा—जैसे वह किसी फौज का कमान्डर था।

'फिर पूछ-ताछ कर छोड़ दिया' मोहसिन ने कहा।

नीलचन्द की तीखी आवाज सुनाई दी, 'हम लोगों की अगर किसी से शक्ल भी मिलती है, कपड़े भी मिलते हैं तो उसे पुलिस तंग करती है। पर वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वाले जो छोड़े जा रहे हैं उन्हें बक दिया जा रहा है और वे अपने क्लब बनाकर फिर वही जहरीला प्रचार कर रहे हैं। वह सब लोग कांग्रेस के सेवा दल और जाने क्या, क्या हैं,

उनमें घुसने की कोशिश कर रहे हैं। गांधी जी की हत्या के बाद फिर भी इनका दमन नहीं हुआ। उन पर प्रजातंत्र लागू है!'

'तो क्या हम फिर खतरे में हैं?' मोहसिन ने घबरा कर पूछा।

'पूँजीपति की दुरंगी चाल है। रुपये की मार दुधारी होती है बाबू। जैसे-जैसे वर्ग-संघर्ष बढ़ता है, पूँजीपति घबराता है। उसके पास जनता के आंदोलन को पीछे ठेलने के लिए दंगे से बढ़कर कुछ नहीं। लेकिन अबकी बार शायद यह नहीं...

और नीलचंद उसे छोड़कर भाग गया था। मोहसिन ने चौंककर देखा, वह बिना वाक्य पूरा किए ही अंधकार में खो गया था। कारण कुछ भी समझ में नहीं आया। यह भी कोई जिन्दगी है। ऐसे भागा-भागा फिरता है जैसे कोई पागल कुत्ता हो।

वह अंधेरे में आगे बढ़ने लगा। छोटी गली में से दाएँ बाँए अनेक गलियाँ निकल गई हैं। इन दमघोट गलियों में दरवाजों पर टाट पड़े रहते हैं। अन्दर गलीज़ बदबू उड़ती है। यहाँ भी इन्सान रहते हैं, घिसे से, पिसे हुए। अपनी मजबूरियों में ही अपनी खुशी हासिल करने की चेष्टा होती है।

जिन्दगी। कोई जेब काटने को फन कहता है, कोई औरत को बेइज्जत करने में लुत्फ और मर्दानगी समझता है। और वे प्यासी औरतें जो बुर्कों में चूहों की तरह ढांक कर पाली गई हैं, अन्धेरे में मौका लगते ही सांप की तरह फुफकारती हुई निकलती हैं और जवानी का ज्वार आवारों के सीनों पर खोने लगती हैं, जैसे साबुन के बुल बुले...।

दिल दब गया है। कितने आदमी छोटी छोटी खाटों पर मैले मैले कपड़े बिछाए दिन भर की मेहनत से चूर सो रहे हैं। मकान के छज्जों पर, सड़क के पक्के पत्थरों पर, मुंडेरों पर, लावारिस से इतने करीब, जहाँ एक दूसरे की लम्बी लम्बी सांस तीसरा आदमी सुन सकता है, बोलियाँ खाचना, यही इनका पेशा है। मोहसिन का मन उदास हो

रहा है। कहाँ है चैन ? क्यों है आदमी को इतना दुःख। किस तरह यह स्वीकार किया जाय कि यह हँसते हैं, क्योंकि उन्हें जीवन में सुख मिला है।

चारों तरफ अंधेरा है और एक हल्की आवाज आ रही है—'अभी नहीं, अभी सड़क चल रही है, कोई देख लेगा...।'

'अरी सड़क तो रात भर चला करेगी। जिन्दगी गुजर जायगी।'

—४—

जिस वक्त वह घर पहुँचा चचा-मियाँ बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे।

चारपाई पर, उनके बैठने में, जो एक शाही ठाठ था, वह आज कल दिखाई देना जरा कठिन काम था। मोहसिन को देख कर चचा-मियाँ कुछ फड़के। किताब के पन्ने जल्दी-जल्दी पलटने की सी आवाज हुई। मोहसिन ने देखा चचा-मियाँ मन ही मन हँस रहे थे जो कुछ सीमा तक यहाँ तन मन का एकाकार होता-सा लग रहा था। वे आवेश में मोहसिन से कहने लगे :—'बताओ भी, अरे भाई तुमने सुना अंधी पीसे कूकर खाय। आदमी यहाँ एक रुपये को खरीदता है, दस कदम चल कर दो को बेच देता है। क्या समझे तुम तो पढ़े लिखे आदमी हो, कुछ बताओ, क्या खबर है ? अब तो लगता है कि चाँद जमीन पर उतर आयेगा।'

मोहसिन हँसा। चचा-मियाँ की बात एक इक्के का टट्टू है। चाहे जिधर चल दे। कभी अड़ गया तो फिर अड़ा का अड़ा रह गया। ऐसी बात करते हैं जिसका कोई सिर नहीं, पैर नहीं और अगर उनकी बात पर ध्यान न दिया जाय तो फौरन खफा हो जाते हैं।

'सो तो है ही।' मोहसिन ने कहा और उड़ती नजरों के चचा-मियाँ को देखा। फिर नीलचंद की बातें याद आने लगीं। बात की बात में कह गया—'फिर दंगे की अफवाहें सुनाई दे रही हैं।'

'लाहौलबिला कूवत', चचा-मिया ने कहा—'यार तुम्हें ख्वाब में

भी खोखड़े नजर आते हैं ?' उन्हें विश्वास नहीं हुआ । कल्पना ही इतनी भयानक थी कि सोचते ही रूह काँपती थी ।

'क्यों ?' चचा-मियाँ ने कहा—'अब के किसके सिर पर भूत उतरा है ।' उस आवाज में एक दहशत थी । मोहसिन ने सुना और वह स्वयं काँप उठा । उनका मन भारी हो गया । उसने कहा—'तब पाकिस्तान की रट थी अब मिल गया है तो लाऊ लोगों की बन बैठी है । यहाँ वाले भाग कर लौट रहे हैं, और हाय हाय मच रही है । वहाँ भुलावा देने को मजहब की आड़ ली जा रही है, वही यहाँ हो रहा है ।'

चचा-मियाँ का मुँह खुला का खुला रह गया । लड़का क्या कह रहा है ? और मोहसिन जब पलँग पर जाकर लेटा तरह-तरह के ख्याल दिमाग में आने लगे । सुबह फिर हड़ताल में जाना है । अच्छी परेशानी है । वह अगर मजदूरों से मिलता है तो कल ही नौकरी से निकाला जाता है और खिलाफ वह जाना नहीं चाहता । पर रोटी का भी तो सवाल है । न जायगा तो कल ही दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया जायगा ।

हड़ताल जोरों पर है । हिन्दू और मुसलमान का मजदूरों में फर्क क्यों मिट रहा है ? मुसलमान मजदूरों ने पूछा है कि अगर तुम मुसलमान हो तो हमारी तनख्वाह में कटौती क्यों करते हो ? उस वक्त इस्लाम कहाँ चला जाता है जब हिन्दू पुलिस बुलाकर अपने माल बंदूकों से हिफाजत करवाते हो ?

वह सोचते-सोचते सो गया क्योंकि पड़ोस में कहीं ग्रामोफोन बज रहा था । जवानी के उबलते गीत और फिर गली की बातचीत, सबने दिमाग में एक कीड़ा पैदा किया जो काफी शैतान था । उसके पंजे उसके सिर में गड़ने लगे । आधे नशे सी शरीर की अतृप्ति स्वप्न बन कर उपचेतन पर खेलने लगी ।

—५—

सुबह उठकर उसने बिस्तर पर ही बैठे-बैठे एक बीड़ी सुलगाई और मनही मन हँसा। क्या वक्त है! अलस्सुबह हजरत बीड़ी पी रहे हैं। यह काम वह लोग करते हैं जिन्हें वह पहले नीचे तबके का कहा करता था। प्रभात की शीतल वायु चल रही थी। सुखद, शांत। हरियाली दूर तक नहीं दिखाई देती। सामने ही टीन दिखाई दे रही है और फिर घर-घर घर बहुत से घर...

अचानक रोने का स्वर सुनाई दिया। बहिन और खाला की आवाज थी। वह चौंक कर सुनने लगा। हाँ यह उसी के घर में था। उसका हृदय धड़क उठा। दौड़ कर नीचे आया। देखा, काटो तो लहू नहीं। यह क्या! उसने अचरज से चारों ओर देखा। किन्तु कहीं भी सांत्वना नहीं मिली।

चचा-मियाँ सिर पकड़े बैठे थे जैसे उनके खान्दान की पुरानी इज्जत धूल में मिल गई थी।

'आप ही का नाम मोहसिन है!' एक व्यक्ति ने पूछा।

'जी हाँ', मोहसिन ने अचकचा कर जवाब दिया। 'कहिये! मुझसे कोई काम है।'

पुलिस तलाशी लेने लगी।

'मैं आपको बता सकता हूँ!' उसी व्यक्ति ने कहा—'आप के बारे में कहा गया है कि आप मजदूरों के पर्चे बाँटते हैं, हथियार रखते हैं, क्योंकि लीगी हैं।

'लाहौलबिलाकूवत', मोहसिन ने तेज होकर कहा—'यह किस बेवकूफ ने उड़ा दिया!'

बहिन ने झाँक कर देखा कि तमंचे की तरह एक सिपाही की आँख ने मुड़कर आनन फानन ही निशाना लगा कर गोली दाग दी। मुँह अंदर छिप गया।

मोहसिन ने सिपाही की गर्दन पकड़ ली और फूत्कार किया—'कमीने !'

पुलिस वाला घबरा गया। उसने गर्दन छुड़ाकर कहा—'क्या है ? सरकारी काम में दखल डालते हो ? जानते नहीं हम कौन हैं ?'

जब वे चले गए चचा खोंखियोंने लगे, 'वाह मियाँ वाह ! तुमने रही-सही कसर पूरी कर दी। जो सात पुश्तों से न हुआ था, वह आज तुम्हारे निजाम में पूरा हुआ। पर मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। कहाँ के हथियार और कहाँ की लीग ? करने वाले तो बेदाग छूटे हुए हैं ? भला क्या खानबहादुर के यहाँ कोई क्यों नहीं जाता ? उनके यहाँ तो अब भी दर्जनों बल्लम रखे हैं...।'

और मोहसिन को लगा चचा का हृदय फट रहा है। बेबसी में वे कभी कभी कराह से उठते और अपने गौरव को ठोकर पर ठोकर खाते देख कर वह चिल्लाए—'क्या लीग फीग तो बहाना है समझे ! खबरदार जो आयंदा उन पर्चे वालों से रस्म बढ़ाई, मैं नहीं रहूँगा यहाँ। समझे ?' अब वह बहुत ज्यादा समझाने पर उतर आये थे। मोहसिन को लगा मेहतर बिरहमन के सामने सिर उठाये थे, मजदूर सरमायेदार के सामने सिर उठा रहे थे, किसान जमींदार से बगावत कर रहा था, हिन्दू मुसलमान का ख्वाब तोड़ रहे थे, मुसलमान हिन्दू साम्राज्य को फोड़ रहे थे, लेकिन साहब लोग "सबका भला" मनाना चाहते थे, वह मरकर भूत की तरह रहना चाहते थे, ताकि घर वाले घर का धन न निकाल सकें, उस भूत को खून की कुर्बानी देते रहें।

हुकूमत खत्म हो रही है। चारों तरफ हलचल मच रही है। कान फटे जा रहे हैं...।

और मजहब का जहर फैलता जाता है, संकुचित होता है, यह आग है जो कभी लपकती है कभी राख में दब जाती है...।

यह फर्क उनके हैं जिन्हें इनसे फायदे हैं, यह फर्क उनमें सिर्फ जहालत बन कर पलते हैं, जिन्हें इनसे नुकसान है...

मोहसिन के सिर में दर्द सा होने लगा। भावों की कड़वाहट और निराशा उसके मस्तिष्क पर बिच्छू की तरह डंक मारने लगी, वह उनके जहर से तिलमिलाने लगा...।

यह हड़ताल तोड़ने के तरीके हैं और फिर नीलचंद की बातें कानों में चुभने लगीं, एक हामला औरत का हमल गिर गया, लाठी चार्ज मामूली न था...अफवाह थी कि पुलिस वालों ने एक मजदूरनी से जिना किया था। पता नहीं कहाँ तक ठीक था लेकिन डराया जरूर गया था...कल हर जगह होगा...।

उसे लगा वह एक दलदल में फँस गया था। कहीं जाने का रास्ता नहीं था। तब उसे लगा वह एक अधिकारहीन व्यक्ति था। उसके पास अपनी मेहनत के सिवाय और कुछ न था। वह सब कुछ हारा हुआ था, गरीब। उसे लगा, आज एक इन्सान पैदा हुआ था...जो सिर्फ इन्सान था...।

# चकाबू का किला

रात हो गई। महल की भव्य छाया में अनगिनत दीपक जल उठे। उनकी लौ अँधेरे से लड़ने लगी। गुलाम लड़कियों ने उन पर शीशे के ढक्कनों को लगा दिया। उनके हाथ उठते ही फूले-फूले वक्षस्थल दीखने लगे और हाथों में बँधे सोने के गहने बजने लगे, जिससे महल में घूमती हुई लोहबान से सुगन्धित वायु झंकृत हो उठी। चारों ओर नृत्य करती हुई कामिनियों के नूपुरों का रव मुखरित हो उठा। उनकी सुडौल मांसल जंघाएँ रेशम के झलमल लँहगों में से चमकने लगीं। यौवन के उस उन्मत्त मादक विलास में युवतियों के नयन अनेक दीपकों की भाँति जगमग करने लगे और वे कामातुर-सी बादशाह के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

इसी समय दो अर्द्धनग्ना युवतियों के कन्धों पर हाथ रखे बादशाह ने धीरे-धीरे प्रवेश किया। भूमि उनके जल्दी-जल्दी पग-विक्षेप से प्रताड़ित होकर गूँज उठी और बादशाह के मदिरा के प्यालों की तरह छायाओं से आक्रांत होकर काँपने लगी।

दासी ने मदिरा का प्याला भर दिया। अपनी शैया पर कुहनी के बल लेटे हुए बादशाह ने आज व्यथित स्वर से कहा—यह नाच बन्द कर दो।

नृत्य बन्द हो गया। स्त्रियों के उठे हुए पैर नूपुरों का मुख बन्द कर पृथ्वी पर आ टिके, फरफराते कपड़े ऐसे आकर सिमट गये जैसे बतख अपने पंखों को समेट लेती है। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

उसके बाद बादशाह ने देखा सफेद रेशम की झलमल में स्वर्ण का-सा दमदमाता यौवन लिये वे नर्तकियाँ धीरे-धीरे लौट चलीं, जैसे रेगिस्तान की काली रात में धीरे-धीरे नक्षत्र घूमने लगते हैं और उनकी टिमटिम पर दूर सुदूर कहीं कोई पथभूला विभ्रांत कारवाँ वेदना से चूर होकर एक गीत की कड़ी को बार-बार दुहराता हुआ अपने आपको भूल जाता है।

किन्तु फिर भी उसका मन आज असंतोष से जल रहा था, जैसे झाड़फानूसों में दीपक जल रहे थे, जैसे अनेक रत्नों से भर कर भी उनके हृदय का दाह स्नेह से जल उठा था। उनके शरीर के सारे आभूषण आज उन्हें भारी लग रहे थे।

उन्होंने एक प्याला पिया। फिर एक प्याला पिया, फिर एक और पिया किन्तु प्यास फिर भी नहीं बुझी। उन्होंने विक्षुब्ध होकर सबको वहाँ से हटा दिया। दासियाँ आशंका से भयभीत ह कर बाहर चली गईं। महल का वह दीर्घ प्रकोष्ठ सुनसान हो गया। चारों ओर नीरवता छा गई।

आज वह शहरजादी को परास्त करना चाहते थे। नौ सौ निन्यानबे रातें उसने उन्हें बहलाकर काट दी थीं। उन्होंने उसे देर तक विभोर होकर सुना था, किन्तु न उन्हें सिंदबाद की यात्राओं से तृप्ति मिली, न किसी और शहजादी के आँसू शहरजादी को भुजाओं में भींच सके। वह उन्हें अभी तक मूर्ख बनाती रही। और वे बनते रहे। उसके पहले कोई भी स्त्री उनके सामने आँख भी नहीं उठा सकी। रात्रि को वह शैय्या पर आती और प्रातःकाल उसके रक्त से भींगी पृथ्वी पर बादशाह मंथर गति से चलते हुए मुस्करा देते। नारी एक वासना की पुतली थी। वह उससे घृणा करते थे और अपनी एक मात्र पराजय के विक्षोभ से उससे भयानक बदला लिया करते थे। आज वही वीभत्स आकांक्षा हृदय में हाहाकार करने लगी थी।

वे उठे। उन्होंने पास में ही रखे घण्टे को तीन बार हाथी दाँत के

हथौड़े से झंकृत कर दिया। उसी समय सुर्खाब के परों से ढँकी शहरजादी ने प्रवेश किया। अपराजिता! बादशाह उसको देखते ही आकुल हो गये। उन्होंने उसकी ओर कदम बढ़ाया। शहरजादी मस्तानी चाल से चलकर अपने बहुमूल्य आसन पर आकर बैठ गई। बादशाह के नयनों में अभी उसके विशाल नितम्बों की मादक थिरकन घूम रही थी। उन्होंने विह्वल होकर अपने हाथों को पसार दिया। शाहजादी ने अपने सुर्खाब के परों को उतारकर फेंक दिया। भीतर का दृश्य देखकर बादशाह दो कदम पीछे हट गये, जैसे किसी ने उन पर वज्र का प्रहार किया हो। शहरजादी ठठाकर हँस पड़ी। वह चिथड़े पहने थी जिसमें से अपनी लाज छिपाना भी उसके लिए असंभव हो गया था। किन्तु आज वह लज्जित नहीं थी! आज उसके नयनों में क्रोध था। आज वह युग-युग से अपने ऊपर अत्याचार करने वाले से बदला लेना चाहती थी।

उसने कहा—बादशाह, सुन! घड़ा बूँद-बूँद करके भरता है और एक दिन पानी ऊपर निकलकर फैल जाता है। मैंने तुझे इतने दिन तक कहानियाँ सुनाईं कि तू सुधर जाये, मगर तू नहीं समझा! अब मुझे डर का काम नहीं है। जो कपड़ा जर्जर हो गया है, वह सिये से शोभित नहीं हो सकता। जिस घर में घना अँधेरा है, वहाँ दीपक जला कर सूरज को धोखा नहीं दिया जा सकता। सुन और समझ कि कमजोर को दबाने वाले ही आज तक ताकतवर कहे गये हैं, रईस वही है जो छल से रुपया पाता है और दूसरों के लहू पर अपनी शतरंज पसारकर दाँव लगाता है। तेरी बड़ी से बड़ी मेहरबानी में भी मैं अभी तक गुलाम बनी रही हूँ; क्योंकि तेरी मेहर तेरे फायदे की ओट में चलती है। सो सुन और समझ कि तूफान में विद्वान् तोते को भी देखकर मैना ने उसको दुतकार दिया कि ऊपर से चिकने-चुपड़े सदा अच्छे नहीं रहते। मगर वह बात थी दूसरी कि उनका मेल तो हो गया पर अपना न होगा।

बादशाह ने बैठते हुए कहा—कह शहरजादी कि वह विद्वान् तोता कौन था और मैना ने उससे क्या कहा !

और शहरजादी ने देखा और सुना और समझकर मुस्कराई।

शहरजादी ने कहा कि एक समय जब हिन्दुस्तान में अंगरेजों का राज था; तब एक शहर के बाहर एक बरगद के घने पेड़ पर एक मैना तूफान में बैठी आस्मान में कड़कती बिजली को देख-देखकर काँप उठती थी। हवा की साँय-साँय सुनकर पेड़ों का दिल दहल जाता था और वे मारे डर के थर-थर काँपने लगते थे। उनकी डालियों पर बैठे पक्षी पंख समेटे, चोंच छाती में छिपाये सहमे हुए चुप बैठे थे।

हे बादशाह ! मैना के दिल की क्या बात, वह तो अपने सुख की होके रही है। बातें करना उसे अवश्य आता है। सो बैठी-बैठी डरती तो है; मगर जतन नहीं करती। करे भी तो आखिर क्या ! इसके किये क्या हो ? अभी तक आँधी-पानी को कोई रोक सका है ? कभी-कभी मैना सोचती कि यह आदमी नाम का जानवर जो गुमान करता है कि आस्मान को फाड़कर जमीन और चाँद तक एक कर दूँ, क्या बेकार का घमंड है उसे ! मगर फिर विचार आता कि उसने क्या नहीं किया ! उसने तारों को गिना, उसने बेतार का तार बना दिया, उसने मिट्टी में गाना बाँध दिया, उसने बड़ी से बड़ी करामात कर दिखाई, क्या वह एक दिन इस सब पर भी अपनी ताकत नहीं चलायेगा ! तभी सोचती कि काम बड़ा कठिन है। मगर अचरज क्या ! जो उसने आज किया, उसे सुनकर क्या कल आदमी भरोसा करते ! मीलों की लंबाई और दूरी को हमसे जल्दी उड़के पार कर गया, समंदर पर शहरों के बराबर बड़े-बड़े लोहे के जहाज उसने तैरा दिये, आवाज से भी तेज भागने वाली मशीनें बना दी, मशीनों से जमीन जोत के हवाई जहाज से बीज डाल के एक की दसगुनी फसल कर दी, मरे की आँख निकालकर जिन्दे के डाल दी और वह देखने लगा तो क्या ठीक ! एक का काम तो बड़ा कठिन है।

हम पंछी जो शहर, गाँव बना के समाज में रहते, लड़ते-झगड़ते भी, मगर एक की जगह बीस चोंच होतीं तो शायद हम भी कुछ का कुछ कर दिखाते।

हे बादशाह, मैना की समझदारी की कोई थाह नहीं, मगर उसमें वफ़ा नहीं। गुनगुनाती है, मगर गुनती नहीं।

आस्मान में घने बादल और भी घने हो चले। चारों तरफ़ अँधेरा डमरू की तरह कड़कते बादलों से टकराकर बढ़ने लगा। आकाश से मूसलाधार पानी बरसने लगा। एक लगातार धार बँध गई जिसके कारण पृथ्वी पर से दुगने छींटे उड़ने लगे। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। हवा पागल हो रही थी। हज़ारों जटाएँ तो लटककर ज़मीन फाड़-कर भीतर तक गड़ गई हैं; लेकिन बरगद उस तूफ़ान में पत्ते की तरह काँप रहा है। बड़ी-बड़ी शाखाएँ और टहनियाँ ही नहीं कभी-कभी बीच का मोटी खालवाला अजगर-सा गुद्दा भी थरथरा उठता। एक तारा नहीं, कहो रोशनी नहीं। स्याही-सी गीली-गीली अँधेरी, बस कभी-कभी बीच-बीच में बिजली चमक जाती। चमकती तो आँखें बन्द हो जातीं और बाद में आँख खोलो तो दुगना अँधेरा। पत्तों पर जो धार पड़ती है तो बरछी-सी फिसलती जाकर भूमि से टकराती और वह अनवरत निर्घोष आकाश और पृथ्वी को प्रताड़ित करता घोर हाहाकार-सा प्रलय की बेला के समान गम्भीर और भयानक उन्माद बनकर दसों दिशाओं में फैल गया।

मैना ने करुण आँखों से ऊपर देखा। सघन पत्तों में से एक भी बूँद उस ठौर पर नहीं गिरी थी जहाँ वह बैठी थी। मन ही मन उसने पेड़ को धन्यवाद दिया और चुपचाप अँधेरे को देखने का प्रयत्न करने लगी।

आकाश में बिजली बड़ी ज़ोर से कड़क उठी और चारों ओर एक उज्ज्वल चकाचौंध करने वाला प्रकाश व्याप्त हो गया। अधमिची

आँखों से मैना ने देखा कि उसी डाल पर एक तोता आकर बैठने लगा। उसके फैले पंख थे। चोंच खुली थी। वह ऐसा फड़फड़ा रहा था ज्यों अभी-अभी व्याधे के हाथ से छुटकर आया हो। वह घबराया हुआ था। उसके बैठते ही मैना की शांति भंग हो गई। पराये मर्द के पास आकर बैठते ही वह मन ही मन नाराज़ हुई। उसने सोचा कि अगर हम औरत आदमी होते तो जैसे जनाने रेल के डिब्बे में कैसी भी ज़रूरत हो, आदमी नहीं बैठ पाता, मैं भी इसे यहाँ नहीं बैठने देती। मगर जंगल का राजा न मैना का ही है, न तोते का ही। वह तो राजा ही इसलिये है कि शिकार करना जानता है, मांस लोहू का भोग लगाना जानता है। उसका पेट भरा रहे, उसे न्याय करने से क्या पड़ी।

सो है बादशाह ! मैना मन मार कर मुँह फेर कर बैठ गई। तोता था विद्वान्, साधु-सन्तों की सोहबत तो क्या, था कौन जिसके साथ उसने दो दिन न बिताये हों। वह समझ गया कि मादा जो है सो यह ही अदा न दिखायेगी तो कौन दिखायेगा ! इसे मनाना चाहिये। औरत से हँसी-खुशी बात करके जो वक्त कट गया, वह कट गया। नहीं तो सहमी-सहमी मुरझा जायेगी। तूफ़ान से तो पहले ही डरी हुई होगी। हरज ही क्या है ? एक से दो अच्छे।

यह मन में धारणा करके तोते ने कहा...अरी आदमी की सी बोलने वाली ! देखा कैसा तूफ़ान है ? इसमें जो पड़ गया, वह नदी के भँवर में पड़ गई नाव के समान समझो। कभी नहीं बच सकता।

मैना कुछ नहीं बोली। पंख और सिमेटकर एक बार मुड़कर देखा। फिर मुँह फेर लिया। पर कुछ बोली नहीं।

तोते ने फिर कहा—घर आये को जिसने आश्रय नहीं दिया, तूफ़ान में जिसके गले में आवाज़ नहीं रही, वह कायर होता है। क्या तू डर गई है ?

मैना ने चिढ़कर कहा...तेरा क्या भरोसा ! जाने कब क्या धोखा दे ! मरद का क्या कोई विश्वास है !

ठठाकर हँस पड़ा । उसने कहा—सुन मैना ! मरद औरत का मान करने तो बैठ गई, मगर यह बात तो इन्सान की है। हम में तो ऐसा भेद नहीं होता। वह ही आपस में एक दूसरे पर विश्वास नहीं करता। मगर उसके पास तो इसके अतिरिक्त अनेक वस्तु होती हैं, जिनके कारण वह आपस में भेद करता है। तू ऐसी बात क्यों करने लगी !

मैना सोचने लगी। बात तो तोता ठीक कह रहा था। ऐसी बात ही क्यों उठी ! मन ही मन लजा गई। कहा—मैं तो ऐसे ही कहती थी। विश्वास तो जानने-पहचानने से होता है।

तोता मुस्कराया। उसने कहा—तो जान-पहचान तो रास्ते का दिलबहलाव है मैना ! उसमें क्या देर लगती है ! लेकिन तू जो मरद औरत कहती है, वह सौदागरों वाले घोड़ों पर चढ़के भागने वाले दिन तो बीत गये। अब तो दुनिया ही बदल गई है। अब आदमी आदमी पर भी भरोसा नहीं रखता।

'ओ हो !' मैना ने अचरज से मुँह फाड़कर कहा।

तोता फिर बोल उठा—आदमी तो जितना बड़ा है, उतना ही गिरा भी है ; क्योंकि बड़ी से बड़ी चीज़ बना के भी उसे उसका रखना नहीं आया। काम करने को सब करेगा मगर पैदावार को बाँटने में जैसी गड़बड़ आदमी करता है, वैसी कोई और जानवर नहीं करता है, वैसी कोई और जानवर नहीं करता। कह मैना ! हिरनों के झुण्ड में किसी हिरन को उनका सर्दार चरने से रोकता है ?

'नहीं विहंगम' मैना ने स्वीकार किया। ऐसा तो नहीं होता।

आस्मान से पानी बरसना अब बन्द हो चुका था। पेड़ हवा से

हिलते थे, तब ज़रूर टपटप करके मेह-सा झर जाता था। धीरे-धीरे तूफ़ान थमने लगा। जंगल ने जैसे चैन की साँस ली।

हे बादशाह! तोता और मैना दोनों की बात अब ध्यान धरकर सुन कि इसमें वह गुण है जो अँगूठी के नगीने में चमक बनकर समाया रहता है, जो सुहागिन के बालों में माँग का सिन्दूर बनकर सुहाया करता है।

और भोर फूटने लगी। आसमान में उजाला फैलने लगा। एक शीतलता व्याप्त हो गई। मैना सिहर उठी। ठंडी-ठंडी हवा बहने लगी। कलियों ने अपने घूँघट खोल दिये। पेड़ों ने पत्तों पर जमी बूँदों को हिलाकर गिरा दिया, किन्तु घास पर फिर भी हीरे चमकते रहे। बादल क्षितिजों पर जाकर डूबने लगे। वन-भूमि पर पानी भरकर झलमला रहा था। प्रभात की फूटती किरणों की ललाई में वह जल दर्पण की तरह हिल रहा था। उनके पक्षी मदिर-मदिर कलरव कर इस डाली से उस डाली पर उड़-उड़ जाते थे। चारों ओर वह धुले-धुले पेड़-पात, उनकी मोहक हरियाली देखकर मैना का हृदय प्रसन्न हो गया। लम्बे-लम्बे ऊँचे पेड़ों की जड़ों के पास पानी एक मनोहर कलकल निनाद कर रहा था।

तोते ने कहा—मैना! देखा तूने! कल रात जो प्रकृति प्राण लेने पर उतारू थी, अब कितनी सुन्दर लग रही है।

मैना ने उत्तर दिया—हे विहंगम! मैं तो इसी पृथ्वी को प्यार करती हूँ। इसके जो यह अनेक रूप हैं, इसी से इस पर रहने को जी करता है, जहाँ चीज़ें बदलती नहीं; वहाँ हम क्या, आदमी भी नहीं रह सकता।

तोते ने सोचते हुए कहा—अरी मैना! तूने कभी देखा है यह आदमी कितना अजीब जन्तु है। इसके जी की जलन का तो कोई अन्त

ही नहीं लगता। हज़ारों बरसों से भटक रहा है, बराबर भटक रहा है मगर कोई अन्त नह, लगातार वही चलना, वही थकान......

मैना ने कहा—कहो विहंगम ! जिस भट्ठे में रोज कच्ची हाड़ियाँ पकाई जायें वह मौत का घर है कि ज़िन्दगी का ? यह जो भोर और साँझ की-सी कड़ियाँ एक दूसरी से मिली हुई चली जाती है, यही तो है उसकी भूख। आज तक आदमी सुखी होने के लिए लड़ता रहा है। किन्तु नहीं हो सका। आनन्द की बात मैं नहीं कहती। आनन्द तो वह मन का सन्तोष है, जब ऐसी तृप्ति छा जाती है कि फिर कुछ करने को नहीं रहता......

तोते ने काटकर कहा—वह तो किसी को नहीं मिल सकता मैना। ज़िन्दगी की निशानी काम है, और पूरा आनन्द है मौत, जब कि सारे काम समाप्त हो जाते हैं। यह तो साँझ का पन्थी है।

मैना ने चोंच टेढ़ी कर कहा—मैं तो उड़ चली विहंगम ! देश-देश देखने का मुझे बड़ा शौक है।

'आहा !' तोते के मुँह से हठात् निकल गया—और क्या चाहिये ! मुझे भी यही काम है। मगर मैं अकेला उड़ता हूँ। कब मैना ! साँझ के झुकते-झुकते इसी पेड़ पर आकर बैठेगी ! देखें तू आदमी की दुनिया के बारे में क्या देखकर आती है।

मैना उड़ गई। तोता भी थोड़ी देर बाद उड़ चला। धूप घटने लगी। कानन में फिर वही नीरवता साँय-साँय करने लगी। बरगद का पेड़ जैसे प्रतीक्षा कर रहा था।